



# घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य

GHANANAND KE KAVYA MEIN PREM AUR SAUNDARYA

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ की  
पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि  
हेतु प्रस्तुत  
शोध-प्रबन्ध

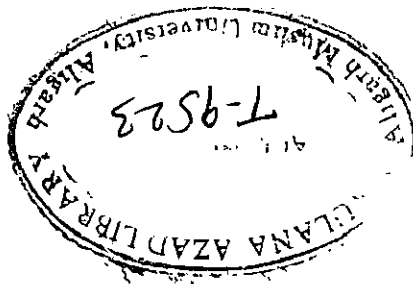
शोध-निर्देशिका  
डॉ. रेशमा बेगम  
एसोसिएट प्रोफेसर

शोधार्थी  
स्वीटी रानी

हिन्दी-विभाग, कला संकाय  
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी,  
अलीगढ़-202002

2013

14 Dec 2016



THESIS



## CERTIFICATE

It is certified that Mrs. Sweety Rani, En. No. DD-6729, a candidate admitted to Ph.D. course in the Department of Hindi, AMU, Aligarh on January 16, 2008 has completed two years residency period with required percentage of attendance upto January 15, 2010. She has submitted her thesis for the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi under the supervision of Dr. Reshma Begum., Associate Professor, Women's College, A.M.U., Aligarh on 30.12.2013.

Arif Nazir

(Prof. Arif Nazir)

Chairman

**Chairman**

Department of Hindi

Aligarh Muslim University.

ALIGARH

30/12/13

**Dr. Reshma Begum**

M.A., Ph.D. (Hindi)

**ASSOCIATE PROFESSOR**

DEPTT. OF HINDI

WOMEN'S COLLEGE

ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY,  
ALIGARH



**Residence:**

204, Ohad Residency, Phase-II  
Paan Wali Kothi, Dodhpur,  
Aligarh-202002 (U.P.)

Mobile : 09410060801

Dated 30.12.2013

**Certificate**

This is to certify that the thesis entitled, "**Ghananand Ke Kavya Mein Prem Aur Saundarya**" submitted for the award of Doctor of Philosophy in Hindi, is a bonafide record of research work carried out by **Mrs. Sweety Rani** under my supervision. This is the original work of the candidate and suitable for submission for the award of Ph.D. Degree.

*Reshma Begum*  
**(Dr. Reshma Begum)**  
Supervisor

# विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रस्तावना

i-viii

प्रथम अध्याय — घनानंदः युगीन परिदृश्य

1-38

- 1.1 सामाजिक
- 1.2 राजनीतिक
- 1.3 आर्थिक
- 1.4 धार्मिक
- 1.5 सांस्कृतिक

द्वितीय अध्याय — घनानंद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

39-73

- 2.1 व्यक्तित्व
- 2.2 कृतित्व
- 2.3 वैचारिक धरातल

तृतीय अध्याय — घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप

74-129

- 3.1 प्रेम : शब्दार्थ व स्वरूप
- 3.2 शृंगार : प्रेम का मूलाधार
- 3.3 प्रेम : वियोग
- 3.4 प्रेम : विषमता
- 3.5 प्रेम : पीड़ा की अनिर्वचनीयता
- 3.6 सूफी-काव्य का प्रभाव
- 3.7 प्रेम का स्वच्छन्द रूप

**चतुर्थ अध्याय — घनानंद के काव्य में सौन्दर्य का स्वरूप 130—185**

- 4.1 सौन्दर्य : शब्दार्थ व स्वरूप
- 4.2 मानवीय सौन्दर्य
- 4.3 प्रकृति सौन्दर्य
- 4.4 प्रेम और सौन्दर्य का मिश्रित रूप
- 4.5 प्रेम और सौन्दर्य का लौकिक व अलौकिक स्वरूप

**पंचम अध्याय — घनानंद के काव्य का शिल्पगत वैशिष्ट्य 186—236**

- 5.1 कला विषयक दृष्टि
- 5.2 भाषा
- 5.3 अलंकार योजना
- 5.4 छन्द विधान

**उपसंहार**

**237—242**

**ग्रन्थ—सूची**

**243—253**

## प्रस्तावना

## प्रस्तावना

साहित्य के धरातल पर कलात्मक मूल्य की दृष्टि से रीतिकाल का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में कला की साधना विशुद्ध धरातल पर की गई। जहाँ भक्तिकाल की मूल प्रवृत्ति भक्ति थी, वहीं रीतिकाल में काव्य की रीति वर्णन प्रणाली की साधना विशेष थी। रीतिकाव्य काव्यात्मक अभिव्यंजना के उपादानों को रूपायित करता है। रीतिकाल में इन्हीं उपादानों के आधार पर काव्य-रचना की गई। रीतियुग की रचनाओं में चमत्कार अथवा बाह्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति मुख्य रही है। कवियों का शब्द और अर्थ-तत्त्व पर असाधारण अधिकार, पाण्डित्य-प्रदर्शन, कल्पना-शक्ति की विराटता, अलंकारों का कुशल प्रयोग तथा काव्य के विविध तत्वों की संयोजन-क्षमता से परिचित कराना रीतिकवियों का मुख्य उद्देश्य रहा है। कवियों की इस संयोजन क्षमता से भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस आधार पर इस काल में भाषा का समृद्ध रूप देखा जा सकता है। रीतियुगीन कवियों ने हिन्दी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान कर उसकी अभिव्यंजना-क्षमता में वृद्धि की है।

रीतिकाल में केवल रीति या शास्त्र की परम्पराओं का ही अनुकरण नहीं हुआ, बल्कि इन नियमों से निरपेक्ष होकर भी काव्य सृजन हुआ। कुछ ऐसे स्वच्छन्द भावधारा के कवि हुए, जो स्वच्छन्द गति से बहते हुए अपनी एकांत काव्य साधना के पथ पर अग्रसरित होते रहे और विशुद्ध प्रेम के सूक्ष्म चेतना रस से अंकुरित और पल्लवित होकर हृदय के भाव पुष्प मुक्त रूप से अभिव्यक्त करते रहे। स्वच्छन्द भावधारा के कवियों में घनानंद एक उत्कृष्ट व अमर रत्न हैं। उनकी काव्य चेतना को उस युग की प्रवृत्तियाँ सीमित क्षेत्र में बांध न सकीं, उन्होंने भावनाओं के स्वच्छन्द वातावरण में विचरण किया। रीतिमुक्त कवि घनानंद के काव्य का मूल विषय प्रेम और सौन्दर्य है, जो सहृदयों के आकर्षण का विषय है। जिस समय हिन्दी साहित्य जगत में घनानंद का प्रादुर्भाव हुआ था, उस समय हिन्दी साहित्य का वातावरण पूर्णतः शृंगारिक था। सर्वत्र शृंगार की धारा में ही कविगण डुबकी लगाकर



अपने कविधर्म को सफल बना रहे थे। अपने समकालीन कवियों की भांति घनानंद की शृंगारी कविता विलासी राजाओं के तुष्टीकरण तथा शब्दों की कलाबाजियों द्वारा चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं थी। उन्होंने रीति से निरपेक्ष होकर शृंगार के उदात्त रूप को ग्रहण किया और प्रेम एवं सौन्दर्य का ऐसा स्वच्छन्द व परम्परामुक्त रूप प्रस्तुत किया, जिससे सम्पूर्ण वातावरण में प्रेम एवं सौन्दर्य का दिव्य रूप प्रकाशित हो उठा। उनका समग्र साहित्य प्रेम और सौन्दर्य का अक्षय कोष है।

घनानंद प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनका प्रत्येक पद सुजान व कृष्ण के शुद्ध प्रेम की भावना से भरा हुआ ऐसा रसकुण्ड है, जिसमें अवगाहन कर हृदय आनंद-विभोर हो उठता है। उनके काव्य में प्रेम और सौन्दर्य की अद्भुत स्त्रोतस्विनी प्रवाहित हुई है। घनानंद की प्रेम व सौन्दर्य विषयक उद्भावना में जहाँ एक ओर आत्मगत अनुभूति है, तो दूसरी ओर उसकी योजना में काव्य-कौशल। घनानंद मुख्य रूप से भाव-प्रधान कवि हैं, जो शुद्ध रूप से भावात्मक जगत में विहार करते हैं। उनके मानस चक्षुओं के सम्मुख विविध रूप व विविध भाव लहरियाँ उद्वेलित होती रही हैं। अपने प्रेम में भोगे हुए यथार्थ और सौन्दर्य की प्रत्यक्षानुभूति को वाणी प्रदान कर उन्होंने हिन्दी काव्य की सौन्दर्य समृद्धि में अभूतपूर्व योगदान दिया है। वे एक बात को, एक तथ्य को अनेक रूपों में देखने और वर्णन करने के अभ्यासी हैं। एक छोटी सी घटना को भी वह अपनी भाव सक्षमता के सहारे विशाल रूप में अंकित कर देते हैं।

घनानंद का काव्य आत्मा का काव्य है। वह अन्तर के तारों को झंकृत करने वाला है, जिसके झंकृत होते ही बुद्धि निर्मल, मन विकसित, प्राण पुलकित और शरीर उल्लसित हो उठता है। प्रिय के रूप-सौन्दर्य का वर्णन, अंग-अंग की भाव-मुद्राओं, प्रेमी की मादकता, विरह की बेचैनी, प्रिय के प्रति समर्पण भाव, मर्मांतक पीड़ा, वेदना की गम्भीरता, भावुकता की गहराई, निराशा की लहर तथा प्रेम और सौन्दर्य का लौकिक, अलौकिक व मिश्रित रूप आदि वर्ण्य विषय घनानंद के काव्य में मुख्य हैं। प्रेम एवं सौन्दर्य का जो प्रारम्भ सुजान (लौकिक) से हुआ, वह अन्ततः कृष्ण (भगवद्भक्ति) में ही पर्यवसित हो गया।

संयोग और वियोग प्रेम की दो स्थितियाँ घनानंद के काव्य का मूल रही हैं। जितनी निपुणता एवं मग्नता के साथ घनानंद ने वियोग शृंगार वर्णन किया है, उतनी ही दक्षता एवं रसिकता के साथ संयोग का भी। व्यापकता, विस्तार एवं गम्भीरता वियोग शृंगार के अन्तर्गत आने वाली मनोदशाओं के चित्रण में प्रकट हुई हैं। घनानंद के हृदय की जो धड़कन और तड़पन विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन में प्रकट हुई है, उसमें मानो समस्त विश्व का हृदय घनानंद के साथ रोता दिखाई देता है। इस क्षेत्र में घनानंद की समता करने वाला, विरह-वेदना का इतना विस्तृत और गम्भीर अनुभव करने वाला अन्य कोई कवि नहीं हुआ। घनानंद विप्रलम्भ शृंगार के अद्वितीय कवि हैं।

घनानंद का सौन्दर्य प्रेम समाहित है। रूप के प्रति इनकी दृष्टि सात्विक रही है। रूप प्रभाव का वर्णन करना इनका वर्ण्य विषय है। काव्य में जो इनकी स्वकीय सौन्दर्य दृष्टि का चमत्कार है, वह इनके स्वस्थ सौन्दर्य की प्रभावानुभूति है। घनानंद के काव्य सृजन की प्रेरणा उनकी प्रेयसी अतीव सुन्दरी सुजान है, जिसके सौन्दर्य से घनानंद अत्यन्त प्रभावित थे। घनानंद की मर्मभेदी-दृष्टि उसके बाह्य आकार तक ही सीमित नहीं रहती, वह उसके अंतस्तल तक प्रवेश कर जाती है। घनानंद अपने सामने आये हुए दृश्य को चारों ओर से देखने का प्रयत्न करते हैं। उनकी पैनी दृष्टि बाह्य आवरण को विद्ध करती हुई उसके अन्दर प्रविष्ट होती है और वहाँ का कोना कोना झाँक आती है।

घनानंद उत्तर मध्यकाल के एकमात्र ऐसे कवि हैं, जो न केवल कविकर्म का मर्म समझाते हैं, अपितु यह सन्देश भी देते हैं कि काव्य-सर्जन कोई खेल खिलवाड़ नहीं है, अन्तर का आवेग है। उनके स्वच्छन्द कवित्तों ने ही उन्हें हिन्दी साहित्य जगत में श्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। 'लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहि तो मेरे कबित्त बनावत' उक्ति से उनका सम्पूर्ण काव्य मुखरित हो उठा है। एक कृतिकार के व्यक्तित्व का ऐसा विलक्षण सन्तुलन बार-बार अभिनन्दनीय है और अनुकरणीय भी है। घनानंद ने न तो किसी महाकाव्य की रचना की और न जीवन के विविध पक्षों को ही वर्ण्य-विषय बनाया तथापि वे रीतिकाल की रीतिमुक्त धारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में विख्यात हैं। रीतिकाव्य में स्वच्छन्दता के प्रवर्तन का मुख्य श्रेय विशेष रूप से महाकवि घनानंद को ही है।

मेरे शोध का विषय घनानंद की प्रेम और सौन्दर्यपरक दृष्टि पर केन्द्रित है। प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध हिन्दी शोध जगत में एक ऐसी दिशा को लेकर प्रस्तुत किया गया है, जो घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य के तत्त्वों को प्रस्तुत करता है। उनके पदों में प्रेम और सौन्दर्य के विविध रूपों का मार्मिक वर्णन हुआ है, चाहे सुजान के प्रति उनका प्रेम हो अथवा सौन्दर्य वर्णन, सभी में वे अपने व्यक्तिगत भावों से परिचित कराते हुए अपने स्वाभाविक यथार्थ को व्यक्त करते हैं। सुजान के प्रेम एवं सौन्दर्य वर्णन में ऐसा कोई भाव घनानंद की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ है, जो एक प्रेमी के हृदय में हो सकता है। घनानंद की अभिव्यंजना क्षमता से सहृदय न केवल चमत्कृत हो उठता है बल्कि भावविभोर भी हो जाता है। घनानंद ने अपनी प्रेमगाथा के माध्यम से अपने जीवन और मनोवेगों की मार्मिक व्यंजना इस प्रकार अभिव्यक्त की है मानो वह हिन्दी साहित्य के इतिहास की धरोहर हो गई हो।

शोध विषय का चुनाव करने के उपरान्त शोधकर्ता को अपने विषय के अनुकूल ही एक विशिष्ट शोध प्रक्रिया को अपनाना होता है ताकि शोध कार्य अपनी सीमा में रहकर निश्चित किये गये उद्देश्य में सफल हो सके। यदि शोध विषय की सीमा पर विचार किया जाये तो स्पष्ट होता है कि घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य की परिधि अत्यन्त व्यापक है। मैंने साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य के आधारभूत तत्त्वों को समेटने का प्रयास किया है। किन्तु उसके उपरान्त भी शोधकर्ता की अपनी एक सीमा होती है विषय की दृष्टि से भी और अपनी दृष्टि से भी। उस सीमा को ध्यान में रखते हुए मैंने घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य के विविध रूपों का विश्लेषण किया है और उसको समझने का भरसक प्रयत्न किया है। प्रस्तुत शोध विषय पर कार्य करना, एक नवीन विषय को उठाना और उसकी सम्यक विवेचना करना, इसकी उपादेयता है। सीमित साधनों द्वारा परिश्रम करके विषय के साथ न्याय करने का सर्वत्र ध्यान रखा गया है।

घनानंद के काव्य को आधार बनाकर कई शोधकार्य सम्पन्न हो चुके हैं, जिनमें अध्येताओं, समीक्षकों एवं अनुसंधानकर्ताओं ने उनके काव्य में निहित विविध पहलुओं पर विचार किया है। इसके उपरान्त भी घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य पर स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य नहीं हुआ है। इसलिए मैंने अपने शोध—प्रबन्ध

के लिए घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य विषय का चुनाव किया। इस प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हूँ इसको पाठक एवं समीक्षक वर्ग ही तय कर सकेगा। मेरा विश्वास है कि इस शोध-कार्य से घनानंद के प्रेम और सौन्दर्य के विषय में कुछ और नवीन व महत्वपूर्ण तथ्य निकलकर सामने आ सकेंगे।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तावना और उपसंहार को छोड़कर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है—

प्रथम अध्याय में युग विशेष की परिस्थितियों का अवलोकन कर घनानंद के काव्य की पृष्ठभूमि को प्रदर्शित किया गया है। तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों द्वारा युग विशेष का अध्ययन किया गया है। किसी भी रचनाकार व उसके काव्य को गहराई से समझने के लिए उसकी युगीन परिस्थितियों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। परिवेश का प्रभाव तो रीतिमुक्त कवि घनानंद पर दिखाई अवश्य देता है, परन्तु नवीन एवं स्वच्छन्द दृष्टि के समर्थक के रूप में। इन युगीन परिस्थितियों और उनके आस-पास के वातावरण ने ही घनानंद को संवेदित किया और उन्हें एक नवीन दृष्टि प्रदान की।

द्वितीय अध्याय में घनानंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। घनानंद के जीवनवृत्त और व्यक्तित्व के साथ-साथ उनके कृतित्व का भी मूल्यांकन किया गया है। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से लौकिक व अलौकिक शब्द का आशय पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है जो उनके वैचारिक धरातल में विद्यमान रहा है। इस अध्याय में उनके कृतित्व पर उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

तृतीय अध्याय घनानंद के काव्य में प्रेम के स्वरूप पर आधारित है। इस अध्याय में प्रेम शब्द का अर्थ व स्वरूप, शृंगार का संयोग और वियोग, प्रेम विषमता, प्रेम-पीड़ा की अनिर्वचनीयता, सूफी-काव्य का प्रभाव और प्रेम के स्वच्छन्द रूप पर प्रकाश डाला गया है। घनानंद जिस तन्मयता के साथ प्रेम की गहराई को छूते हैं, पाठक भी उसी गहराई में डूब जाता है। वे अपने हृदय की अनेक परतों को खोलते व कलम से उतारते चले जाते हैं। घनानंद की इसी भाव-भूमि पर जाकर मैंने जो कुछ भी अनुभव किया, उसे अपने शोध-ग्रन्थ में अभिव्यक्त कर दिया।

चतुर्थ अध्याय 'घनानंद के काव्य में सौन्दर्य के स्वरूप' पर केन्द्रित है। इस अध्याय में भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि से सौन्दर्य की व्याख्या की गई है। मानवीय सौन्दर्य में नारी एवं पुरुष सौन्दर्य के साथ सुजान एवं कृष्ण के सौन्दर्य का चित्रण किया है। घनानंद का हृदय प्रकृति की सुरम्य छटा में प्रफुल्लित हुआ है, क्योंकि प्रकृति उन्हें अपने सुख-दुख की अनुगामिनी प्रतीत होती है। प्रेम और सौन्दर्य के मिश्रित, लौकिक और अलौकिक रूप ने इनके काव्य को अधिक उत्कृष्ट बनाया है।

पंचम अध्याय 'घनानंद के काव्य का शिल्पगत वैशिष्ट्य' पर आधारित है। इस अध्याय में कला अपनी छटा बिखेरती दिखाई देती है। भाषा-माधुर्य, अलंकार, छन्द-वैविध्य, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता आदि उनकी कलापक्ष की विशेषतायें हैं। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से भावों की अभिव्यंजना में सुविधा हुई है। उनका सम्प्रेषण व्यापार सीधे मार्ग से होते हुए मानवीय संवेदना को श्रोता के अन्तस्तल में सहजता से उतार देता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्राप्त सभी तथ्यों का संक्षिप्त निरूपण उपसंहार में किया गया है, जो सामान्यतया लेखन-प्रक्रिया में निष्कर्षमूलक हुआ करता है। अंत में ग्रन्थ-सूची के अन्तर्गत आधार ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ, संस्कृत ग्रन्थ, अंग्रेज़ी ग्रन्थ, कोश ग्रन्थ और पत्र-पत्रिकाओं की सूची दी गई है, जिनकी प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को तैयार करने में सहायता ली गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को सम्पन्न करने और दिशा निर्देशन का समस्त श्रेय आदरणीया गुरुवर डॉ० रेशमा बेगम जी को जाता है। 'घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य' पर शोध कार्य करने की प्रेरणा मुझे आदरणीया गुरुवर से ही मिली। उन्होंने इस शोध कार्य के दौरान उत्पन्न अनेक शंकाओं, समस्याओं का समाधान कर निरन्तर चिन्तन की नई दिशा प्रदान की है। उनके उत्साहवर्धक सुझावों द्वारा ही मेरा यह कार्य अन्तिम रूप तक पहुँच पाया है। इसके लिए मैं उनके प्रति आजीवन ऋणी रहूँगी। उन्होंने मुझे कार्य करने के लिए निरन्तर प्रेरित किया। शब्दों के अभाव में मैं केवल यही कहना चाहती हूँ—

“गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।

बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।”

मैं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष गुरुवर प्रो० आरिफ नजीर के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके आशीष एवं उत्साहवर्धन से मेरा यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ। विभागीय गुरुजनों, प्रो० एम०ई० जुबैरी, प्रो० अब्दुल अलीम, प्रो० आशिक बालौत, डॉ० आर०एन० शुक्ल, डॉ० तस्नीम सुहैल, डॉ० इफ्फ़त असगर और श्री अजय बिसारिया तथा अन्य सभी गुरुजनों की मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने उचित मार्ग दर्शाया और शोध कार्य को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

शोध सामग्री के संचयन में मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लाइब्रेरी में कार्यरत श्री पीर मोहम्मद, नदीम अहमद, हुसैन भाई तथा हिन्दी विभाग के सेमिनार-प्रभारी सैय्यद मोहम्मद माज़ और कार्यालय में कार्यरत श्रीमती परवेज़ फातिमा, सलमान भाई, शकील भाई और बिशारत भाई से भी मुझे अपने शोध कार्य में हर सम्भव सहयोग मिला है। अतः उनके प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ।

डॉ० पूनम जैन एसोसिएट प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग, डी०एस० कॉलेज अलीगढ़, ने सदैव मुझको प्रोत्साहित किया तथा संस्कृत साहित्य सम्बन्धी कठिनाईयों को दूर करने में सहायता प्रदान की, जिसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ।

पूज्य माता श्रीमती विशन रानी, पिता श्री श्याम मोहन वार्ष्णेय, सास श्रीमती मनोरमा देवी तथा ससुर श्री पी०सी० वार्ष्णेय के असीम स्नेह और विषम परिस्थितियों से लड़ने की निरन्तर प्रेरणा मुझे सदैव प्रोत्साहित करती रही है। उनकी ममता, आशीर्वाद सदैव मेरे साथ बना रहा। इसके लिए मैं उनकी दीर्घायु की कामना के साथ, ये शोध-प्रबन्ध उन्हें समर्पित करती हूँ। मैं श्रद्धाभाव से उनके प्रति नतमस्तक हूँ।

अपने पति श्री मनीष वार्ष्णेय के सहयोग को मैं विस्मृत नहीं कर सकती। उनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव ही नहीं था। उनका स्नेहपूर्ण मार्ग दर्शन और भावनात्मक सहयोग मुझे बराबर मिलता रहा। इसके लिए मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ। बहन शिखा और भाई प्रशान्त ने मुझे अनेक दायित्वों से मुक्त रखा और सदैव मेरे अन्दर स्फूर्ति का संचार किया।

विभागीय और विभागेतर मित्रों, सरताज आलम, डॉ० शहबाज अली खाँ, जाविद अली, साजिद मजीद, नीरज, फरहाना शीरीन आदि के सहयोग से मेरा यह शोध कार्य आसान हो गया। उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

टंकण कार्य में सहयोग कर रहे श्री कैलाश कुमार के प्रति मैं आभारी हूँ, जिनके सहयोग और व्यक्तिगत रुचि के साथ मेरा यह कार्य सरलता से सम्पन्न हो सका।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध यदि शोध की दिशा में नई कड़ियाँ जोड़ सका, तो मेरा श्रम सार्थक होगा और मैं स्वयं को धन्य समझूँगी।

स्वीटी  
स्वीटी रानी

## प्रथम अध्याय

### घनानंद : युगीन परिदृश्य

- 1.1 सामाजिक
- 1.2 राजनीतिक
- 1.3 आर्थिक
- 1.4 धार्मिक
- 1.5 सांस्कृतिक



## घनानंद : युगीन परिदृश्य

किसी युग के साहित्य में कोई भी प्रवृत्ति आकस्मिक रूप से उभर कर नहीं आती है, अपितु उसकी प्रेरणा तत्कालीन वातावरण में निहित रहती है। उपयुक्त परिस्थिति में यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे विकसित होती हुई एक दिन अपने स्वरूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है। वस्तुतः साहित्य और युग एक दूसरे में प्रतिबिम्बित होते हैं। साहित्यकार युग का प्रतिनिधि होता है। युगीन परिवेश उसके साहित्य में बोलता हुआ प्रतीत होता है। अतः मानव जीवन अपने युग, परिवेश से प्रभावित अवश्य होता है जिसका प्रभाव हमें उसके काव्य में देखने को मिलता है। किसी भी साहित्यकार की तत्कालीन परिस्थितियाँ उसके लेखन पर अपना विशेष प्रभाव छोड़ती हैं। उसके समय की राजनीतिक गतिविधियाँ, धार्मिक विचार-धाराएँ, आर्थिक समस्याएँ, सामाजिक व सांस्कृतिक रीति-नीतियाँ उसे अवश्य प्रभावित करती हैं। हिंदी साहित्य के रीतिकाल में इन विविध विचार-धाराओं के साथ आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का विस्तार मिलता है। इस दृष्टि से यदि कवि घनानंद के काव्य का अध्ययन किया जाये तो तत्कालीन परिस्थितियों अथवा युग-परिवेश का लेखा-जोखा देखना आवश्यक हो जाता है। पदमाकर, देव, मतिराम, बिहारी, घनानंद आदि रीतिकालीन परिवेश के प्रमुख कवि थे।

प्रत्येक युग की कविता युगीन परिवेश की उपज होती है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती हैं। युगीन परिस्थितियों ने ही रीतिकालीन कविता को जन्म दिया था। युग परिवेश की छाप पूर्णतः काव्य में ही दिखाई देती है। काव्य के निर्माण में परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कवि अपने व्यक्तित्व से युग विशेष को एक नवीन मार्ग प्रशस्त करता है। इस दृष्टि से यदि घनानंद युगीन परिस्थितियों का अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि घनानंद का प्रादुर्भाव युगीन परिस्थितियों के अनुकूल ही हुआ है, परंतु रीतिमुक्त कवि होने के कारण उन्होंने रीति की परिपाटी से पृथक रहकर एक नवीन पथ प्रदर्शित किया, जो रीति स्वच्छन्द पथ के नाम से भी जाना गया।

घनानंद रीतिमुक्त कवि थे, इसलिए उन्होंने युगीन परम्पराओं का सामना करते हुए अपनी काव्यधारा को एक नया मार्ग दिया और स्वच्छन्द कवियों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। घनानंद की विचारधारा को विकसित करने में तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। इस प्रकार हमें उन युगीन परिस्थितियों का अध्ययन करना होगा, जिन्होंने घनानंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के निर्माण में सहयोग प्रदान किया।

### 1.1 सामाजिक

स्वभावतः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मानव का जीवन समाज पर आधारित है। अतः जीवन का निर्माण सामाजिक परिस्थितियों के मध्य ही होता है। समाज के बिना जीवन असंभव हो जाता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति समाज से जुड़ा रहता है। अतः साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्यकार अपने समाज का भावी दृष्टा होता है, जो अपने वातावरण व परिवेश से परिचित होता है। वह समाज से प्रभावित होता है और उसी प्रभाव के प्रतिबिम्ब को साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। साहित्यकार की भावना, बुद्धि और कल्पना को दिशा देने में सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहता है, साथ ही वह अपने व्यक्तित्व से युग विशेष को एक नवीन मार्ग भी प्रशस्त करता है।

रीतियुग में सामंतवाद का बोलबाला था। इनके अधीन ज़मींदार, श्रमिकवर्ग का शोषण किया करते थे। मुगल शासनकाल में समाज सामंतवादी व्यवस्था पर आधारित था। अतः इस युग में समाज दो वर्गों में विभाजित था—उच्चवर्ग और निम्नवर्ग। उच्च वर्ग में सम्राट ही सामाजिक व्यवस्था का केंद्र हुआ करता था। उनके अधीन मंत्रीगण, उच्च व्यवसायी, साहूकार व ऊँचे ओहदेदार आदि होते थे। निम्नवर्ग के अन्तर्गत मजदूरों के अतिरिक्त कृषक वर्ग भी था, जो सोना पैदा करके मिट्टी पर गुज़र बसर कर रहा था। यह वर्ग मेहनत करके जो कुछ कमाता था, वह कर के रूप में उच्चवर्ग के पास चला जाता था। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। यह वर्ग शिक्षा और अर्थ से हीन था, परंतु उच्चवर्ग की दशा ठीक इसके विपरीत थी, वह आराम करने और पैसा खर्च करने में ही अपना समय व्यतीत करता था। उच्चवर्ग के लोग वैभव एवं विलासप्रिय थे। उच्चवर्ग बाह्य आचार और ऊपरी प्रदर्शन को ही अपना सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रतीक मानता था। वास्तविक स्थिति

को बढ़ा-चढ़ाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रचलन सा हो गया था। सुख-सुविधा, शान-शौकत, आमोद-प्रमोद उच्च वर्ग के जीवन के साथी थे। उनका पूरा समय भोग और विलास में ही व्यतीत होता था। औरंगज़ेब को छोड़कर सभी मुगल सम्राट अत्यधिक विलासी थे। शाहजहाँ कला का प्रेमी था। स्वयं शाहजहाँ का समय विलास एवं वैभव का युग था। शाहजहाँ के वैभवपूर्ण जीवन के विषय में डॉ० नगेंद्र ने लिखा है—“शाहजहाँ वैभव और विलास की मूर्ति था। उसका शरीर स्वर्ण खचित वस्त्रों, रत्न, हीरों और बहुमूल्य इत्रों से आपूर्ण रहता था। मुगल अन्तःपुर का वैभव तो इन्द्रभवन को मात करता था।”<sup>1</sup>

रीतियुग सम्पन्नता, अपव्यय और विलासिता का युग था। प्रायः दरबारों में वृद्धा स्त्रियाँ जासूसी के लिए नियुक्त की जाती थीं। वे दरबारियों और शहजादों के मनोरंजन हेतु स्त्रियों को धोखा देकर ले जाया करती थीं। “रीतिकाव्य की दूतियाँ बहुत कुछ इनका ही प्रतिरूप रही हैं।”<sup>2</sup> सम्राट के आगमन से पूर्व विभिन्न प्रकार के लेपनों, सुगन्धों, आभूषणों और भड़कीले वस्त्रों से स्त्रियों को तैयार करना इन्हीं दूती स्त्रियों का कार्य था। ये स्त्रियाँ इन विलासप्रिय सम्राटों के लिए सुरापान, भोग-विलास एवं सुख व आनंद की प्राप्ति के लिए सामग्री उपलब्ध कराने का कार्य भी करती थीं।

जब सम्राट ही विलासिता की मूर्ति हो तो दरबारीगण का तो कहना ही क्या? ‘यथा राजा तथा प्रजा’ जैसी कहावत इनके लिए चरितार्थ होती है। दरबारीगण सम्राट के अनुकरण पर ही ऐश्वर्यमय एवं विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इनकी दिन-चर्या इसी में व्यतीत होती थी। रात-दिन के सभी प्रहरों में दरबारीगण रति-क्रिया में ही व्यस्त रहते थे। इतना ही नहीं इनके ये कार्य सुनिश्चित होते थे। जहाँ एक प्रहर में इन स्त्रियों का समय प्रिय की प्रतीक्षा और साज-सज्जा में चला जाता था, वहीं अन्य प्रहरों में इनका समय प्रिय का आगमन, उसके साथ आलिंगन, चुंबन और रति क्रिया में व्यतीत होता था और उसके बाद शयन। प्रजा की ज़रूरतों और उनके फायदे के बारे में सोचना तो दूर की बात थी। सामंतों के इस विलासितापूर्ण और वैभवपूर्ण जीवन यापन का कारण सम्राट द्वारा उनका धन राज्यकोष में रखना होता था। यही कारण था कि व्यापारीगण, सामंतगण, उच्च अधिकारी आदि अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु थोड़ा बहुत सरकारी धन का भी उपयोग कर लिया करते थे। ये धन सामंतगण संचय नहीं करते थे बल्कि अपनी समस्त आय को अपने जीवनकाल में ही व्यय करना श्रेष्ठ समझते थे।

सामंतगण का भोजन व रहन-सहन भी राजसी होता था। अपनी आय का बड़ा हिस्सा ये अपनी विलासिता की पूर्ति में एवं वेश्याओं और नर्तकियों पर व्यय करते थे। विभिन्न प्रकार के उत्सवों व सम्राटों के जन्मदिन पर वे अपनी पदोन्नति के लिए उपहार भी भेंट करते थे। ये व्यापारीगण व सामंत बाह्य रूप से तो सम्पन्न थे, परंतु आन्तरिक रूप से खोखले व निर्धन थे। इनका बाह्य जीवन बड़ा दिखावटी था। मुगल शासनकाल में अधिकांश हिंदू राजा मुगल शासकों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। अतः इन्हें मुगल शासकों की आज्ञा माननी ही पड़ती थी। अपनी-अपनी आर्थिक स्थिति एवं योग्यता के अनुसार वे दरबारी पदों पर आसीन थे। इन सम्राट व सामंतों का जीवन भोग-विलास, सुरापान व वेश्याओं के सौन्दर्य का पान करने में इस कदर भुक्त भोगी हो गया था, जिससे मुक्त हो पाना असंभव था। मुगल शासकों में भोग-विलास की सरिता ऐसी बही, जिसने मुगल शासन को पतन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। यही कारण था कि समाज में नैतिक पतन हो रहा था—“धन के प्राचुर्य से जो विलासप्रियता समाज में व्याप्त हो जाती है, उसके द्वारा निश्चय ही नैतिक अवस्था पतनोन्मुख होकर चलने लगती है।”<sup>3</sup> मुगल साम्राज्य के इस नैतिक पतन का कारण उस युग में विलासिता का नग्न स्वरूप था। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कहना है—“विलासिता जब चित्तगत संकीर्णता के साथ प्रकट होती है, तो केवल विनाश की ओर ही ले जाती है। मुगल दरबार के आदर्श पर प्रतिष्ठित शतधा विकीर्ण विलासिता छोटे-मोटे सरदारों के दरबारों में इसी चित्तगत संकीर्णता के साथ संबद्ध हो गयी।”<sup>4</sup>

उच्चवर्ग पूर्णतः शोषक वर्ग था। निम्नवर्ग का शोषण करने के कारण ही उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के मध्य बड़ी खाई बन गयी थी। निम्नवर्ग का जीवन उच्चवर्ग की दया पर निर्भर था। किसान, मजदूर तथा चपरासी आदि निम्नवर्गीय मनुष्यों को समाज में हेय समझा जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों की सेवा करना ही निम्नवर्ग का कर्तव्य होता था। वर्ण व्यवस्था के जो नियम समाज की सुविधा के लिए बनाए गये थे, वही इस वर्ग के लिए अभिशाप बन गये। निम्नवर्ग में उत्पन्न होने के कारण शूद्रों के समस्त अधिकार खत्म कर दिये गये थे। ये धर्मशास्त्र के ग्रंथों को छू भी नहीं सकते थे और मंदिर में प्रवेश करने के लिए इन पर रोक लगी थी, दूर खड़े होकर ही ये पूजा करते थे। इस निम्नवर्ग का जीवन अनेक अभावों से भरा हुआ था। जहाँ उच्चवर्ग रास रंग में लिप्त अपने धन

को व्यर्थ में व्यय करता था, और अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए जनसाधारण पर अत्याचार करता था, वहीं दूसरा वर्ग अत्यन्त गरीब था, जो दो वक्त की रोटी मुश्किल से कमाता था। डॉ० लालचंद्र जैन ने इस सम्बन्ध में लिखा है—“उस युग का समाज ह्रासोन्मुख था। शासक वर्ग के अत्याचारों से वह कराह उठा था। वह विकल और अशांत था। धनी, शक्तिशाली और अधिकार सम्पन्न व्यक्ति निरंकुश और पथभ्रष्ट थे; गरीब, असहाय पिस रहे थे।”<sup>5</sup> समाज में भूखे पेट वालों की संख्या कम न थी। उन्हें जब भी, जैसा मिल जाता था, उससे अपनी भूख शांत कर लेते थे। इनका जीवन गुलामों की तरह था। इनको वेतन बहुत कम दिया जाता था, जिसकी वजह से कर के भार से इनकी कमर टूटी जा रही थी।

रीतियुग के समाज में विषमता हद से ज्यादा बढ़ चुकी थी। एक ओर उच्चवर्ग पैसे को पानी की तरह बहा रहा था, वहीं दूसरी ओर निम्नवर्ग पैसे के लिए तरस रहा था। भूख की प्यास उनके जीवन के लिए अभिशाप बन गयी थी। इस युग में गरीबों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी और शासकवर्ग बिना श्रम किये ही सम्पन्न था। निम्नवर्ग की चिकित्सा, शिक्षा आदि का भी कोई प्रबन्ध नहीं था। शासकवर्ग की आय तो निम्नवर्ग से कर के रूप में प्राप्त हो जाती थी। सामंत और ज़मींदार अपनी पदोन्नति के लिए शासकवर्ग को प्रसन्न करने के लिए निम्नवर्ग से कर वसूल करता था। ज़मींदार ही मुगल शासकों को कर वसूल करने में मदद करते थे। डॉ० सतीश चंद्र का कहना है—“ज़मींदारों के सहयोग के बिना मुगल शासकों के लिए किसानों से लगान वसूल करना प्रायः असंभव था।”<sup>6</sup> इन मुगल शासकों के समय में सामंतों से उपहार लेने की प्रवृत्ति भी थी। उस समय प्रजा की सुख-शांति पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इस प्रकार निम्नवर्ग तो केन्द्रीय सरकार की दमन नीति के चक्र में पिसता ही जा रहा था। यह निम्नवर्ग सभी ओर से शोषित था। “श्रमजीवी वर्ग को किसी न किसी की बेगार करनी पड़ती थी और उसके बदले मिलती थी कोड़ों की मार।”<sup>7</sup>

इस प्रकार इस युग में निम्नवर्ग की दशा में सुधार करने वाला कोई नहीं था। उच्चवर्ग अपने भोग-विलास में इस तरह लिप्त था कि उन्हें अपनी ही सुध-बुध नहीं थी, तो प्रजा की कैसे करते? निम्न वर्ग का शोषण करना और अपना पेट भरना ही मानो उनका कार्य था, उच्चवर्ग का नैतिक दृष्टि से पतन होता जा रहा था।

हमारे देश में पुरुष प्रधान समाज है। इस पुरुष प्रधान समाज का नारी इतिहास, अत्यंत उत्थानपरक और पतनमय है। वर्तमान समय में भी पुरुष प्रधान समाज स्थापित है, परंतु यह आज से नहीं बल्कि आदिकाल से चला आ रहा है। वैदिक युग में नारी प्रधान समाज विकसित हुआ था। उस समय प्रत्येक कार्य के लिए नारी को प्रधानता दी जाती थी, परंतु आर्यों के आगमन के पश्चात् का समाज, पुरुष प्रधान हो गया और नारी की स्थिति निम्नतर होती चली गयी। जिस देश में नारी को पूजा जाता था, सम्मान दिया जाता था, उसी देश में इस युग में नारी की स्थिति हीन होती चली गयी। पुरुष, नारी की स्वतन्त्रता और उसके अधिकारों को छीनता चला गया, उसके कर्तव्यों के प्रति निष्ठुर होता चला गया। वैदिक युग में स्त्री को जीवन में कार्य करने और सक्रिय होने के लिए पुरुष के समान अवसर प्राप्त थे। समाज में उन्हें हीन ठहरा कर उनका शोषण नहीं किया जाता था, परंतु यह स्थिति अधिक दिनों तक न रह सकी। बौद्धकाल तक आते-आते नारी की स्थिति दयनीय हो गयी। नारी को साधना के मार्ग में बाधक और जीवन के व्यापक क्षेत्र के लिए अक्षम समझा जाने लगा। शशिप्रभा प्रसाद ने इस सन्दर्भ में कहा है—“भगवान बुद्ध जैसे जनंतान्त्रिक चेतना युक्त धर्म के व्यवस्थापक ने भी बहुत कठिनाई के बाद नारी को अपने धर्म की अधिकारिणी माना था, वह भी इस भविष्यवाणी के साथ कि यदि मेरा धर्म स्त्री की अनुपस्थिति में 5,000 वर्ष तक अकलुष रहता तो अब 5,000 वर्ष में ही नीच पथ पर प्रवृत्त हो जायेगा।”<sup>8</sup>

प्राचीन भारत में नारी को जैसा आदर और सम्मान प्राप्त था, वैसा रीतिकाल में नहीं हो सका। रीतिकाल में नारी की स्थिति बदल गयी थी। इस युग में नारी केवल भोग और विलास की वस्तु रह गई थी, उसे कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। उसके पास कोई अधिकार भी नहीं थे, वह पुरुष के अधीन ही रहती थी। बाल्यकाल में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती थी। उसे केवल रमणी व भोग-विलास की वस्तु मात्र समझा जाता था। उसके जीवन का उद्देश्य मात्र इतना ही रह गया था कि स्वयं को विविध प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित कर स्वयं को रमण योग्य बनाकर, पति को अपने अनुकूल बनाये रखे। शशिप्रभा प्रसाद का कथन है—“रीतिकाव्य में नारी का जितना अधिक चित्रण हुआ है, उतना संसार के किसी एक साहित्यिक युग की कविता में हुआ है या नहीं, यह

संदिग्ध है। किंतु रीतिकालीन काव्य की नारी की एक बहुत बड़ी सीमा है और वह यह है कि उसमें नारी के प्रमदा या रमणी रूप का चित्रण ही अधिक है।<sup>9</sup> स्त्री का यह रमणी रूप रीतिकाल की ही देन थी। पुरुष को आकृष्ट करने के लिए ये शृंगार किया करती थीं क्योंकि शृंगार न करने पर उनका पति उनको छोड़कर अन्यत्र सुंदरी के पास चला जायेगा, इसका उनको भय रहता था।

सम्राट के विलासी जीवन की छाप से तत्कालीन युग में शायद ही कोई अछूता रह गया हो। सम्राट मुहम्मदशाह तो अपनी रसिकता के लिए रंगीले कहे जाते थे। रास-रंग, वेश्याओं का नृत्य, मदिरापान आदि में ही इनका समय व्यतीत होता था। इनके समय में वेश्याओं को दरबार में सम्मान प्राप्त था। मुगल सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले के मीर मुंशी घनानंद भी दरबारी वेश्या सुजान पर पूर्ण रूप से रीझे हुए थे। अपने एकपक्षीय प्रेम में वे पूर्णतया आसक्त थे, अपनी प्रिया सुजान पर उन्होंने अपनी जान भी न्यौछावर कर दी थी। रीतिकाल के सामंतीय वातावरण में वासना और कामुकता इतनी प्रबल हो गयी थी कि नारी का चरित्र सुरक्षित ही न रह सका। “इस प्रकार विलास, भोग और पुरुष की कुत्सित वासना के पंक के आकंठ में निमज्जित नारी का जीवन उदात्त मूल्यों से वंचित हो गया। राजनैतिक संधियाँ और सम्बन्ध भी नारी के आधार पर होने लगे। अकबर ने राजपूत राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध, राजनैतिक स्तर पर स्थापित किये।”<sup>10</sup>

मुगल शासन में नारी के आधार पर ही संधियाँ तथा नारी के लिए ही युद्ध होते थे। नारी को अपनी सम्पत्ति मानकर उसका भोग करना ही इन पुरुषों के जीवन का उद्देश्य बन गया था। पुरुषों को ऐसा लगता था मानो स्त्रियाँ उनकी इच्छापूर्ति का साधन और आदेश मानने वाली दासी मात्र हैं। स्त्रियों को प्राप्त करने के लिए अनेक युद्ध होते थे, जिससे धन-जन की काफी हानि होती थी। इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि नारी को प्राप्त करने के लिए एक देश का दूसरे देश से और एक राज्य का दूसरे राज्य से अनेक युद्ध होते रहे हैं।

रीतिकालीन समाज में अनेक कुप्रथाएँ भी फैली हुई थीं, जो कोढ़ बनकर लोकजीवन को ग्रस रही थीं। अनेक कुप्रथाएँ जैसे-बालविवाह, बहुविवाह, पर्दाप्रथा, वर्णव्यवस्था आदि समाज को खोखला कर रही थीं। इस युग में स्त्रियों में पर्दे की प्रथा प्रचलित थी। परिवार में उनके रहने के अलग स्थान होते थे। पति अपनी पत्नी से सबके सामने बात नहीं कर पाता था। उच्चकुल की स्त्रियाँ विशेष अवसर पर ही

पर्दे में निकलती थीं। मुसलमान स्त्रियों में बुर्के का प्रचलन था। पर्दे का प्रचलन होने का कारण शासकों द्वारा किसी की बहू-बेटियों को उठाकर ले जाना था। इससे बाल-विवाह जैसी कुप्रथा का प्रचलन भी हुआ। उस समय अपहरण के भय से लोग अपनी कन्याओं का विवाह जल्द कर देते थे।

भोग और लिप्सा ने लोगों को इतना अधिक विलासी बना दिया था, कि उस समय पुरुष बहुविवाह करके अपना समय भोग और विलास में ही व्यतीत किया करते थे। यह प्रचलन केवल उच्चवर्ग में ही था। बहुपत्नियाँ होने पर पति सभी पर अपना ध्यान आकृष्ट नहीं कर सकता था, अतः वे (सपत्नियाँ), अन्य व्यक्तियों के साथ प्रेम किया करती थीं। इंद्रबहादुर सिंह जी का कहना है—“वैभव, विलास के युग में पुरुष ने जैसे अपने को विलासी बना लिया, वैसे ही स्त्रियाँ भी बहुत कुछ अपनी धवल परम्परा छोड़ चुकी थीं।”<sup>11</sup> इतना ही नहीं स्त्रियों को तो अपना जीवनसाथी चुनने का अधिकार भी प्राप्त नहीं था। सती प्रथा का भी प्रचलन था। स्त्रियाँ मृत पति के शव के साथ जिंदा जलकर भस्म हो जाया करती थीं। कभी-कभी इच्छा न होते हुए भी लोक-लाज के भय से स्त्रियों को सती होने के लिए बाध्य होना पड़ता था।

समय परिवर्तनशील है, समय के परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक विकास में नारी की स्थिति भी बदलती रही है। यद्यपि पुरुष प्रधान समाज में उसकी स्थिति अत्यंत हीन ही रही है, परंतु सामंतवादी व्यवस्था ने तो नारी को अबला ही बना दिया था। वर्तमान में नारी की दशा अब सुधरने लगी है। आज का युग प्रगतिशील युग है। प्रगतिशील युग में नारी अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग हो गयी है। हालांकि पुरुष प्रधान समाज में यह पूर्णतया मुमकिन नहीं है, परंतु कुछ हद तक स्थिति में सुधार हुआ है और होता जा रहा है।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में कवियों द्वारा शृंगार वर्णन करना नया विषय नहीं था, बल्कि संस्कृत कवि जयदेव, मैथिल कोकिल विद्यापति, हित-तरंगिणीकार कृपाराम, साहित्यलहरीकार सूरदास, रसमंजरी के प्रणेता नंददास के अतिरिक्त फारसी के शृंगारी कवियों से प्रभावित होकर हिन्दी के रीतिकाल में शृंगार की धारा प्रवाहित हुई। “शृंगार रस तथा नायिका-भेद के शास्त्रीय निरूपण में रुद्रभट्ट के



शृंगार तिलक और भानुदत्त मिश्र की 'रसमंजरी' से दृढ़ आधारभूमि प्राप्त करने में इन रचनाकारों को कठिनाई नहीं उठानी पड़ी।<sup>12</sup> परन्तु रीतिकाल में शृंगार का अश्लील और नग्न रूप ही उभर कर आया है क्योंकि रीतियुग में कवि या कलाकारों की स्थिति राजाओं के आश्रय पर टिकी हुई थी। अर्थ और यश प्राप्ति की लालसा में ये कवि राजाओं की झूठी प्रशंसा करते थे। जगदीश्वर प्रसाद ने इन कवियों के यशोगान के विषय में लिखा है—“राजा और कवि का सम्बन्ध पारस्परिक था। राजा कवि को सुख-सुविधा सम्पन्न बनाता और कवि प्रशस्तिगान कर राजा की मानसिक तृप्ति करता, उसके यश और कीर्ति को अमरत्व प्रदान करता था।”<sup>13</sup>

राज्याश्रित कवियों का व्यक्तित्व दोहरा था। जन्म से इन कवियों का सम्बन्ध निम्नवर्ग से था, योग्यता के कारण राज्य में आश्रय प्राप्त करने के कारण इनका सम्बन्ध उच्चवर्ग में स्थापित हो गया था। दरबारी संस्कृति के प्रभाव से ये कवि अछूते नहीं थे। ये कवि उसी दरबारी संस्कृति के रंग में रंग गये थे। डॉ० नगेंद्र का कहना है—“जन्म से इनका सम्बन्ध प्रायः निम्नवर्ग से होता था, परन्तु रहते थे उच्चवर्ग के आश्रय में। यद्यपि इनके व्यक्तित्व का निर्माण दोनों वर्गों के विभिन्न संस्कारों से ही होता था, फिर भी उसमें प्रधानता उच्चवर्ग के संस्कारों और अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं में रहती थी, क्योंकि बाद में निर्धन जनता से इनका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था।”<sup>14</sup> उच्चवर्ग में आश्रय मिलने के कारण उनकी इच्छाएँ व आकांक्षाएँ उच्चवर्गीय लोगों के समान वैभव और विलासिता से युक्त थीं।

इस प्रकार राज्य में आश्रय प्राप्त करने के पश्चात् इन कवियों का एक ही कार्य था, वह था राजा की प्रशंसा करना। चाहे राजा की झूठी प्रशंसा ही क्यों न करनी पड़े? इसी कारण उनका मन भोग, विलास में रम गया था, जिससे वे जीवन के यथार्थ को भूल गये थे। आश्रय प्राप्त कवि सुख-सुविधा के वशीभूत हो गये थे। जगदीश्वर प्रसाद का कहना है—“उस समय कविता आत्माभिव्यक्ति न रहकर शासकवर्ग की इच्छा की अनुवर्तिनी बन गई थी। काव्य प्रतिभा का उपयोग जीवन के यथार्थ चित्रण में न होकर सौन्दर्य चित्रण में होने लगा।”<sup>15</sup>

रीतिकाल में जहाँ बिहारी, पदमाकर जैसे दरबारी कवि थे, वहीं स्वच्छन्द व उन्मुक्त स्वभाव वाले, प्रेम के वशीभूत होकर दरबार छोड़ने वाले कवि घनानंद भी

थे। इन्होंने दरबार में भी कविता की और दरबार के बाहर भी। इन्होंने उन्मुक्त भाव से काव्य सृजन किया। ये किसी रीति या परम्परा के अनुसरणकर्त्ता न थे, जो शास्त्रीय बंधनों में बंधकर काव्य सृजन करते। मुगल शासन के चरमोत्कर्ष पर ही कवियों को राज्य में सर्वोपरि स्थान प्राप्त था, परंतु मुगल शासन के पतन के साथ ही कवि और कलाकारों का राज्य में स्थान खत्म हो गया था। मुगल शासन के प्रारंभ में झूठी प्रशंसा और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के कारण कवि और कलाकारों को दरबार में जो स्थान मिला, वह अब क्षीण हो गया था। इस प्रकार रीतियुग में कतिपय कवि घोर शृंगारी थे, तो कतिपय स्वच्छन्द उन्मुक्त स्वभाव वाले।

यदि रीतिकाल की सामाजिक परिस्थिति का अवलोकन किया जाय तो हम देखते हैं कि घनानंद का समय मुहम्मदशाह रंगीले के शासनकाल के अन्तर्गत आता है। घनानंद के समय में मुगल शासन का पतन प्रारंभ हो चुका था। मुहम्मदशाह रंगीले का पूरा समय विलास की क्रीड़ाओं, शतरंज, चौसर, शिकार, पतंग उड़ाना, पशु-पक्षियों की आपस में लड़ाई और रनिवास आदि में व्यतीत होता था। प्रजा के कार्यों में तो इन मुगल सम्राटों का मन ही नहीं लगता था। उच्चवर्ग के रास-रंग का प्रभाव समाज पर तो पड़ना ही था, जिससे समाज अव्यवस्थित हो गया था। इस प्रकार घनानंद के समय में समाज विलासिता में लिप्त, सामाजिक रूढ़ियों में बंधा हुआ और सामाजिक प्रगति से दूर था। अतः मुगल शासन अधः पतन की ओर अग्रसर था।

## 1.2 राजनीतिक

राजनीति, धर्म एवं समाज का पारस्परिक सम्बन्ध है। इनमें से एक का पतन होने पर दूसरा ह्रासोन्मुख हो जाता है। देश की राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ समाज में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। राजनीतिक दृष्टि से रीतिकाल अत्यन्त उथल-पुथल का युग है, जिसमें एक ओर भोग-विलास की सरिता प्रवाहित हुई है, तो दूसरी ओर भूखे-नंगे लोग तड़पते हुए दिखाई दिये। यह युग मुगलों के शासन के वैभव और पराभव का युग रहा। इस युग में मुगल साम्राज्य का उत्थान भी देखा गया और पतन भी उत्थान और पतन तो प्रकृति का

शाश्वत नियम है। यह नियम निरन्तर रूप से रात और दिन के समान चलता रहता है। जिस प्रकार रात के बाद दिन और दिन के बाद रात होती है, उसी प्रकार उत्थान के बाद पतन और पतन के बाद उत्थान होता है। इन्द्रबहादुर सिंह जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है—“इस युग ने एक समय में हरीतिमा से युक्त लहलहाते हुए लतावृक्षों को देखा, तो दूसरे समय में पीत वर्ण पत्तों के गिरते हुए पतझड़ को भी देखा है।”<sup>16</sup>

मुगल साम्राज्य का पतन आकस्मिक रूप से नहीं हुआ, वरन् यह एक लम्बी प्रक्रिया थी, जो काफी समय से चल रही थी। शाहजहाँ के पितामह अकबर के समय में शासन व्यवस्था अपने चरम उत्कर्ष पर थी, क्योंकि अकबर ने अपनी उदारता व नीति निपुणता के आधार पर अपना शासन कार्य संचालित किया था। इसी कारण अकबर का युग आने वाले मुगल शासकों के लिए आदर्श का युग रहा है। मुगलकाल में जो विलासिता एवं चारित्रिक पतन दिखाई दिया, उसका प्रारंभ तो अकबर के समय में ही हो गया था। आने वाले मुगल शासकों ने इसको बढ़ावा दिया, जिससे विलासिता की जड़ें सम्पूर्ण मुगल शासन में फैल गयीं। कोई भी मुगल शासक इससे बच न सका। मुगल शासक जहाँगीर ने अकबर की उदार नीति का अनुसरण करते हुए ही राज्य किया, किन्तु उसमें अकबर के समान दूरदर्शिता और समन्वयकारी शक्ति न थी, जो विविध जातियों, धर्मों और वर्गों को साथ लेकर चल सकती। जहाँगीर के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य, न्याय परक नीति में रहा और न्याय के सम्बन्ध में जहाँगीर अकबर का पूरक है। उसके शासन काल में सभी व्यक्ति समानता के साथ अनुशासित ढंग से रहते थे।

जहाँगीर विद्वान, कलाविद् व संवेदनशील व्यक्ति था। इससे उसके शासनकाल में विभिन्न प्रकार की कलाओं का सर्वांगीण विकास हुआ। परन्तु जहाँगीर में कुछ बुरी प्रवृत्तियाँ भी थीं, जैसे—वह विलासी, अफीमखी और सुरा-सुंदरी का भोग करने वाला आराम पसंद व्यक्ति था। इन अवगुणों के कारण ही वह राज्य की समस्याओं पर ध्यान नहीं दे सका और शासन को सुचारु रूप से चलाने में असमर्थ रहा। उसके इन दुर्गुणों के कारण ही शासन की बागडोर उसकी पत्नी नूरजहाँ के हाथों में आ गई। उसने अकबर के समय की व्यवस्थित शासन

व्यवस्था को ही आगे बढ़ाया, अपनी ओर से कम ही सुधार कार्य किये। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार जहाँगीर के शासनकाल में दरबारीगण भी विलासिता में लिप्त रहते थे। जहाँगीर के पश्चात् शाहजहाँ ने भी वही कार्य किया, जो जहाँगीर ने किया था। जहाँगीर ने जो राज्य छोड़ा था, शाहजहाँ ने उसका विकास एवं विस्तार किया।

जिस साम्राज्य की बागडोर शाहजहाँ ने संभाली थी, वह उसे अकबर और जहाँगीर से विरासत में मिली थी। वास्तव में रीतिकाल का प्रारम्भ तो शाहजहाँ से होता है। "रीतिकाल का समय सं० 1700 से 1900 तक माना जाता है।"<sup>17</sup> 1700 के आस-पास जब शाहजहाँ ने शासन की बागडोर संभाली, तो वह मुगल साम्राज्य के वैभव का युग था। "शाहजहाँ का राज्यकाल सामान्यतः भारत में मुगल शासन का स्वर्ण युग माना जाता है, जो उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था।"<sup>18</sup>

शाहजहाँ विलासी शासक था। विलासिता ही मानो उसके जीवन का आधार थी। युद्ध से अवकाश के क्षणों में इनका जीवन राग-रंग से परिपूर्ण होता था। सुधीन्द्र कुमार का कहना है—“शाहजहाँ युद्ध की थकावट मिटाने के लिए स्त्रीभोग का आनंद लेता था।”<sup>19</sup> विलासिता के कारण ही इस युग में प्रेम और शृंगार की धारा अविरल रूप से बही है। शाहजहाँ कालीन राज्याश्रित कवि राजा को प्रसन्न करने के लिए विलासिता से युक्त चित्रण कर उसका मनोरंजन करते थे। इस प्रकार के चित्रण से इन कवियों को धन की प्राप्ति होती थी। यही कारण है कि ये कवि धन की लालसा में यथार्थ से कोसों दूर हो गये थे। शाहजहाँ के विलासी रूप का वर्णन करते हुए वेंकटरमण राव जी ने कहा है—“विलास की सबसे अधिक पतित अवस्था यह है कि वह कर्मचारियों की पत्नियों के साथ भी अवैध सम्बन्ध रखता था।...उसका प्रभाव सामंतीय जीवन पर भी पड़ रहा था।”<sup>20</sup> वस्तुतः शाहजहाँ को वैभव और विलास की मूर्ति कहा गया है। मुगल शासकों के इस विलासी स्वरूप का प्रभाव उनके अधीन अधिकारियों पर भी पड़ रहा था। दरबारी काम-काज से तो इन शासकों का कोई नाता ही नहीं रह गया था। शाहजहाँ के समय में शासकों के सम्मुख कोई भी राष्ट्रीय एवं सामाजिक उद्देश्य नहीं रह गया था। इस कारण शासन कार्य ठप्प पड़ गया था। सभी दरबारी सुरा-सुंदरी पान में लिप्त रहते थे।

मुगल शासन का पतन प्रारम्भ हो गया था। डॉ० नगेंद्र का कहना है—“उत्कर्ष के चरम बिन्दु पर पहुँचने के उपरांत ही अपकर्ष का आरंभ हो गया था।... जिस प्रकार साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के चरम वैभव के बाद सं० 1700 के आस-पास से ही कविता क्षयग्रस्त होने लगी थी, ठीक उसी प्रकार राजनैतिक इतिहास में मुगल साम्राज्य भी अपने सम्पूर्ण यौवन को प्राप्त करने के उपरांत ह्वासोन्मुख हो चला था”<sup>21</sup>

मुगल शासन में विद्रोह की प्रथा बहुत पुरानी थी। जिस प्रकार शाहजहाँ ने जहांगीर के खिलाफ विद्रोह किया था, ठीक उसी प्रकार औरंगज़ेब ने शाहजहाँ के खिलाफ विद्रोह कर उसे कारागार में डाल दिया था। अपने अन्तिम दिनों में शाहजहाँ की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई थी। बाबर से लेकर सम्पूर्ण मुगल परिवार में केवल शाहजहाँ ही एक ऐसा शासक था, जो बन्दी बनाया गया और जिसने अपने जीवन के आठ वर्ष कारागार में व्यतीत किये। शाहजहाँ की इस दयनीय दशा पर वेंकटरमण राव जी का कहना है—“जिस शाहजहाँ के कीर्ति स्तम्भ, मयूर सिंहासन और ताजमहल के रूप में खड़े थे, वह औरंगज़ेब के द्वारा बन्दी होकर रोग शय्या पर पड़ा, मुमताज महल की स्मृतियों में उलझा हुआ आगरे के किले में अपनी अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था।”<sup>22</sup>

औरंगज़ेब ने तो अपने ही भाई दाराशिकोह को गृहयुद्ध में परास्त कर मुगल साम्राज्य का कार्यभार संभाला था। वह बहुत ही क्रूर, धर्मान्ध और अदूरदर्शी शासक था। उसने अपने पूर्वजों की उदार-नीति का अनुसरण नहीं किया। पचास वर्षों के उसके शासनकाल में अशांति, असंतोष, अव्यवस्था, मार-काट, उथल-पुथल, संघर्ष, षड्यन्त्रों एवं विश्वासघात का प्राधान्य रहा। यह मुगल शासन विलासजन्य दुर्युगों का केन्द्र बन गया था। विलासिता में ही डूबे रहने के कारण इनमें कुछ बुराईयाँ आ गयी थीं। इसी कारण इन मुगलों के शासन में ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट का नंगा नाच होता था। आपसी मतभेद के कारण ही इनके शासन की यह दशा हुई थी। मुगल साम्राज्य की इस दशा पर डॉ० ब्रजनारायण सिंह ने कहा है—“मुगल शासन मनुष्य की उस क्षयग्रस्त मूर्ति के अनुरूप रह गया था, जिसका आन्तरिक रक्त तो सूख गया था, पर जिसका कंकाल मात्र गृह कलह तथा विद्रोहों के बवंडर से हिल रहा

था।<sup>23</sup> औरंगजेब के अत्याचारों से जनता भड़क उठी थी। उसने हिन्दू-राजाओं और ज़मींदारों पर अत्याचार किये, जिसके फलस्वरूप धार्मिक उपद्रव आरंभ हो गये थे। इसी कारण हिन्दू-मुसलमानों के बीच एक रेखा खिंच गयी थी। औरंगजेब शासन को सुव्यवस्थित न कर सका और उसका समय इन विद्रोहों को समाप्त करने में ही व्यतीत होने लगा था।

अकबर के समान तेज़ आँखें औरंगजेब के पास न थीं, जिससे वह योग्य व्यक्तियों का चयन करता। अकबर के समय से चली आ रही सुशासन व्यवस्था इस समय तक अस्त-व्यस्त हो गयी थी। औरंगजेब के शासनकाल में सैनिक व्यवस्था को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। ये प्रजा पर अत्याचार किया करते थे। सभी राज्य कर्मचारी अपनी मनमानी करते थे। छोटे कर्मचारी उच्च स्थान को प्राप्त कर और भी भ्रष्ट हो गये थे। प्रजा का दोहरा शोषण होता था। एक प्रकार से मुगल शासन के पतन का प्रारंभ औरंगजेब के समय से ही हो गया था। औरंगजेब के समय में ही मुगल शासन की जड़ें खोखली हो गयी थीं। उसकी मृत्यु के साथ ही मुगल शासन का अंत भी हो गया क्योंकि उसके बाद जो भी उत्तराधिकारी आये, उन्होंने समर्पण करने में ही विश्वास किया, इसका कारण विलासिता था। ईशर सिंह जी का कहना है—“मराठों के बाहुबल से उलझने से समस्त देश की राजनैतिक स्थिति डाँवाडोल हो गयी और दीर्घकाल के लिए उसके विलासी, व्यक्तित्वशून्य एवं षड्यन्त्रग्रस्त उत्तराधिकारी अपने गिरते प्रासाद को न बचा सके।”<sup>24</sup>

औरंगजेब के पश्चात् जितने भी मुगल शासक आये वे सभी स्वार्थी थे और विलासिता में ही मग्न रहा करते थे। उनमें दूरदर्शिता और राजनैतिक क्षमता का अभाव था, जिसके फलस्वरूप न तो वे आक्रमणकारियों का सामना ही कर पाते थे और न ही शासन को सुचारु रूप से चला पाते थे। राजमल बोरा जी का कहना है—“इस काल में कला, संस्कृति और धर्म के क्षेत्रों में जीवन के आन्तरिक मूल्यों की अपेक्षा बाह्य आचारों और रूपगत मूल्यों की प्रतिष्ठा अधिक हो गयी थी। दुर्बल राजनीति जैसे अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो पा रही थी।”<sup>25</sup> इस प्रकार ये उत्तराधिकारी सम्राट, दूसरों के हाथों की कठपुतली मात्र बनकर रह गये थे। औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त बारह वर्षों में पाँच मुगल सम्राट दिल्ली की गद्दी

पर बैठे। इन अदूरदर्शी मुगल बादशाहों के एक सौ पचास वर्षों के शासनकाल में षड्यन्त्र, विश्वासघात, बाह्य आक्रमण, लूट-पाट और मार-काट का ही बोलबाला रहा। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के शासनकाल में छोटे-छोटे गृहयुद्ध हुए। नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से मुगल सत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी और मुगल साम्राज्य बिखर गया था। घनानंद इन्ही मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में आश्रित कवि थे। नादिरशाह का भारत में पहला आक्रमण अत्यन्त भयंकर था, जिसमें लूट-पाट और कत्लेआम हुआ था।

नादिरशाह ने भारत में स्वर्ण, रत्न, हीरे, जवाहर आदि की लूटपाट की व कत्लेआम कर अपने साम्राज्य का विस्तार करता चला गया। नादिरशाह ने भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ-साथ राजनीतिक शक्ति को भी जर्जर कर दिया था। नादिरशाह ने पेशावर तथा लाहौर होते हुए दिल्ली पर आक्रमण किया। देश पर विपत्तियों पर विपत्तियाँ बढ़ती ही जा रही थीं। अभी देश पूर्णतः संभल भी न पाया था कि नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् अहमदशाह अब्दाली ने आक्रमण कर दिया। भारत पर किये गये आक्रमणों में उसका चौथा आक्रमण सर्वाधिक भयंकर था, जिसमें दिल्ली, आगरा और मथुरा आदि कई स्थानों पर भयंकर लूटपाट और नरसंहार हुआ। इस समय मुगल शासक उन आक्रमणों का सामना नहीं कर पा रहे थे। वे निरंतर रूप से विलासिता के सागर में डूबे रहते थे। परिणामस्वरूप वे शासन को समय ही नहीं दे पाते थे। मुगलशासक आलमगीर का शासन लगभग समाप्त हो गया था, परन्तु दिखावा अभी भी चल रहा था। ब्रजनारायण सिंह ने लिखा है—“आडम्बरपूर्ण जीवन के इस पक्ष के अतिरिक्त दूसरा पक्ष भी था, जो उससे कहीं अधिक घृणित और दयनीय था। दिल्ली किले की दशा दयनीय थी। वैभव की वह अमिट निशानी वीरान और भद्दी हो गयी थी। दरबार अब केवल बादशाह के कुटुम्बियों तक ही सीमित रह गया था।”<sup>26</sup>

आलमगीर द्वितीय के बाद तीन और मुगल सम्राट शाह आलम (1759-1806), अकबरशाह द्वितीय (1806-1837) और बहादुरशाह (1837-1857) हुए, जो नाम मात्र के ही शासक थे। शाहआलम तो अमीरों के हाथ की कठपुतली था। नादिरशाह के आक्रमण से पूरा शासन हिल गया था और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से तो

पूरा मुगल शासन टूट गया। अंग्रेजों ने इसका पूरा लाभ उठाया। वे भीतर ही भीतर अपनी शक्ति का संचय करते रहे और धीरे-धीरे पूरी तरह से भारत पर अपना अधिकार कर लिया। शाहआलम ने अंग्रेजों से संधि कर ली थी। समर्पण करने के अलावा उनके पास कोई चारा ही न था। इस प्रकार मुगल शासन के पतनोन्मुख होने के साथ-साथ भारत में ब्रिटिश शासन का अभ्युदय हो रहा था। डॉ० नगेंद्र का कहना है—“1857 की देशव्यापी राज्य क्रान्ति ने एक बार पुनः मुगलों को प्रतिष्ठित करना चाहा, लेकिन सारे प्रयत्न असफल रहे। इस प्रकार दो ढाई वर्ष के विलास-वैभवपूर्ण साम्राज्य का कारुणिक अन्त हो गया।”<sup>27</sup>

इस प्रकार ब्रिटिश शासन का व्यापार के साथ-साथ शासन कार्य में भी हस्तक्षेप हो रहा था। “प्लासी के युद्ध तथा बक्सर के युद्ध की विजय से उनके पैर जमते गये। शाहआलम को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को विवश होकर दे देनी पड़ी।”<sup>28</sup> इस प्रकार भारत में अंग्रेजी राज्य का विस्तार होता चला गया क्योंकि मुगल शासक तो इनके हाथों की कठपुतली हो गये थे। प्रजा तो दूर की बात, वे तो स्वयं की रक्षा करने में समर्थ न थे। अतः प्रजा की आस्था इन पर से पूर्णतया हट चुकी थी। अंग्रेजों ने भारतीय राज्यों की आपसी फूट का लाभ उठाते हुए भारत पर पूर्णतया अधिकार स्थापित कर लिया था।

इस प्रकार यह युग राजनैतिक अस्थिरता और उथल-पुथल से युक्त था। घनानंद मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीर मुंशी के पद पर कार्यरत थे। मुगल बादशाह रंगीले का शासनकाल अधिक समय तक न रह सका। क्योंकि यह बादशाह अत्यधिक विलासी, कमजोर और स्वार्थी था। इस समय मराठों के युद्धों, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से मुगल सत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी थी। मुगल सम्राट रास-रंग में लिप्त रहने के कारण इन आक्रमणों का सामना करने में सक्षम नहीं रह गये थे। इनका अपना स्वाभिमान तो खत्म ही हो चुका था। मुगलवंश अपने वैभवपूर्ण साम्राज्य के खंडहरों पर खड़ा हुआ था। इसी बीच छोटी-छोटी राजनीतिक शक्तियों का उदय हो रहा था और भारतीय शक्तियों के मध्य से ही एक विदेशी शक्ति उभर रही थी, जो भारतीयों के लिए मुश्किलें बढ़ा रही थी। अंग्रेजों की तो नीति ही थी—‘फूट डालो और राज करो।’ यह



नीति अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ अपनायी थी। इस प्रकार घनानंद के समय में मुगल शासन का अंत लगभग हो ही चुका था, मानो कंकाल शरीर प्राण त्यागने को तैयार हो।

### 1.3 आर्थिक

भारतीय पुराणों में जीवन के चार फल बताये गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जीवन के ये सभी आवश्यक तत्व हैं, परंतु आज सामाजिक जीवन में अर्थ का महत्व विशेष उल्लेखनीय हो गया है। अर्थ, सामाजिक जीवन की धुरी है। इस धुरी पर मानव जीवन पूर्णतया निर्भर है।

आर्थिक दृष्टि से रीतिकाल में समाज दो वर्गों में विभाजित था—उच्चवर्ग और निम्नवर्ग। उच्चवर्ग के अन्तर्गत केन्द्रीय व प्रादेशिक शासक वर्ग, पंडित, कलाकार, सामंत और उच्च पदाधिकारी आदि आते थे और निम्नवर्ग के अन्तर्गत किसान, मजदूर और छोटे व्यापारी आदि। रीतिकालीन उच्चवर्गीय जीवन अत्यधिक रूप से विलासी था। विलासिता मानो इन मुगल सम्राटों को विरासत में प्राप्त हुई थी, जो इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए आवश्यक थी। इस सम्बन्ध में राजकिशोर पांडेय जी का कहना है—“पूर्वमध्ययुग की शान शौकत की आदतें इस युग में उच्चवर्ग के लोगों को उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुईं। कठिन आर्थिक परिस्थितियों में भी उन्हें बहुसंख्यक स्त्रियों से भरे हरम, दरबार के कवियों, कलाकारों और विदूषकों एवं मनोरंजन के अन्य साधनों पर बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ता था।”<sup>29</sup>

तत्कालीन शासकों की यह झूठी शान शौकत केवल व्यक्तिगत ही नहीं, वरन् सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए भी आवश्यक थी। उच्चवर्ग का यह वैभवपूर्व और विलासी जीवन राज्य की आय पर बहुत बड़ा भार था, जिससे निम्न वर्ग को कभी मुक्ति नहीं मिल सकती थी। विलासितापूर्ण इस वातावरण में उच्चवर्ग श्रम से कोसों दूर था। उनके भोग और विलासिता का भार निम्नवर्ग ही कर के रूप में उठाता था। मुगल बादशाहों के युद्धों, बहुमूल्य इमारतों और उनके अधीन अमीरों के विलास और वैभव का भार निम्नवर्ग पर ही था। “सचमुच इस समय के प्रासाद

इन्हीं लोगों की हड्डियों पर खड़े हुए थे। इन्हीं के आंसू और रक्त की बूंदें जमकर अमीरों के मोती और लालों का रूप धारण कर लेती थीं।<sup>30</sup> विलासी जीवन के कारण ही उच्चवर्ग की आवश्यकतायें अत्यधिक बढ़ गयीं थीं। मुगल सम्राटों का अपव्यय इस हद तक बढ़ गया था कि उनके उत्तराधिकारियों की दशा शोचनीय हो गयी थी। प्रसिद्ध विद्वान वेंकटरमण राव जी ने इस संदर्भ में कहा है—“इस वर्ग का अपव्यय अंत में इतना बढ़ गया और आर्थिक विषमता इस सीमा तक पहुँच गयी कि दिल्ली के लाल किले में मुगल वंशजों की एक बड़ी भीड़ अर्द्ध नग्न क्षुधा पीड़ित रहने लगी। एक अवसाद की छाया में मुगल वैभव तड़पने लगा था।<sup>31</sup> देश की आर्थिक स्थिति विषम हो चुकी थी। “क्योंकि जब कभी भी देश पर किसी भी प्रकार की क्रान्ति होती थी तो सारे देश में विनाश का वातावरण छा जाता था, जिसका सीधा प्रभाव साधारण लोगों पर ही पड़ता था। सामंतों और मुगलों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। अतः यह युग इनके लिए स्वर्ण युग ही था।<sup>32</sup>

अत्यधिक रूप से भार पड़ जाने के कारण निम्नवर्ग धन कमाने पर अधिक बल देने लगा। उच्चवर्ग किसानों को बेवकूफ बनाकर, अपने विलासी जीवन को अधिक आश्रय दे रहे थे और अपने से छोटे वर्ग के लोगों पर निरंतर रूप से कर पर कर लगाकर शोषण कर रहे थे। शाहजहाँ और औरंगज़ेब के समय में करों का बोझ अकबर और जहांगीर के समय से अधिक बढ़ गया था। उस युग में किसानों को तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता था। किसानों की दशा तो इतनी शोचनीय हो गयी थी कि दिनभर के परिश्रम के पश्चात् भी उसे एक वक्त की रोटी मुश्किल से ही नसीब हो पाती थी। इसके अतिरिक्त सेना के सिपाही भी उनकी हरी-भरी फसलों को नष्ट कर देते थे। घर के कीमती सामान आदि भी उठाकर ले जाते थे। इससे बेचारी दीन-हीन प्रजा उनके अत्याचारों से त्रस्त हो उठी थी। इतना ही नहीं मजदूरों को कोड़ों से मार मिलती थी। मानवीय अत्याचारों से तो यह निम्नवर्ग त्रस्त था ही लेकिन साथ ही प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भी इनका जीवन जीना मुश्किल हो गया था। डॉ० नगेंद्र ने इस सम्बन्ध में कहा है—“भयंकर अकाल और महामारी के प्रकोपों ने मजदूरों का जीवन असहाय कर दिया था। इसी प्रकार हिंदुस्तान की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी थी।<sup>33</sup>

रीतिकाल का आर्थिक परिदृश्य किसानों की शोचनीय दशा को दर्शाता है। किसान समाज का सबसे उपेक्षित वर्ग था। कृषक और शासक के मध्य कोई भी सीधा सम्बन्ध नहीं था। दोनों के मध्य अत्यन्त दूरी थी। इनके मध्य सामंत और ज़मींदार थे। शासक और सामंत दोनों किसानों का शोषण करते थे। किसानों पर एक प्रकार से तिहरा शासन लागू था। एक तो शासक वर्ग, दूसरा उसके मध्य के सामंत और ज़मींदार, सभी उन पर शासन करते थे। यह शासन किसानों के लिए जंजीरों में बंधे होने के समान था, जिससे वे मुक्त नहीं हो पा रहे थे। भारत आरंभ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्व मध्ययुग में किसान आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक सम्पन्न नहीं था, किंतु दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होती थी। रीतियुग में अव्यवस्था के कारण किसानों को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। उन्हें अधिकांश रूप से भूखे ही रहना पड़ा। एक वक्त की रोटी मुश्किल से नसीब होती थी, ऊपर से शासकों व सामंतों के अत्याचार सहने पड़ते थे। इन अत्याचारों के कारण किसान बेबस सा हो गया। इसी कारण उस युग में नैतिक जीवन मूल्यों का ह्रास हो गया था। उच्चवर्ग तो जैसे इन नैतिक मूल्यों को भूल ही गया था। तड़क-भड़क और विलासिता के युग में उदात्त जीवन मूल्यों की उत्पत्ति के बारे में सोचना सम्भव न था। निम्नवर्ग तो संघर्ष के कारण जीवन मूल्यों से दूर हो गया था।

मध्यकालीन भारत में केवल निम्नवर्ग ही ऐसा था, जो भारत में रहकर भारतीय समाज से जुड़ नहीं पा रहा था। इन्द्रबहादुर सिंह जी ने इस वर्ग की दशा के विषय में लिखा है—“मुगलकाल मात्र मुट्ठीभर लोगों के लिए स्वर्णयुग रहा होगा। देश के बहुसंख्यकों के लिए तो आर्थिक मंदी और संकट का युग था।”<sup>34</sup> रीतिकाल में उच्च वर्ग की दशा निम्नवर्ग से विपरीत थी। उच्चवर्ग में विलासिता की चकाचौंध से सामंतों की स्त्रियाँ अछूती नहीं थी। वे अपनी समस्त आय समाप्त कर देती थीं और साथ ही ऋण लेकर भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं। ऋण से ग्रस्त होना जैसे उनके लिए सामान्य बात थी। उस समय समाज में उच्चवर्ग बाहरी तड़क-भड़क को प्रमुखता प्रदान करता था और बाह्य प्रदर्शन को सम्मान की दृष्टि से देखता था। सामंतों का विलासी होना मुख्य था। सम्राट जहांगीर द्वारा यह नियम

बनाना कि उच्चवर्ग के व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसकी सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार होगा, इस प्रवृत्ति ने ऋण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे दिया। इन्द्र बहादुरसिंह जी का कहना है—“कि अमीरों के मरने पर उनकी सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार होगा। इस कानून के बनने से प्रत्येक अमीर और दरबारी की यह प्रवृत्ति हो गयी कि वह आने वाली पीढ़ी के लिए ऋण का भारी तोहफा प्रदान करे।”<sup>35</sup>

रीतियुग में विलासिता उच्चवर्ग पर पूरी तरह से हावी हो चुकी थी। चूंकि मुगलकालीन शासकों की प्रवृत्ति साम्राज्य विस्तार की थी, इसीलिए युद्ध होना स्वाभाविक था। युद्ध के समय में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। युद्ध से थकान महसूस होने पर वेश्याओं आदि का प्रबन्ध किया जाता था। इसी कारण ये सैनिक अभियान अधिक व्यय साध्य होते थे। इस युग में जहाँ उच्चवर्ग अत्यधिक सम्पन्न था, वहीं निम्नवर्ग अनेक अभावों में गुज़र कर जीवन यापन कर रहा था। कवियों और कलाकारों को भी बड़ा संघर्ष करना पड़ रहा था। इसका कारण यह था कि “मध्यकाल में कविता युग की संस्कृति और आवश्यकता की पूर्ति के साथ-साथ कवि के अर्थोपार्जन का भी साधन बन गयी थी। अन्य प्रकार का श्रम व व्यवसाय करके जितना धन वर्षों में भी कमाना कठिन था, उतना कविगण एक ही पद से राजा को प्रसन्न करके क्षणमात्र में पा लेते थे।”<sup>36</sup> इस युग के कवियों ने राजाओं की भोग-वासना को उत्तेजित करने के लिए विविध रूपों में शृंगारिक काव्य का सृजन किया। इससे कतिपय कवि छोटी-छोटी जागीरें प्राप्त कर लेते थे, जिससे इन्हें आर्थिक लाभ होता था। दान की महिमा सम्पूर्ण युग में व्याप्त थी। अधिकांश कवियों ने इसका भरपूर प्रयोग भी किया। कवियों को दरबार में स्थान देकर दरबार की शोभा बढ़ाई जाती थी। घनानंद भी उन्हीं रीतिकालीन कवियों में से एक थे, परंतु वे ऐसे दरबारी कवि थे, जो सुख व ऐश्वर्यमय जीवन से दूर थे। वे ऐसे स्वच्छन्द कवि थे, जिन्होंने काव्य की रचना आर्थिक दृष्टि से नहीं अपितु आत्मिक शांति के लिए की थी।

रीतियुग मुगलों के वैभव के साथ-साथ पराभव का भी युग है, उसका एक कारण आर्थिक संघर्ष भी रहा। आर्थिक संघर्षों के कारण मानो इस काल में पतनकारी प्रवृत्ति बढ़ती गई। उस समय सामंतगण नग्न विलास से सम्बन्धित गाना सुनना या चित्र देखना पसंद करते थे। यथार्थ चित्रण करने वाले कलाकारों का दरबार में कोई सम्मान नहीं था, जबकि राजा को प्रसन्न करने वाले कलाकारों का

सम्मान किया जाता था। विलासिता एवं नग्नता हृद से ज्यादा हावी हो चुकी थी। वास्तविकता एवं यथार्थपरक जीवन का चित्रण करने वाले कवियों की अपेक्षा झूठी प्रशंसा व अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने वाले कवियों की स्थिति अच्छी थी। यही कारण था कि सभी कलाकारों में एक प्रकार से यश व धन पाने की होड़ मची हुई थी। आर्थिक सम्पन्नता और विलासिता से युक्त जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति (कवि) भला यथार्थ का चित्रण किस प्रकार कर सकता है? यथार्थ का चित्रण करने के लिए जिस सामाजिक धरातल को जानने की आवश्यकता होती है, उस धरातल से ये कवि कोसों दूर थे। ये तो केवल दरबारी कवि थे। अर्थ और यश की प्राप्ति हेतु कुछ भी कर सकते थे। अतः राजा का प्रशस्तिगान करना ही इनका कार्य रह गया था। इसी कारण समाज में अत्यधिक रूप से अव्यवस्था फैल गयी थी।

रीतिकालीन आर्थिक विषमता का एक कारण भारतीय उद्योग धन्धों पर अंग्रेजी सरकार का प्रभाव भी था। ब्रिटिश कंपनी के अधिकारी भारत का आर्थिक रूप से विकास नहीं चाहते थे। इसलिए “भारत का बना हुआ कपड़ा योरोप और एशिया के बाजारों में बिकता था। ढाके की मलमल एवं अन्य प्रकार के सूती एवं रेशमी वस्त्रों की मांग कम करने के लिए उस देश में भारी आयात कर लगाया गया और इंग्लैण्ड के बने हुए वस्त्र बिना किसी कर के भारत में सस्ते मूल्य पर बिकने लगे।”<sup>37</sup> इंग्लैण्ड की बहुत सी व्यापारिक कंपनियों ने भारत में व्यापार करना शुरू कर दिया। इंग्लैण्ड की बनी वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक सस्ती बिकने लगीं। भारत में बनी वस्तुओं की मांग अपने ही देश में कम होने लगी। इस प्रकार भारत को आर्थिक रूप से नुकसान होने लगा क्योंकि भारत का ही कच्चा माल तैयार करके उसको दुगने दामों पर बेचा जाता था। इसका प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर तो पड़ना ही था, साथ ही उद्योग-धन्धों पर भी पड़ा। “लगभग सन् 1823 तक इस देश के प्रायः सभी उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये।”<sup>38</sup>

ब्रिटिश कंपनी की ‘भूमि कर सम्बन्धी नीति’ से तो किसानों की दशा ही खराब हो गयी। इससे भारतीय उद्योग-धन्धे और कृषि पर आर्थिक रूप से बुरा प्रभाव पड़ा। राजकिशोर पांडेय जी का कहना है—“देश की आर्थिक स्थिति पर अराजकता एवं राजनीतिक अव्यवस्था का उतना अधिक घातक प्रभाव नहीं पड़ा, जितना कंपनी के भूमि कर सम्बन्धी नीति से हुआ। बहुत से किसानों की खेती-बारी

नष्ट हो गई। किसानों के साथ बढ़ई, लोहार आदि पेशे के लोग बेकार हो गये और आर्थिक संकट सहन करने को विवश हुए। उद्योग-धन्धे, व्यापार एवं कृषि के नष्ट होने से कंपनी के शासनकाल में देश की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गयी थी।<sup>39</sup> अंग्रेजों के आने से पूर्व खेती करने के लिए भूमि पर किसी का व्यक्तिगत रूप से अधिकार नहीं होता था। किसानों को भूमि राज्य की ओर से वितरित की जाती थी। किसान, गाँव के मुखिया के नियंत्रण में खेती करता था और अपना लगान सरकार को देता था। अंग्रेज सरकार ने कर वसूलने के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये, जो किसानों के लिए कष्टदायक साबित हुए। विदेशी नीतियाँ भारतीय हित में नहीं थीं। अतः इन नीतियों से भारतीय अर्थव्यवस्था को काफी नुकसान हुआ। इस असंतोषजनक भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए न केवल उच्चवर्ग जिम्मेदार था, बल्कि विदेशी कंपनी भी उतनी ही जिम्मेदार थीं।

घनानंद कालीन आर्थिक परिदृश्य का अवलोकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि घनानंद के समय में रीतिकालीन आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। दो वर्गों में समाज का विभाजन होने के कारण विषमता का प्रभुत्व स्थापित था। जहाँ उच्चवर्ग में शान-शौकत व धन की कमी न थी, वहीं निम्नवर्ग अनेक अभावों से जूझता दिखाई देता है। निम्नवर्ग की इस असहाय व शोचनीय दशा के लिए उच्चवर्ग ही जिम्मेदार था। राज्य का आर्थिक स्रोत एक मात्र किसान था, जो शोषण का शिकार हो गया था। घनानंद के समय में उच्चवर्ग पर नग्न विलासिता अपना रंग जमा चुकी थी, जिसमें रंगकर व्यक्ति यथार्थ से दूर हो गया था। एक तो किसानों पर उच्चवर्ग की मार ऊपर से विदेशी कंपनियों की मार। विदेशी कंपनियों ने भारतीय उद्योग-धन्धों से दोहरा लाभ उठाया, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था खराब हो गयी थी। यही कारण है कि रीतियुग में आर्थिक स्थिति शोचनीय थी।

#### 1.4 धार्मिक

धर्म से तात्पर्य है व्यक्ति और समाज के नैतिक स्तर को उच्च बनाना। धर्म के उदात्त तत्त्व ही मानव को उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं। धर्म को व्याख्यायित करते हुए रवीन्द्र कुमार सिंह ने कहा है—“धर्म वह मूल तत्त्व है, जो शाश्वत मानव

मूल्यों को स्थापित करते हुए जीवन एवं समाज को सुव्यवस्था, गतिवत्ता एवं जीवन्तता प्रदान करता है।<sup>40</sup> अतः धर्म के उदात्त तत्व ही समाज को गति प्रदान करते हैं। ये तत्व समाज की उन्नति और अवनति को सुनिश्चित करते हैं। अतः समाज में व्याप्त धार्मिक वातावरण का अवलोकन करना आवश्यक हो जाता है। रीतिकाल में धर्म पतनोन्मुख हो चला था। नैतिक-आचार व मूल्यों का पतन ही धर्म को अवनति की ओर अग्रसरित करता है। सामाजिक अव्यवस्था और नैतिक पतन के इस युग में धर्म का ह्रास हो गया था। अंधविश्वास और बाह्याडम्बरों का पालन करना ही मानो इस युग के लोगों का धर्म था। रीतिकवियों ने भक्ति भावना को स्थूल शृंगार में बदल कर धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप को लौकिक धरातल पर लाकर स्थापित कर दिया था। जहाँ भक्तिकाल में आध्यात्मिकता का बोलबाला था, वहीं इस युग में आध्यात्मिकता के स्थान पर वासना और शृंगारिकता की प्रधानता रही। भक्तिकाल की राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना, रीतिकाल में स्थूल शृंगारिक नायक-नायिका के रूप में होने लगी थी। पुष्पलता जी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं—“भक्तिकालीन भक्ति का आवेग जब मन्द पड़ गया तो रीतिकालीन कवियों ने भक्ति भावना को स्थूल शृंगार में बदल दिया।”<sup>41</sup>

रीतियुगीन कवियों का मन भक्ति के सूक्ष्म रूप के स्थान पर स्थूल शृंगार वर्णन में लगने लगा। भक्ति के सूक्ष्म रूप के स्थान पर शारीरिक वासना, काम क्रीड़ा, शृंगारिकता आदि का बोलबाला हो गया। पंडितों के शृंगार में लिप्त हो जाने से आध्यात्मिक रूप खत्म हो गया। धार्मिक पंडितों ने शृंगार के स्थूल रूप में ही जनसाधारण को लिप्त कर लिया था जिसके फलस्वरूप समाज में अव्यवस्था और अनाचार फैलता गया। धर्म के आचार्य ही जब भोग और विलास में लिप्त हो गये, तो भला उनके अनुयायी उनसे अच्छे कैसे रह सकते थे? इस सम्बन्ध में ‘यथा राजा तथा प्रजा’ की कहावत चरितार्थ होती है। धार्मिक पंडों द्वारा फैलाये गये अंधविश्वासों और बाह्याडम्बरों में साधारण जनता इतनी उलझ चुकी थी कि वह धर्म के सूक्ष्म और उदात्त तत्वों से वंचित हो गयी। वह अंधविश्वास में पड़कर अपना जीवन व्यर्थ गँवा रही थी। आम जनता परम्पराओं और धार्मिक नेताओं द्वारा बताये गये नियमों के अनुसार ही चलना और उनके आदेशों का पालन करना अपना कर्तव्य समझती थी, जनता जैसे मानो उनके हाथों की कठपुतली हो गयी थी।

धार्मिक पंडित अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे हुए थे। धर्म के नाम पर जनसाधारण को ठगा जा रहा था। इस प्रकार धर्म से मानवता तिरोहित हो चुकी थी और धर्म जनता के शोषण का साधन बन चुका था। जो धर्म स्वस्थ और उन्नतशील विचारों को सींचने का कार्य करता है, वह अब रूढ़िवादी तथा अंधविश्वासी बन गया था। धर्म की प्राणशक्ति क्षीण हो गयी थी, मानो वह मृतप्राय हो और जिसमें पाप और दुर्गंध की सड़ांध आ रही हो। कृष्णचंद्र वर्मा ने इस सम्बन्ध में कहा—“जीर्ण—शीर्ण प्रथाओं और अंधविश्वासों पर आधारित इस युग का धर्म राजनीतिक दुर्व्यवस्था के कारण और भी दूषित हो चुका था। वह जीवन की धारा को गतिशील बनाने के बजाय उसे पंकिल कर रहा था।”<sup>42</sup>

धर्म के पाखंडी लोगों को उन्नति और नवनिर्माण से कोई लेना-देना ही नहीं था। वे लोगों को अपनी ओर किसी न किसी प्रकार से आकर्षित करने में लगे रहते थे क्योंकि वे अपना मुख्य स्थान खोना नहीं चाहते थे। एक प्रकार से ये धार्मिक पंडे जनसाधारण को धोखे से अधर्म के कुएँ में ढकेल रहे थे। जनसाधारण की अज्ञानता के कारण इनको आर्थिक लाभ भी होता था। इस कारण बहुत से मठ और मंदिर धन-धान्य से परिपूर्ण हो गये थे। सर्वसाधारण में अशिक्षा और अज्ञानता के कारण अंधविश्वास की जड़ें गहरी हो गयीं। पीरों और गुरुओं पर आस्था इतनी बढ़ गयी कि लोग उनके मठों पर मनौतियाँ लेकर पहुँचते थे। धर्मान्ध भारतीय जनता, धर्म की आड़ में कहीं न कहीं धोखा खा ही जाती थी। इतना ही नहीं ये हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने गुरुओं और पीरों को ईश्वर तक का दर्जा देने लगे थे। कृष्णचंद्र वर्मा का तो कहना भी है—“जीवन कितने जटिल नियमों और संस्कारों तथा धार्मिक कृत्यों और बंधनों में जकड़ उठा था और उसकी हर जकड़न से निजात दिलाने के लिए ब्राह्मण देवता की शरण आवश्यक थी।”<sup>43</sup>

रीति युग में धर्म के नाम पर अनेक सम्प्रदाय प्रचलित हो गये थे, जिनमें शृंगारिकता की प्रधानता थी। भक्तिकालीन धार्मिक सम्प्रदायों का स्वरूप रीतिकाल में आकर कुत्सित हो गया था। भक्ति के उदात्त तत्त्व और सूक्ष्म तत्त्व तो रह ही नहीं गये थे। “भक्तिकाल में धर्म जीवन को आंदोलित कर देने वाली एक चेतन शक्ति थी। रीतिकाल में वह जड़ता और अवनति की ओर ले जाने वाली बेड़ी बन गया



था। धर्म जीवन को उन्नति की ओर ले जाता है, वह ताकत इस युग के धर्म में नहीं रह गयी थी। धर्म का रूप उदात्त न रह गया था, वरन् वह संकीर्ण और निष्प्राण हो चला था।<sup>44</sup>

अतः इस युग में भक्ति का स्थान शृंगारिकता ने ले लिया था। कृष्णभक्ति सम्प्रदाय के आचार्य बल्लभाचार्य और विठ्ठलनाथ का समय अब बीत चुका था। उनके द्वारा चलाये गये इस सम्प्रदाय में अब वैभव, विलास प्रेमी महन्त आ गये थे। छल, धोखा, दिखावा, इन धार्मिक पंडितों के जीवन के अंग बन गये थे। पूजा, अर्चना के स्थान पर ये विलासिता में ही लिप्त रहते थे। डॉ० हरवंशलाल शर्मा जी का कथन है—“भक्तिकाल की धार्मिकता और अलौकिकता का जो प्रभाव इस सम्प्रदाय में था, वह रीतिकाल की विलासधारा में एकदम धुल गया।”<sup>45</sup> भक्तिकाल में चैतन्य सम्प्रदाय ने कृष्ण के दिव्य रूप की प्रतिष्ठा की थी, जिसमें शृंगार का सूक्ष्म रूप ही व्यक्त हुआ था, परन्तु रीतिकाल में आकर शृंगार के स्थूल रूप का ही अधिकार हो गया। पवित्र, सच्चे प्रेम के स्थान पर काम चेष्टाओं का बोलबाला हो गया। इसीलिए “धर्म का तात्त्विक विकास एकदम रुक गया था और उसके स्थान पर भक्ति के बाह्य विलास अत्यंत समृद्ध हो गये थे।”<sup>46</sup> बल्लभ और चैतन्य सम्प्रदाय की ही यह दशा नहीं थी, बल्कि माधव सम्प्रदाय और निम्बार्क सम्प्रदाय की भी यही दशा थी। कृष्ण और राधा की आड़ में नायक-नायिका के शृंगार का चित्रण कर रास-लीलाओं को महत्व दिया जाने लगा। पूजा-पाठ तो दिखावा ही था, लोग वासना के पुजारी हो गये थे। शृंगारिकता का चित्रण होने के कारण ही वासना की अधिकता हो गयी थी।

भक्तिकाल में, रामभक्ति सम्प्रदाय में लोकरक्षक मर्यादा पुरुषोत्तम राम की पूजा की जाती थी, रीतियुग में राम सरयू तट पर काम क्रीड़ा करते हुए दिखाई देने लगे। कृष्णभक्ति और रामभक्ति दोनों ही सम्प्रदाय इस युग में मानो निर्जीव और निष्प्राण हो गये थे। भक्ति-काल में मुरली मनोहर कृष्ण व मर्यादा पुरुषोत्तम राम की उपासना प्रधान थी, परन्तु इस युग में राम और कृष्ण के शृंगारिक चित्रों की प्रधानता थी। मानव मन की उदात्त भावनायें नष्ट हो चुकी थीं। इनका मन शृंगार चित्रण में ही रमता था। कबीर, दादू, नानक जैसे महान विचारकों की भावना से

विशेष लगाव नहीं रह गया था। वे सभी एक दूसरे से अलग होते हुए दिखाई दे रहे थे, जिसका कारण इस युग का शासक वर्ग था। इस युग के शासकों ने इस्लाम धर्म को अपनाने पर बल दिया था—विशेष रूप से औरंगजेब ने। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की उदारवादी नीति के कारण जहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्म एक दूसरे के निकट आ गये थे, वहीं वे औरंगजेब की कट्टरवादी नीति के कारण दूर हो गये थे। समाज में अव्यवस्था फैलने का मुख्य कारण यही था। इस अव्यवस्था फैलाने में विलासिता अपना विशेष योग दे रही थी। हिन्दू वर्ग के साथ ही इस्लाम वर्ग पर भी विलासिता का प्रभाव पड़ रहा था। ये लोग धर्म को स्वार्थ का जामा पहनाकर धर्म के वास्तविक रूप और जीवन के यथार्थ से दूर होते जा रहे थे। “वास्तविकता यह है कि न हिन्दू शासक वर्ग एक था और न ही मुस्लिम शासक वर्ग। अलग-अलग तत्वों का किस समय किस तत्व के साथ मैत्री अथवा संघर्ष होगा, यह उनके धार्मिक विचारों पर नहीं, उनके अपने हितों पर निर्भर था। इस संघर्ष में यदा कदा धर्म का अवलंबन दोनों पक्ष करते थे, किन्तु धर्म साधन था, साध्य नहीं।”<sup>47</sup>

इस प्रकार दोनों ही शासक वर्ग अपना हित साधने में लगे हुए थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म के मूल तत्वों से दूर हो गये थे। विलास और शृंगार के खुले प्रदर्शन के कारण धार्मिक विश्वासों का पालन नहीं हो पा रहा था। सम्पन्न वर्ग के लोग शृंगारिकता के खुले प्रदर्शन में इतने लिप्त थे, कि नैतिकता को भूल गये थे। सभी धर्मों में शृंगारिकता का समावेश हो गया था।

संतों के अनेक सम्प्रदाय जैसे चरणदासी सम्प्रदाय, शिवनारायणी सम्प्रदाय, रामस्नेही सम्प्रदाय के साथ-साथ अनेक सूफी सम्प्रदाय जैसे चिश्तिया सम्प्रदाय, निज़ामिया सम्प्रदाय, नक्शबन्दी सम्प्रदाय आदि के सूफी संत भक्ति के उदात्त और आध्यात्मिक तत्वों से भली-भाँति परिचित थे। इन सूफी संतों ने समाज सुधार के कार्य भक्तिकाल में किये, परन्तु वह इस युग में विलासिता की चकाचौंध में क्षीण हो गये थे। वे सभी रूढ़ियों का अनुकरण करने में ही लग गये थे। भक्तिकालीन अनेक सम्प्रदाय भक्ति के उदात्त रूप को पूर्ववत् बनाये रखने का प्रयत्न तो अवश्य कर रहे

थे, पर वह केवल प्रयास था। इनमें खुद भक्ति की वह भावना नहीं रह गयी थी, दूरदर्शिता और क्रांति की भावना जैसे क्षीण हो गई थी। डॉ० नगेंद्र ने इस विषय में लिखा है—“कबीर की क्रांतिदर्शी प्रतिभा, नानक और दादू की प्रवणशीलता और सुंदरदास की विद्वता इनमें दुर्लभ थी। ये लोग तो बानियों के प्रचारक मात्र थे, स्रष्टा नहीं। प्रगति और सुधार का वह दुर्दम उत्साह, आहत आत्मा की वह पुकार जिसने पन्द्रहवीं शताब्दी में सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी, इस पतनकाल के लिए संभव न थी।”<sup>48</sup>

धर्म के नैतिक पतन का कारण राज्याश्रय भी था। दरबार के विलासी स्वरूप का प्रभाव जनसाधारण पर पड़ रहा था। भक्तिकाल में कबीर, सूर, तुलसी, जायसी आदि के द्वारा प्रवर्तित जिस भक्तिधारा के द्वारा स्वर्णयुग की स्थापना की गयी थी, वह भक्ति की धारा अब संकीर्ण परिधि और धार्मिक कर्मकांड आदि के कारण अपने मूल रूप को छोड़ चुकी थी, वासना एवं शृंगारिकता के रंग में रंग गयी थी। रीतियुग में धर्म के उदात्त स्वरूप के स्थान पर भोग और विलास की प्रधानता थी। रीतिमुक्त कवि घनानंद ने राधा-कृष्ण की उपासना की है, उसमें भक्ति कम, रास-क्रीड़ा के चित्र अधिक देखने को मिलते हैं, नाम वे कृष्ण का लेते हैं, पर उनका तात्पर्य अपनी प्रेमिका सुजान से होता है। उनका कृष्ण-काव्य सुजानमय है और सुजान वर्णन कृष्णमय। विलास और भोग की प्रधानता होने के कारण रीतियुगीन समाज मानसिक, चारित्रिक और बौद्धिक सभी प्रकार से पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। अतः रीतियुगीन धार्मिक परिस्थिति सन्तोषजनक न थी। इस समय धर्म रूढ़िवादी पंडे-पुजारियों को महत्व देने वाला, अंधविश्वास पर आधारित था। इसीलिए उसमें उन्नतिशील विचारों का अभाव था।

### 1.5 सांस्कृतिक

जीवन के प्रवाह के साथ-साथ संस्कृति का रूप भी बदलता है। जिस प्रकार जीवन जड़ और स्थिर नहीं है, उसी प्रकार संस्कृति भी स्थिर और जड़ नहीं है। गतिशीलता इसकी एक महान विशेषता है। समाज के आर्थिक और सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन भी बदलता है। मानव एक

सामाजिक प्राणी है। अतः उसके व्यक्तित्व का निर्माण संस्कृति के द्वारा ही होता है। मनुष्य जिस समाज में पलता है, उस वातावरण का प्रभाव, उसके व्यक्तित्व पर अनिवार्य रूप से पड़ता है।

वस्तुतः हर देश की अपनी संस्कृति होती है। भारत विविध धर्मों और जातियों का देश है। यहाँ विविध धर्मों और जातियों के लोग साथ-साथ रहते हैं। सभी देशों के अपने-अपने आचार-विचार, रीति-रिवाज होते हैं और उनका आदान-प्रदान होता रहता है। भारत में यहाँ समय-समय पर अनेक विदेशी जातियों और धर्मों का आगमन हुआ, जिससे उनके अचार-विचार का आदान-प्रदान हुआ। समाहार करना भारत की एक महान विशेषता है। यही कारण है कि इस देश ने विदेशी जातियों से उनके आचार-विचार, रीति-रिवाज आदि अपनाये। भारत में विविध देशों की संस्कृतियों का मेल है। भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य के संदर्भ में डॉ० राजेंद्र प्रसाद का कहना है—“यहाँ विभिन्नताओं की तह में ऐसी समता और एकता फैली हुई है जो अन्य विभिन्नताओं को ठीक उसी तरह पिरो लेती है और पिरोकर एक सुंदर समूह बना देती है, जैसे रेशमी धागा भिन्न-भिन्न प्रकार की सुंदर मणियों अथवा फूलों को पिरोकर एक सुंदर हार तैयार कर देता है, जिसकी प्रत्येक मणि या फूल दूसरों से न तो अलग है और न हो सकती है”<sup>49</sup> प्रत्येक देश या राष्ट्र का प्राण उसकी अपनी संस्कृति होती है, जो सम्पूर्ण विश्व में अपनी पहचान बनाती है। संस्कृति किसी भी देश या जाति की अन्तरात्मा होती है। इसके द्वारा हमें किसी भी देश और काल के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है, जिसके आधार पर वह अपने सामाजिक या सामूहिक आदर्शों का निर्माण करती है। यह संस्कृति एक युग से दूसरे युग तक चलती हुई अपनी छाप छोड़ती है। विविध रीतियों व परम्पराओं में नवीनीकरण और परिवर्तन होता है और उस परिवर्तन का प्रभाव जीवन पर पड़ता है। यद्यपि प्राचीन समय से चली आ रही संस्कृति अपना अस्तित्व तो नहीं खोती है, परन्तु परिवर्तन होने के कारण इसमें नयापन जरूर आ जाता है।

संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इसको शब्दों की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा का है। अगर संस्कृति शब्द पर विचार किया जाय तो “संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ‘कृ’ धातु से भूषण अर्थ में

सुट् का आगम करके 'वित्त्' प्रत्यय से बनता है<sup>50</sup> संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है—उत्तम प्रकार से किया गया कार्य। मानव अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति, सुख, शांति को प्राप्त करता हुआ दूसरों को सुख, शांति प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करता है। कोशग्रंथों के अनुसार संस्कृति शब्द का अर्थ है—“निर्माण, सभ्यता, शुद्धि, परिष्कार, परिमार्जन, पवित्रीकरण, आचारगत परम्परा, सजावट, निश्चय पूरा करना आदि।”<sup>51</sup>

संस्कृति शब्द का गहराई से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि किसी देश, जाति अथवा समाज के विशिष्ट पुरुषों के कार्य, वचन, आचार-व्यवहार तथा उनके द्वारा स्थापित परम्परायें ही उस देश, जाति की संस्कृति का निर्माण करती हैं। सामान्यतः समाज में रहने वाले शिष्ट मनुष्यों के सभी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं कलात्मक विचारों एवं कार्यकलापों को संस्कृति के अन्तर्गत ही माना जाता है। “संस्कृति को नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा भक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से उस महान सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्ति बताते हैं।”<sup>52</sup> संस्कृति व्यक्तियों द्वारा किया गया बौद्धिक प्रयास है, यह देश के नागरिकों का शताब्दियों में किया गया कार्य परिणाम है। संस्कृति का प्रभाव हमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक दायित्वों और पारस्परिक शिष्टाचारों में परिलक्षित होता है। संस्कृति के प्रभाव से ही व्यक्ति को गार्हस्थ, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, कलात्मक एवं धार्मिक आदि ऐसे समस्त कार्यों को करने की प्रेरणा प्राप्त होती है, जो व्यक्तिगत एवं सामूहिक दृष्टि से उचित है।

संस्कृति एक सामाजिक विरासत है, जो संचय करने से ही विकसित होती है। यह मनुष्य द्वारा अर्जित की जाती है। एक पीढ़ी अपने आचार-विचार, रुचि-अरुचि, कला-संगीत, रहन-सहन और आध्यात्मिक धारणाओं को दूसरी पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। यह क्रम पीढ़ी दर पीढ़ी निरन्तर चलता रहता है। किसी देश अथवा जाति की संस्कृति का स्वरूप उस देश अथवा जाति के व्यक्तियों के विकास व प्रयत्नों पर आधारित है। मनुष्य संस्कृति को सीखकर अपनाता है, परम्परा

इन सांस्कृतिक तत्वों को भूतकाल से वर्तमान में लाती है और भविष्य तक ले जाती है। संस्कृति हीन मनुष्य पशु के समान है; इसी कारण वह समाज से कट जाता है। जबकि “संस्कृति एक अन्तर्निहित जीवन गुणता है जो बहुत गहरे रूप से मानव स्वभाव में समाहित है।”<sup>53</sup> संस्कृति हमारे जीवन की वह आधारशिला है, जिसके आश्रय से जाति, समाज एवं देश का पूर्ण स्वरूप उभर कर सामने आता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि “संस्कृति किसी देश या जाति की अंतरात्मा है। इससे उस देश के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है, जिनके आधार पर वह अपने सामाजिक या सामूहिक आदर्शों का निर्माण करता है। यह विशिष्ट समुदाय, जाति, देश या धर्म की विशिष्टता प्रकट करते हैं।”<sup>54</sup>

सामान्यतः संस्कृति उन उदात्त एवं पवित्र विचारों और कार्यों की सूचक रही है, जो मानवता का विकास करती है तथा देश या जाति को उच्च विचारों के साथ गति प्रदान करती है। जीवन में उचित, अनुचित का बोध हमें अपनी संस्कृति के द्वारा ही होता है। यह संस्कृति मानव जीवन को सभ्य बनाती है, उसके जीवन को दिशा निर्देशित करती है और उसमें आत्मबोध का संचार करती है। अतः “संस्कृति का अर्थ उन जीवन मूल्यों से है, जो मन को अधोगामी से ऊर्ध्वगामी बना देते हैं।”<sup>55</sup>

संस्कृति जीवन की परिपक्वता का पर्याय है जो मनुष्य को विवेकपूर्ण निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है “संस्कृति लोगों की आन्तरिक तथा मानसिक उन्नति की परिचायक है।”<sup>56</sup> प्रत्येक देश की अपनी अलग संस्कृति होती है। प्रत्येक देश के निवासियों पर उसके देश, समाज एवं समय का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वातावरण व परिवेश के प्रभाव से दूर रहना मनुष्य के लिए कठिन है। अतः समाज में सुसंस्कृत व्यक्ति वही कहलाता है, जो शिष्टाचार का ध्यान रखता है जैसे— वह पान खाकर इधर—उधर थूकता नहीं है, किसी से टकरा जाने पर आँखें नहीं दिखाता, असभ्य होकर बात नहीं करता, बिना बात के झगड़ता नहीं है आदि। अतः संस्कृति किसी राष्ट्र के व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया ऐसा व्यवहार है, जो आने वाले व्यक्तियों का आदर्श, उनके द्वारा अनुकरणीय और उन्हें सही अर्थों में सामाजिक बनाने वाला है। संस्कृति समाज को प्रवाहमान बनाती है। उसके नियम

समाज को एक विशिष्ट जीवन व्यतीत करने वाली चेतना प्रदान करते हैं, परिणामस्वरूप प्रत्येक देश, समाज अथवा राज्य एक विशिष्ट संस्कृति के लिए जाना जाता है।

भारतीय इतिहास के मध्ययुग की संस्कृति की सबसे प्रमुख विशेषता मुस्लिम संस्कृति से भारतीय संस्कृति का सम्पर्क होना है। मुगल शासन के दौरान भारत में विविध सांस्कृतिक तत्त्वों का आदान-प्रदान हुआ। इसलिए इस युग में हिंदू मुस्लिम संस्कृति का पारस्परिक समन्वय मिलता है। भारतीय परम्पराओं का मेल, मुगलों द्वारा लायी गयी तुर्क-ईरानी संस्कृति से हुआ। इस सम्बन्ध में हरबंस मुखिया जी का कहना है—“फ़ारसी भाषा का आम लोगों में पहुँचना, उर्दू का विकास, मुशायरे का आयोजन, कुछ पुराने नृत्य और संगीत, कथक, मुगलई पकवान आदि में मुगल दरबार की संस्कृति के गली के नुक्कड़ों तक पहुँचने के प्रमाण मिलते हैं। यहाँ तक कि अपने से बड़ों के प्रति अदब और सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उनके सामने खड़ा होना भी संस्कृति है। यदि बैठे हों तो उनसे नीचे का स्थान ग्रहण करना, सभा में चुप रहना और पूछे गये प्रश्नों का ही जवाब देना, ये सब बातें मुगल दरबार की संस्कृति से व्युत्पन्न हैं और आम लोगों में प्रसारित होकर रोजमर्रा की भारतीय संस्कृति का हिस्सा बन गई हैं।”<sup>57</sup> इस प्रकार यह तुर्क-ईरानी संस्कृति भारतीय संस्कृति में इस कदर घुल-मिल गयी कि अलग प्रतीत ही नहीं होती। रीतिकाल में संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन के दो केंद्र दिखलाई देते हैं—दरबारी संस्कृति और ग्रामीण संस्कृति। प्राचीनकाल में ग्रामीण संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता था, जबकि मध्यकाल में दरबारी संस्कृति के प्रभाव से ग्रामीण संस्कृति दब सी गयी। प्राचीन काल में दरबार में पुरोहित वर्ग को मुख्य स्थान प्राप्त था और मध्यकाल में धार्मिक भावनाओं का अधिकार था, वहीं रीतिकाल तक आते-आते दरबारी वातावरण इतना अधिक प्रभावशाली हो गया कि पुरोहित वर्ग और कविगण आदि पूर्णतया राज्याश्रित हो गये। कवियों का प्रमुख कार्य, राजाओं और शासकों की प्रशंसा करना था, क्योंकि रीतिकालीन दरबारी संस्कृति का केंद्र राजा था।

कला और संस्कृति की दृष्टि से मुगलकाल एक वैभवपूर्ण काल रहा है। मुगल शासक कला प्रिय थे। उनकी कलाप्रियता से कलाकौशल को अत्यन्त

प्रोत्साहन मिला। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में काव्य कला और संगीत की पर्याप्त उन्नति हुई। इसका प्रमुख कारण मुगल सम्राटों के पास असीमित धनकोष का होना था। मुगलकाल में प्रचलित वास्तुकला, चित्रकला और स्थापत्यकला में भारतीय और फारसी शैली का मिश्रण देखने को मिलता है, जिसमें ताजमहल, जामा मस्जिद, मोती मस्जिद, दिल्ली का लाल किला, फतेहपुर सीकरी और आगरे का लालकिला आदि मुख्य हैं। शाहजहाँ के शासनकाल के उत्तरार्द्ध तक ललित कलायें अपने उत्कृष्ट रूप में चल रही थीं, परन्तु औरंगजेब के शासनकाल में देश में थोड़ी अशांति फैल गयी थी जिसका सीधा प्रभाव साहित्य और कला पर पड़ा। अतः औरंगजेब के शासन काल में चित्रकला खत्म हो गयी थी क्योंकि चित्रकार भिन्न-भिन्न राज्यों में चले गये थे। प्रसिद्ध विद्वान सतीश चंद्र जी का कहना है—“सांस्कृतिक स्तर पर यह काल समन्वय काल का एक भाग है। औरंगजेब के दरबार से बिखरे हुए चित्रकार भिन्न-भिन्न राज्यों में गये तथा उन्होंने चित्रकला में एक नये जीवन का संचार किया।... मुहम्मदशाह रंगीले को संगीत का अच्छा ज्ञान था और उसने ‘रंगीले पिया’ उपनाम से ख्याल के पदों की रचना की थी। स्थापत्य कला में मुगल शैली के प्रभाव का सबसे बड़ा दृष्टान्त पेशवा द्वारा बनवाए गये पेशवा महल हैं।”<sup>58</sup>

रीतिकाल में दरबारी संस्कृति ग्रामीण संस्कृति पर प्रभावी हो गयी थी। दरबारी संस्कृति नगर परिवेश में पल रही थी, इसी कारण यह ग्रामीण संस्कृति से दूर हो गयी थी। दरबारी वातावरण, भोग और विलास की प्रवृत्ति, लोगों का नैतिक पतन, अतिशय ऐश्वर्य, राज-दरबार के केन्द्र थे। इस युग में शासकों का भोजन अत्यंत शाही होता था। लगभग एक हजार के आस-पास व्यंजन इनकी थाली में होते थे, जिनमें अधिकांश रूप से विदेशी व्यंजनों की ही अधिकता होती थी। इनके बर्तन सोने, चाँदी के होते थे। इस शाही रहन-सहन का कारण मुगल सम्राटों के पास असीमित धनकोष होना था। दरबारी सौन्दर्यवृत्ति का केन्द्र बिन्दु ‘नारी’ थी। नारी के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण इस युग में नहीं रह गया था। इस युग में नारी के अंग-प्रत्यंगों, भाव-मुद्राओं, वेश-भूषा व उसके भोग्या रूप का चित्रण अधिक हुआ। इस युग में नारी मानो विलास की वस्तु मात्र ही रह गयी थी। नारी



सौन्दर्य चित्रण दरबारी वातावरण की देन है। रीतिमुक्त कवि घनानंद स्वच्छन्द कवि थे। उन्होंने नारी के बाह्य स्वरूप के स्थान पर आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रण किया है। नख-शिख वर्णन व नायिका भेद वर्णन में घनानंद ने स्वयं को बहने नहीं दिया अपितु उस विलासिता, बाह्यता, ऐश्वर्य से पृथक होकर एक ऐसे रास्ते को अपनाया, जो परम्परामुक्त व स्वच्छन्द था। उसी स्वच्छन्द रास्ते पर चलकर ही घनानंद ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की और अनुभूति प्रधान काव्य का सृजन किया।

दरबारी जीवन सामान्य जन-जीवन से दूर ऐश्वर्यमय वातावरण में अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, जो यथार्थ से कोसों दूर था। दरबारी संस्कृति दिखावटी जीवन में ही फंस कर रह गयी थी। ऐसे समय में—“सांस्कृतिक विकास का सम्बन्ध समाज के उच्च स्तर से था। सामान्य जन जैसे रूढ़ संस्कारों को ढोता हुआ नवीन आलोक के अभाव में भटक रहा था।”<sup>59</sup> यही कारण था कि जनसाधारण की अपेक्षा दरबारी वातावरण में विलास का कुत्सित रोग समाज में द्रुतगति से फैल रहा था। “वास्तव में रीतिकाल राजपथ का काव्य है, जनपथ का नहीं।”<sup>60</sup> रीतिकालीन ग्रामीण संस्कृति में नृत्य, उत्सव, तीर्थ, खेलकूद, त्यौहार आदि का उन्मुक्त स्वरूप दिखाई देता है। ग्रामीण संस्कृति में निम्नवर्ग मुख्य था परन्तु उसका चित्रण कम हुआ है। प्रेमशंकर जी ने दोनों संस्कृतियों के विषय में कहा है—“एक ओर अपने अभावों से जूझते ग्राम समाज के सामान्य जन, दूसरी ओर सामंती विलास के प्रतिनिधि नगर समाज के प्रभुत्व वर्ग।”<sup>61</sup> ग्रामीण परिवेश में सामाजिक रूढ़ियाँ और अंधविश्वासों का रूप भी विद्यमान था। जादू-टोने, पूर्वजन्म, भाग्य, ज्योतिष विद्या का ज्ञान, स्त्रियों और पुरुषों में अंगों के फरकने से शकुन-अपशकुन के होने में जनसाधारण का विश्वास बहुत अधिक था। स्त्रियों के बाँया अंग फरकने पर शकुन और दाँया अंग फरकने पर अपशकुन का होना माना गया है, जबकि पुरुषों के लिए इसके विपरीत माना गया है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है—

“बाम बाँह फरकति, मिलैँ जो हरि जीवनमूरि।

तौ तोहीं सौँ भेटिहौँ राखि दाहिनी दूरि।।<sup>62</sup>

रीतियुग में विभिन्न शारीरिक क्रियाकलापों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति की जाती थी। संयोग के समय, नायक-नायिका का, परिवार, समाज एवं गुरुजन आदि के डर से छुप-छुप कर मिलना और प्रेम व्यापार की सांकेतिक भाषा का वर्णन बिहारी ने अत्यन्त चतुराई के साथ किया है—

“लखि गुरुजन—बिच कमल सौँ, सीसु छुबायौ स्याम।

हरि—सनमुख करि आरसी, हियँ लगाई बाम।।<sup>63</sup>

घनानंद उन्मुक्त प्रेम के गायक हैं। उनके समय में नायक-नायिका भेद वर्णन अपने चरम पर था, पर घनानंद इस बंधे-बंधाये प्रवाह में बहने वाले कवि न थे, वे तो नवपथ के निर्माता थे। वे परम्परा में नवीनता के पोषणकर्त्ता थे। ग्रामीण परिवेश में कोयल पपीहे की मधुर आवाज, अबीर और गुलाल की होली, पिचकारी की फुहार, ढोलक की थाप, बँड की आवाज, स्त्री-पुरुषों का आकर्षण, ऋतु के अनुकूल ही होता था। अतः प्राचीन काल से ही संस्कृति की एक दीर्घ परम्परा रही है, जो सांस्कृतिक आदान-प्रदान और समन्वय से समृद्ध हुई है। इस युग में काव्य और कला की पर्याप्त उन्नति हुई परन्तु भारतीय संस्कृति के चरम रूप का प्रवाह मंद गति से होने लगा था।

रीतिकालीन परिस्थितियों का अध्ययन करने के पश्चात् हम देखते हैं कि रीतियुग मुगलशासन के उत्कर्ष से अपकर्ष तक का युग रहा है, जिसमें शृंगारिकता विलासिता, लूट-पाट, मार-काट आदि प्रवृत्तियाँ दिखलाई देती हैं, जिससे समाज प्रगति की ओर अग्रसर नहीं हो पा रहा था। स्वस्थ विचारों के स्थान पर रुढ़िवादिता का ही प्राधान्य रहा, परन्तु कला का जो विकास इस युग में हुआ, उतना अन्य किसी युग में नहीं। इस प्रकार यह युग विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के उपरान्त पतन का युग है।

## संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2000, पृ०सं०-10
2. वही, पृ०सं०-11
3. डॉ० पुष्पलता, रीतिकालीन शृंगारिक सतसङ्गों का तुलनात्मक अध्ययन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली-1980, पृ०सं०-13
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड-1995, पृ०सं०-161
5. डॉ० लालचंद्र जैन, जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन, भारती पुस्तक मन्दिर, भरतपुर-1976, पृ०सं०-37
6. सतीश चंद्र, उत्तरमुगल कालीन भारत, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली-1980, पृ०सं०-24
7. डॉ० नगेंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली-1987, पृ०सं०-297
8. डॉ० शशिप्रभा प्रसाद, रीतिकालीन भारतीय समाज, लोकभारती प्रकाशन महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1979, पृ०सं०-242
9. वही, पृ०सं०-243
10. डॉ० वै० वेंकटरमण .राव, रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा-1972, पृ०सं०-219
11. डॉ० इंद्रबहादुर सिंह, रीतिकालीन साहित्य: परिवेश और मूल्य, अरविंद प्रकाशन, मुंबई-1988, पृ०सं०-36
12. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत भाग-2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- पृ०सं०-49, 51
13. डॉ० जगदीश्वर प्रसाद, रीतिकाव्य: एक नया मूल्यांकन, नई कहानी, अलोपी बाग, इलाहाबाद-1993, पृ०सं०-31,32
14. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ०सं०-9
15. डॉ० जगदीश्वर प्रसाद, रीतिकाव्य : एक नया मूल्यांकन, पृ०सं०-32

16. डॉ० इंद्रबहादुर सिंह, रीतिकालीन साहित्य : परिवेश और मूल्य, पृ०सं०-93,
17. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी-सं० 2035, पृ०सं०-12
18. प्रताप सिंह, मुगलकालीन भारत (बाबर से शाहजहाँ तक), रिसर्च पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ०सं०-764
19. डॉ० सुधीन्द्र कुमार, रीतिकाव्य की इतिहासदृष्टि, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ०सं०-118
20. डॉ० वै० वेंकटरमण राव, रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ०सं०-88
21. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ०सं०-1, 2
22. डॉ० वै० वेंकटरमण राव, रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ०सं०-92
23. डॉ० ब्रजनारायण सिंह, कवि पदमाकर और उनका युग, अनुसन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर-1966, पृ०सं०-17
24. डॉ० ईशर सिंह, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी का रीतिकाव्य, दीप प्रकाशन, अम्बाला शहर-1972, पृ०सं०-26
25. डॉ० राजमल बोरा, भूषण और उनका साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-1968, पृ०सं०-3
26. डॉ० ब्रजनारायण सिंह, कवि पदमाकर और उनका युग, पृ०सं०-21
27. डॉ० नगेंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं०-296,
28. डॉ० लालचंद्र जैन, जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन,, पृ०सं०-30
29. डॉ० राजकिशोर पांडेय, हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्ययुग, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ-1971, पृ०सं०-28
30. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ०सं०-13
31. डॉ० वेंकटरमण राव, रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ०सं०-149

32. डॉ० पुष्पलता, रीतिकालीन शृंगारिक सतसङ्गों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ०सं०-16
33. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ०सं०-13
34. डॉ० इंद्रबहादुर सिंह, रीतिकालीन साहित्य परिवेश और मूल्य, पृ०सं०-81
35. वही, पृ०सं०-81
36. डॉ० जगदीश गुप्त, रीतिकाव्य, साहित्य भवन प्रालि०, इलाहाबाद-1961, पृ०सं०-42
37. डॉ० राजकिशोर, पांडेय, हिन्दी साहित्य का उत्तरमध्ययुग, पृ०सं०-29
38. वही, पृ०सं०-30
39. वही, पृ०सं०-31
40. डॉ० रवीन्द्रकुमार सिंह, बिहारी (सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ), लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1994, पृ०सं०-131
41. डॉ० पुष्पलता, रीतिकालीन शृंगारिक सतसङ्गों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ०सं०-17
42. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, गायत्री प्रेस, दारागंज इलाहाबाद-1965, पृ०सं०-44
43. वही, पृ०सं०-42
44. वही, पृ०सं०-33
45. डॉ० हरवंशलाल शर्मा/परमानन्द शास्त्री, बिहारी और उनका साहित्य, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़-1972, पृ०सं०-23
46. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ०सं०-17
47. सतीश चंद्र, उत्तरमुगलकालीन भारत, पृ०सं०-211
48. डॉ० नगेंद्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ०सं०-19
49. डॉ० राजेंद्र प्रसाद, साहित्य, शिक्षा और संस्कृति, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट-दिल्ली-1960, पृ०सं०-158

50. सं० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा तारिणीश झा, रामनारायण लाल, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ (कोश), लालबेनी, बेनी प्रसाद, इलाहाबाद-1967, पृ०सं०-1195
51. सं० कालिकाप्रसाद, राजवल्लभसहाय एवं मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं०-2013, पृ०सं०-1390
52. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली-1950, पृ०सं०-73
53. गोविंद चातक, संस्कृति : समस्या और संभावना, तक्षशिक्षा प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-1994, पृ०सं०-219
54. नैपाल सिंह, उत्तरी भारत के सांस्कृतिक विकास में संतों का योगदान, तारामण्डल, सासनी गेट-अलीगढ़-1986, पृ०सं०-19
55. डॉ० रवीन्द्र कुमार सिंह, बिहारी सतसई (सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ), पृ०सं०-27
56. डॉ० राजकुमार, भारतीय समाज एवं संस्कृति, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-2005, पृ०सं०-208
57. हरबंस मुखिया, भारतीय मुगल, आकार बुक्स, मयूर विहार, दिल्ली-2008, पृ०सं०-220
58. डॉ० सतीश चंद्र, उत्तरमुगलकालीन भारत, पृ०सं०-210
59. डॉ० राजमल बोरा, भूषण और उनका साहित्य, पृ०सं०-10
60. डॉ० रवीन्द्र कुमार सिंह, बिहारी सतसई (सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ), पृ०सं०-44
61. प्रेमशंकर, भक्तिकाव्य का समाज दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2000, पृ०सं०-36
62. सं० जगन्नाथदास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी-1998, दो०सं०-572
63. वही, दो०सं०-34

## द्वितीय अध्याय

### घनानंद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- 2.1 व्यक्तित्व
- 2.2 कृतित्व
- 2.3 वैचारिक धरातल

# घनानंद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

## 2.1 व्यक्तित्व

सामान्यतया युग प्रवर्तक कवि समाज की धारा में बहने के साथ-साथ उसमें अपनी रुचि के अनुसार परिवर्तन कर लेता है। वह समाज से प्रभावित तो अवश्य होता है, परन्तु वह समाज में प्रवाहित होने वाले विविध आयामों और उसकी गम्भीरता का पूरा ध्यान भी रखता है, तत्पश्चात् अपने काव्य का सृजन करता है। जो कवि समाज का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकता है, वह चाहे लोकनायक हो या न हो, साहित्य के क्षेत्र में नूतन पथ प्रशस्त करे या न करे, महान अवश्य होता है, घनानंद ऐसे ही महान कवियों की श्रेणी में आते हैं।

घनानंद रीतिकाल की रीतिमुक्त धारा के प्रमुख कवि हैं। भक्तिकाल में जिस प्रकार रामाश्रयी, कृष्णाश्रयी, संतकाव्य, सूफीकाव्य आदि धारायें प्रवाहित थीं, रीतिकाल में उसी प्रकार रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त आदि धारायें प्रवाहित थीं, जो अपने-अपने अनुसार काव्य का सृजन कर रही थीं। रीति युग में रीतिकवियों का एक ऐसा वर्ग, जो रीति ग्रंथों की रचना करते समय लक्षण ग्रन्थों के आधार पर, परम्पराओं से युक्त शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना कर रहा था, रीतिबद्ध कवियों का वर्ग कहलाया। यह वह वर्ग था, जो संस्कृत काव्यशास्त्र से पूर्णतया प्रभावित था। नियमों व परम्पराओं से जकड़े होने के कारण यह वर्ग स्वतः स्वतन्त्र न था। इसलिए इनकी प्रतिभा कुंठित होती जा रही थी। राजाओं की प्रशंसा करना, अर्थ लाभ की प्राप्ति और यश प्राप्ति करना इन कवियों का उद्देश्य था। इसलिए ये कवि परम्परा से चले आ रहे रीति, नियमों को छोड़ना नहीं चाहते थे। इन्हें रीति, नियमों से मुक्त होना स्वीकार न था। रीति की जंजीरों के बंधन में ये कवि इतनी बुरी तरह से जकड़ गये थे कि इसकी जकड़ से छूट पाना बहुत ही मुश्किल था। इसी कारण इन रीतिबद्ध कवियों के हृदय में मर्मस्पर्शिता का अभाव हो गया था। इतना ही नहीं इन कवियों की रचनाओं में मौलिकता, नवीनता और सूक्ष्मता का भी अभाव हो रहा था क्योंकि उनके सामने काव्य की सीमाओं का बन्धन था। अतः इन रीतिबद्ध कवियों की दृष्टि भौतिक धरातल पर ही सीमित रह गई थी।



रीतिबद्ध कवियों के साथ-साथ कुछ ऐसे कवियों का वर्ग भी था, जो शृंगार रस की रचनायें काव्यशास्त्र के नियमों का सहारा लेकर तो करता था, परन्तु रीतिग्रन्थों और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का सृजन नहीं करता था। लेकिन फिर भी इनकी रचनाओं पर रीति का प्रभाव पूर्णतया दिखाई देता है। ये रीतिशास्त्र के ज्ञाता तो थे, परन्तु रीतिशास्त्र के अनुसार काव्यसृजनकर्त्ता न थे। इनकी रचना रीतिशास्त्र के नियमों के अनुकूल ही थी, इसलिए ये रीतिसिद्ध कवि कहलाये। रीति की सिद्धि इन्हें पूर्णतया प्राप्त थी। ये रीति के बंधनों में पूर्णतया बंधे भी न थे और रीति के बंधनों से पूर्णतया मुक्त भी न थे। साथ ही ये रीति के नियमों का उपयोग भी किया करते थे। इस धारा के कवियों में मुख्यतः बिहारी, सेनापति, पजनेस, नृपसम्भु, प्रीतमसहायदास आदि कवियों के नाम लिये जा सकते हैं।

रीतिसिद्ध कवि न तो पूर्णतया रीतिबद्ध कवियों की श्रेणी में आते हैं और न ही पूर्णतया रीतिमुक्त कवियों की श्रेणी में। ये रीतिबद्ध कवियों की भांति रीतिशास्त्र, काव्यशास्त्र, नख-शिख वर्णन, नायिका-भेद आदि से युक्त होकर काव्य का सृजन नहीं करते थे, बल्कि इन सबका सहारा मात्र ही लेते थे। रीतिसिद्ध कवियों को रीति की बंधी बंधाई परिपाटी का सहारा लेना तो स्वीकार था, पर वे इन रीति, परम्पराओं के दास बनना नहीं चाहते थे और वे रीति की परिपाटी से स्वतन्त्र होकर भी नहीं चलना चाहते थे। यदि यह कहा जाय कि रीतिसिद्ध कवि रीति से अलग होकर भी नहीं चलना चाहते थे और न ही उनका दास बनना चाहते थे, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। रीतिसिद्ध कवि मध्यपंथी थे। ये रीतिशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे, लेकिन ये बंधनों में जकड़े नहीं थे। इसी कारण ये रीतिबद्ध कवियों से भिन्न थे।

रीतिबद्ध कवि काव्य सृजन करने में सम्पूर्ण लक्षणगत नियमों का पालन करते थे, जबकि रीतिसिद्ध कवियों के लिए इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। ये रीति के संकेत लेकर और कल्पना का सहारा लेकर अपने भावों को व्यक्त करते थे। इन कवियों ने अपनी कवित्व शक्ति के आधार पर काव्य सृजन किया, इसी कारण इनका काव्य, सरस और मार्मिक बन पड़ा है। अतः इन कवियों में लक्षणकारों की अपेक्षा भावुकता और मौलिकता अधिक थी। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इन कवियों के विषय में लिखा है—“इस प्रकार के कवियों को, जो रीति विरुद्ध नहीं

और लक्षणग्रन्थों से ऐसे बंधे भी नहीं कि तिलभर उससे हट न सकें, भले ही वे रीति की परम्परा को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाते हों, रीतिसिद्ध कवि कहना चाहिए।<sup>1</sup>

रीतिमुक्त काव्यधारा को 'स्वच्छन्द काव्यधारा' के नाम से भी जाना जाता है। 'रीतिमुक्त' शब्द से ही उसका अर्थ व्यक्त हो जाता है। अतः रीतिमुक्त शब्द से तात्पर्य है कि रीति के साहित्यिक बंधनों, नियमों, परंपरा एवं रूढ़ियों से मुक्त होकर काव्य का सृजन करना। रीतियुग में इस नवीन स्वतन्त्र धारा के प्रवाहित होने का कारण उस युग में रूढ़िबद्धता का अत्यधिक समावेश होना था। बंधी बंधाई परिपाटी पर काव्य सृजन करना मूलतः इन कवियों का मूल लक्ष्य हो गया था। रीतिबद्ध कवियों ने लक्षणग्रन्थों के आधार पर अनेक उत्तमग्रन्थों का सृजन किया, परन्तु आगे चलकर यह लक्षण की परिपाटी एक लकीर बन गई और उसी लकीर पर चलकर ये कवि काव्य की रचना कर रहे थे। अतः इस युग में स्थूलता, बाह्यता और अश्लीलता आदि का समावेश तेजी से होता गया।

ऐसे समय में कुछ ऐसे कवियों का वर्ग प्रकाश में आया, जिन्होंने रीतिकालीन परम्पराओं और रूढ़ियों से हटकर काव्य सृजन किया। ये वे कवि थे, जो लक्षणों तथा रीति की बंधी बंधाई परिपाटी में रहकर कार्य करने के पक्षपाती न थे। ये प्रतिभा सम्पन्न कवि परम्परा से हटकर नवीन व स्वतन्त्र मार्ग पर चलने के पक्षपाती थे। इसलिए इन कवियों को परम्परा मुक्त कवियों की श्रेणी में रखा गया। इन कवियों की विशेषता यह थी कि जो भी इनके हृदय में आया, स्वतन्त्र रूप में अभिव्यक्त कर दिया। इनमें अर्थ लाभ की लालसा न थी, न ही ये कवि राजाओं को प्रसन्न करने के लिए काव्य सृजन करते थे। इन्होंने अपने जीवन में जो भी भोगा, उसे उसी प्रकार से काव्य में अभिव्यक्त कर दिया। ये कवि प्रेम की उमंग में थिरकने वाले प्रेम के पपीहे थे जो किसी रीति या शास्त्र के बंधन को नहीं मानते

रीतिमुक्त कवि किसी भी शास्त्र और रुढ़ि के बंधन से पूर्णतया स्वतन्त्र थे, इसलिए वे मुक्त भाव से कविता किया करते थे। इन कवियों में विशेष रूप से घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर और द्विजदेव आदि का नाम मुख्य है। आचार्य शुक्ल ने रीतिमुक्त धारा के कवियों के लिए सारगर्भित टिप्पणी दी है—“आलम—‘प्रेमोन्मत्त कवि’, ‘प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानंद की कोटि में होनी चाहिए।’ घनानंद—‘साक्षात् रसमूर्ति’, ‘वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि’, ‘प्रेम मार्ग के प्रवीण और धीर पथिक।’ बोधा—‘रसिक जीव’, ‘रसोन्मत्त कवि’, ‘रसज्ञ कवि’, ‘स्वभाव में फक्कड़पन।’ ठाकुर—‘सच्ची उमंग के कवि’, ‘सच्चे, उदार, भावुक और हृदय के पारखी।’<sup>3</sup> रीतिमुक्त कवियों में अनुभूति की प्रधानता थी। अनुभूति के आधार पर ही इन कवियों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। इसलिए इन कवियों ने बाह्य स्वरूप के स्थान पर अपनी अनुभूति को ही प्रमुखता प्रदान की है। क्योंकि बाह्य जगत का अनुभव करने वाला व्यक्ति उतनी सच्चाई और गहराई से अनुभूति को अभिव्यक्त नहीं कर सकता, जितना कि स्वयं अनुभूत करने वाला कर सकता है। इसलिए इनका काव्य अनुभूति प्रधान और भाव प्रधान अधिक है। निश्चित रूप से आरोपित प्रेम और अनुभूतिमय प्रेम में अन्तर होता है।

रीतिमुक्त कवियों का प्रेम अन्य रीतिकालीन कवियों के प्रेम से पूर्णतः भिन्न था। स्वच्छन्द प्रेम व्यंजना द्वारा इन रीतिमुक्त कवियों ने अपनी एक अलग छाप बनायी। इनके काव्य में बाह्यता के स्थान पर आन्तरिकता के दर्शन होते हैं। किसी भी प्रकार के बंधन में बंधे न होने के कारण ये काव्य सृजन करते हुए अत्यन्त भाव विभोर हो जाया करते थे। इसी भाव-विभोरता में सामाजिक लोक-लाज के सारे बंधन टूट जाते थे। चूंकि ये कवि स्वनिर्मित मार्ग पर चलने के अभिलाषी थे, इसलिए इन कवियों ने काव्य क्षेत्र में नव पथ का निर्माण किया। इसी नवपथ पर उनके हृदय से कविता के भाव फूट पड़ते थे। आन्तरिकता इनके काव्य का विशिष्ट गुण रहा है—“स्वच्छन्द काव्य भावभावित होता है, बुद्धिबोधित नहीं। इसलिए आन्तरिकता उसका सर्वोपरि गुण है। आन्तरिकता की इस प्रवृत्ति के कारण स्वच्छन्द काव्य की सारी साधन सम्पत्ति शासित रहती है जिसके द्वारा इन कर्त्ताओं की रचना के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है।”<sup>4</sup> रीतिमुक्त कवियों के हृदय में भाव, हृदय और अनुभूति तत्त्व मुख्य रहा है। इन तत्त्वों की प्रधानता के कारण ही इनके काव्य में जीवन के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है।

रीतिमुक्त कवि प्रेम के स्वच्छन्द रूप के समर्थक थे। इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण इन्हें व्यक्तिगत जीवन में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन फिर भी ये कवि जीवन की बाधाओं से घबराते नहीं थे, वरन् उन बाधाओं से जूझते हुए अपनी इच्छानुसार काव्य का सृजन करते थे। इन कवियों का स्वभाव उन्मुक्त रहा है, इसलिए इनके काव्य में इनके व्यक्तित्व का स्वच्छन्द स्वरूप दिखाई देता है। स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति के कारण ही इन कवियों ने अपने काव्य में किसी भी रीति, नियम का पालन नहीं किया है। इनकी यह स्वच्छन्द प्रवृत्ति ही इन्हें रीतिकालीन कवियों में श्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है। इसलिए इनके काव्य में उन्मुक्तता और उच्छशृंखलता का प्रवाह दिखलाई पड़ता है—“उनके प्राणों की आकुलता, भावावेग और उनका उच्छशृंखल प्रवाह इतना तीव्र होता है कि काव्य मंदाकिनी की धार में शास्त्रीय काव्य नियमों के कगारे टूटे बिना नहीं रहते।”<sup>5</sup>

रीतिमुक्त कवियों के काव्य में जो नवीनता, भावुकता, स्वच्छन्दता और व्यक्तिगत अनुभूति है, वह अन्य रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों में नहीं मिलती। अपनी इन विशिष्टताओं के आधार पर ही इन रीतिमुक्त कवियों के काव्य को सरलता से पहचाना जा सकता है। रीतिमुक्त कवियों में विशेष रूप से हम घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर और द्विजदेव आदि कवियों का नाम ले सकते हैं। घनानंद रीतिमुक्त कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्हें विरह प्रेमी की संज्ञा दी जाती है। चूंकि शृंगार चित्रण रीतिमुक्त कवियों का मुख्य विषय था, इसलिए इनके काव्य में संयोग और वियोग दोनों के ही मार्मिक चित्र देखने को मिलते हैं। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में वियोग की प्रधानता अधिक है। इनकी मान्यता है कि—“वियोगाग्नि में तपकर ही प्रेम का स्वरूप स्वर्ण, उज्ज्वल व पवित्र होता है।”<sup>6</sup>

लक्षण ग्रन्थों से पृथक् काव्य की रचना करने वाले साहित्यकारों में घनानंद सर्वोच्च कवि रहे हैं। घनानंद मूलतः प्रेमी कवि थे। उन्होंने अपने जीवन में सुजान नामक वेश्या से प्रेम किया था। उनका प्रेम विषम था। उन्होंने जिससे प्रेम किया, उसे जीवनभर पा न सके बल्कि उसकी स्मृति में तड़पते ही रहे। यही वियोग उनके काव्य सृजन का आधार बना। वियोग की अतिशयता के कारण उनका लौकिक प्रेम आगे चलकर अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो गया था। इसी कारण रीतिमुक्त कवियों में घनानंद सर्वोच्च कवि कहलाये।

हिन्दी के महान साहित्यकारों ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। कबीर, सूर, तुलसी आदि कवियों ने अपने जीवन से सम्बन्धित तथ्यों को पूर्णतया उद्घाटित नहीं किया है। कबीर निर्गुण राम की भक्ति में, सूरदास लीलाधारी कृष्ण की भक्ति में और तुलसीदास सगुण राम के प्रेम में इतना लीन रहते थे कि अपने विषय में कुछ कहने का समय ही नहीं मिलता था। इसी प्रकार रीतिकाल के रीतिमुक्त कवि घनानंद का प्रेमी हृदय अपने प्रिय के प्रेम में इतना मग्न रहता था, कि अपने विषय में लिखने का उनके पास अवकाश ही न था। इसलिए रीतिमुक्त कवि घनानंद का जीवनवृत्त विवादों से ग्रस्त प्रतीत होता है। किसी भी कवि या साहित्यकार का अध्ययन करने के लिए उसके व्यक्तित्व व कृतित्व विशेष पर दृष्टि डालनी आवश्यक हो जाती है। इस दृष्टि से घनानंद का व्यक्तित्व दृष्टव्य है—

घनानंद के जन्म के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। आज भी विद्वजन उनके जन्म-स्थान, जन्म-तिथि यहाँ तक कि उनके नाम के बारे में भी एकमत नहीं हैं। उनका जीवनवृत्त उनकी कविता की भांति रहस्यमयी है। उनके जीवनखंडों का शृंखलाबद्ध चित्रण कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। यत्र-तत्र बिखरे प्रमाणों एवं किंवदन्तियों के आधार पर ही कवि के जीवनवृत्त का निर्णय लिया जा सकता है। घनानंद के नाम के विषय में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। कवि के विभिन्न नामों में से मूल नाम का निर्णय करना बड़ा ही कठिन है। फिर भी कुछ मत ऐसे हैं, जिनसे एक ओर विचारों का झुकाव अधिक है। घनानंद ने अपनी रचनाओं में अपने नाम के विविध रूपों का प्रयोग किया है। आनंदघन, घनआनंद, आनंद के घन, आनंद निधान, आनंद आदि विविध नाम ऐसे हैं, जिनका प्रयोग देखने को मिलता है। इस स्थिति में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कवि का वास्तविक नाम क्या था? “शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु तथा ग्रियर्सन ने घनानंद का नाम ‘आनंदघन’ माना है।”<sup>7</sup> “आचार्य शुक्ल ने घनानंद का नाम ‘घनआनंद’ माना है।”<sup>8</sup> “आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इनके संग्रह का नाम ‘घनआनंद ग्रन्थावली’ रखा है और नाम ‘घनआनंद’ माना है।”<sup>9</sup> ‘घनआनंद’ नाम घनानंद कवित्त आने के बाद अधिक प्रयुक्त हुआ मिलता है।

घनानंद के नामकरण के सम्बन्ध में मुख्य विवाद 'आनंदघन' नाम को लेकर है। आनंदघन नाम के तीन व्यक्तियों का परिचय मिलता है। जैनधर्मी आनंदघन, वृंदावनवासी आनंदघन और नंदवासी आनंदघन। हिन्दी में जिस आनंदघन की रचनायें अधिक हैं, जो कवित्त, सवैये के रूप में मिलती हैं, वे आनंद कवि जैनधर्मी आनंदघन और नंदवासी आनंदघन दोनों से ही भिन्न हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कहना है—“हिन्दी में जो कवित्त—सवैये और पद आदि रचनायें प्राप्त हैं, वे वृंदावनवासी आनंदघन की हैं। ये अपनी छाप आनंदघन और घनआनंद दोनों ही रखते थे। इनका नाम 'घनानंद' ही था।”<sup>10</sup> आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने वृंदावनवासी आनंदघन और जैनधर्मी आनंदघन को एक व्यक्ति नहीं माना है, क्योंकि दोनों के रचनाकाल का समय एक नहीं है और न ही दोनों के काव्य में कोई समानता ही है। मिश्र जी ने दोनों व्यक्तियों के काल में कम से कम सौ वर्ष का अन्तर माना है। उनका कहना है—“जैनधर्मी आनंदघन और वृंदावनवासी आनंदघन एक व्यक्ति नहीं थे। जैनधर्मी आनंदघन का समय विक्रम की 17 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।... वृंदावनवासी आनंदघन का समय विक्रम की 18 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है। इसलिए जैनधर्मी 'आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' के समय में लगभग सौ वर्ष का अंतर है। वृंदावनवासी आनंदघन नागरीदास के समकालीन थे, जिनका समय लगभग सं० 1780 से 1819 तक माना जाता है।”<sup>11</sup> इसलिए वृंदावनवासी आनंदघन का समय 18 वीं शती का उत्तरार्द्ध ठहरता है। तीसरे कवि नंदगांव के आनंदघन श्री चैतन्य महाप्रभु के समकालीन ठहरते हैं। शशि सहगल का इस सन्दर्भ में कहना है—“इनका समय श्री चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक ठहरता है जिनकी संवत् 1553 में महाप्रभु से भेंट हुई थी और इनके वंशज आज भी मथुरा के निकटवर्ती खरोट गाँव में मिलते हैं।”<sup>12</sup> इनके कुछ पद मिलते हैं, जो नंदगांव के मंदिरों में समय-समय पर गाये जाते हैं। इस प्रकार इनका रचनाकाल लगभग 16 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

रीतिमुक्त काव्यधारा के घनानंद के समय में और नंदगांव के आनंदघन में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर देखने को मिलता है क्योंकि “रीतिमुक्त घनानंद का समय 18 वीं शताब्दी है और नंदगांव के आनंदघन का समय 16 वीं शताब्दी।”<sup>13</sup>

इस प्रकार हिन्दी में जिस आनंदघन की रचनाएँ, कवित्त और सवैये में सर्वाधिक मिलती हैं और जिनका रचनाकाल 18 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है, वही रीतिमुक्त कवि घनानंद हैं। इन्हें वृंदावनवासी भी कहा गया है, इस प्रकार घनानंद वृंदावन के आनंदघन ही हैं, इनकी काव्य रचनाओं में ब्रजभाषा के शब्द अधिक मात्रा में मिलते हैं, जो एक वृंदावनवासी ही प्रयुक्त कर सकता है। इनका नाम संभवतः घनानंद था, परन्तु कविता में ये अपना नाम घनआनंद और आनंदघन दोनों ही रूपों में प्रयुक्त करते थे। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का मूल नाम घनआनंद ही रहा होगा, परन्तु छंदात्मक लय के कारण यह शब्द घनआनंद से आनंदघन हो गया है। अतः दोनों रूप ही काव्य में देखने को मिलते हैं।

घनानंद के जन्म के समय में भी विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। “आचार्य शुक्ल ने इनका जन्म सं० 1746 के आस-पास माना है।”<sup>14</sup> जबकि “लाला भगवानदीन ने घनानंद का जन्म सं० 1715 माना है।”<sup>15</sup> घनानंद के जन्म के इस समय का वर्णन मनोहरलाल गौड़ जी ने अपनी पुस्तक ‘घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा’ में किया है। मनोहरलाल गौड़ और विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी ने इनके जन्म के विषय में अलग मत दिया है। “विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इनका जन्म सं० 1730 के आस-पास माना है।”<sup>16</sup> मनोहरलाल गौड़ कहते हैं कि “संवत् 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय ये 26 या 29 वर्ष के होते हैं, जो इनके जीवन वृत्त को देखकर ठीक ही प्रतीत होता है।”<sup>17</sup>

विश्वनाथप्रसाद मिश्र और मनोहरलाल गौड़ दोनों ने ही घनानंद का जन्म सं० 1730 स्वीकार किया है। मिश्र जी ने घनानंद का निम्बार्कीय सम्प्रदाय के वृंदावन देव जी से दीक्षा लेने का आधार माना है। इस सम्बन्ध में उनका कहना है—“परमहंसावली में सम्प्रदाय की गुरु परम्परा का उल्लेख वृंदावन देव जी तक किया गया है। वृंदावन देव जी का समय 1759 से 1800 तक है। उनसे दीक्षा लेना अधिक से अधिक 1759 तक ही संभव हो सकता है। यदि उनका जन्म सं० 1746 माना जाय, तो यह भी मानना पड़ेगा कि दीक्षा के समय इनकी उम्र 13 वर्ष की ठहरती है, जो कि इनके जीवन वृत्त को देखते हुए अंशुभव है। वृंदावन पहुँचने के समय इनकी उम्र 25—30 की अवश्य होगी। अतः इनका जन्म सं० 1730 के आस-पास ही ठहरता है।”<sup>18</sup>

“रामफेर त्रिपाठी ने घनानंद का जन्म सं० 1746 माना है।”<sup>19</sup> “प्रो० हनुमंत रणखांब जी ने इनका जन्म विश्वनाथप्रसाद मिश्र के आधार पर ही सं० 1730 माना है।”<sup>20</sup> “शशि सहगल ने मनोहरलाल गौड़ जी के मत के आधार पर इनका जन्म सं० 1730 माना है।”<sup>21</sup> “डॉ० मंजू शर्मा घनानंद का जन्म सं० 1730 के आस-पास मानती हैं।”<sup>22</sup>

घनानंद के जन्म के सम्बन्ध में विश्वनाथप्रसाद मिश्र का तात्पर्य यह है कि सं० 1759 या सं० 1756 में वृंदावनदेव जी सलेमाबाद चले गये थे, वृंदावन में नहीं थे। उनके द्वारा वृंदावन में दीक्षा उससे पूर्व ही हो सकती थी। इस प्रकार सं० 1730 में घनानंद का जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय ये 26 या 29 वर्ष के होते हैं, जो इनके जीवनवृत्त को देखकर ठीक प्रतीत होता है। इस प्रकार दीक्षा लेने की उम्र 26 वर्ष ही उचित होती है जबकि सं० 1746 में जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय इनकी उम्र 13 से 14 वर्ष ठहरती है, जो उचित प्रतीत नहीं होती। घनानंद सुजान नाम की वेश्या को जी जान से प्रेम करते थे। सुजान वेश्या से प्रेम हो जाने के बाद ही इनका प्रेमी हृदय टूट गया था और ये वृंदावन चले गये थे। इसलिए इस समय इनकी उम्र 25 या 30 वर्ष होनी चाहिए। इस प्रकार सं० 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय 26 या 29 वर्ष के होते हैं और सुजान के साथ प्रेम प्रसंग यौवनकाल में ही संभव हो सकता था। अतः यह तिथि उचित प्रतीत होती है।

घनानंद के नाम, जन्म तिथि के समान ही जन्म स्थान के बारे में भी विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान इन्हें बुलंदशहर का मानते हैं, तो कुछ इन्हें हिसार का। डॉ० सभापति मिश्र जी ने विद्वानों के मतों को रेखांकित करते हुए कहा है—“कुछ आलोचक जिनमें जगन्नाथदास रत्नाकार ने इनका जन्म स्थान बुलन्दशहर और शम्भूप्रसाद बहुगुणा ने इन्हें हिसार का माना है।”<sup>23</sup> घनानंद ने अपने काव्य में अपने जन्म-स्थान के बारे में कोई स्पष्ट संकेत नहीं दिया है। लगभग सभी आलोचकों ने यह स्वीकार किया है कि ये दिल्ली में मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीर मुंशी थे, बाद में दिल्ली छोड़कर वृंदावन चले गये थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में जिन देशी शब्दों का प्रयोग किया है, उससे वे बुलंदशहर के पूर्वी भाग के निवासी लगते हैं, जैसे—नाज (अन्न), सल (पता), न्यार (चारा) आदि। यह माना जा सकता है कि



घनानंद बुलंदशहर जिले के ब्रज-भाषा वाले क्षेत्र में जन्में और बाद में दिल्ली चले गये। उनके काव्य में ब्रज और वृंदावन की महिमा का वर्णन जिस सजीवता के साथ हुआ है, उसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि उनके जीवन का अधिकांश समय वृंदावन में ही व्यतीत हुआ। यही कारण है कि उनके काव्य में ब्रजभूमि की अत्यंत प्रशंसा हुई है। घनानंद के काव्य में ब्रजभूमि का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है—

“गोकुल की बर बानिक नैन सदा लखिबोई करै अनिमेखनि।  
मंडित मोद अखंडित रूप भरौ मन रोमहि रोम सुदेखनि॥  
मोहन ही सबके घन जीवन प्रीति रची रसरीति बिसेखनि।  
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनंद चाह उमाह, असेखनि।”<sup>24</sup>

रीतिमुक्त कवि घनानंद का जन्म कायस्थ परिवार में हुआ था। फारसी भाषा का इन पर प्रभाव दिखाई देता है। ये बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीर मुंशी के पद पर आसीन थे। घनानंद साहित्य और संगीत के प्रेमी कवि थे। गाने का तो उन्हें बहुत शौक था। घनानंद दरबार में रहने वाली सुंदरी वेश्या सुजान पर पूर्णतया आसक्त थे। यही कारण था कि अन्य दरबारी घनानंद से ईर्ष्या करते थे। वे घनानंद को दरबार से बाहर निकलवाने के लिए तत्पर रहा करते थे। अतः दरबारियों ने बादशाह से यह आग्रह किया कि मीर मुंशी गाना अच्छा गाते हैं, इसलिए उनसे गाना गवाया जाये। बादशाह द्वारा घनानंद को गाना गाने के लिए कहा जाने पर घनानंद ने गाना नहीं गाया। इस पर दरबारियों ने कहा कि अगर राजनर्तकी सुजान घनानंद को गाना गाने के लिए कहें, तो ये गाना गा देंगे। बादशाह के कहने पर उन्होंने सुजान की ओर मुँह और बादशाह की ओर पीठ करके बड़ी तन्मयता से इतना सुन्दर गाना गाया कि बादशाह और दरबारी मुग्ध हो गये। परन्तु पीठ फेरकर गाना गाने के इस रवैये से बादशाह नाराज हो गये और बादशाह ने क्रोधित होकर दरबार छोड़ने का आदेश दे दिया। घनानंद ने सुजान से साथ चलने को कहा, परन्तु सुजान ने घनानंद के आग्रह को ठुकरा दिया। सुजान के ठुकराने पर घनानंद को गहरा आघात लगा और वृंदावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय के वृंदावनदेव जी से शिक्षा ग्रहण की थी। उनका सुजान-प्रेम, राधा-कृष्ण

प्रेम में परिवर्तित हो गया और घनानंद राधा-कृष्ण के अर्थ में सुजान शब्द का प्रयोग करने लगे। डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने इस विषय पर लिखा है—“कवि की रचना में लगभग 250 बार सुजान शब्द का प्रयोग किया गया है और ये सभी प्रयोग 11 अर्थों तक सीमित हैं। इनमें सुजान शब्द राधा, राधा और कृष्ण, प्रिया, प्रेयसी, स्त्री, चतुर, प्रेमी आदि प्रधान अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।”<sup>25</sup> हनुमंत रणखांब भी गौड़ जी के मत से सहमत हैं। उनका कहना है—“सुजान एक वेश्या थी, विरक्त वैष्णव होने पर घनानंद ने सुजान के नाम को श्री कृष्ण पर घटाया और प्रत्येक छंद में सुजान नाम जोड़कर अपनी प्रेमपरता का पूर्ण परिचय दिया।”<sup>26</sup>

घनानंद प्रेम के पपीहे थे, वह जीवनभर अपनी प्रेयसी का साथ पाने के लिए तड़पते ही रहे, परन्तु उनके हाथ विषमता ही लगी। सुजान का साथ पाने की तन्मयता व सुजान की स्मृति ही अन्ततः राधा-कृष्ण की स्मृति में बदल गई। इसलिए घनानंद की रचनाओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि सुजान शब्द से उन्हें बेहद मोह था, जिसे वह अन्त तक आश्रय के रूप में सदैव साथ लिये रहे। घनानंद ने अपनी रचनाओं में ‘सुजान’ शब्द के विविध पर्यायों का प्रयोग किया है, जैसे जान, जानी, जानराय आदि। इसका कारण कवि की सुजान के प्रति प्रेमपरक दृष्टि ही रही है। सुजान अत्यन्त सुंदर थी। घनानंद सुजान के सौन्दर्य पर पूर्णतः अनुरक्त थे। उन्हें संसार के कण-कण में सुजान के असीम सौन्दर्य के दर्शन होते थे। सुजान के द्वारा ठुकरा दिये जाने पर भी उनका प्रेम खत्म नहीं हुआ, अपितु वह बढ़ता ही गया। प्रेम का यही असीम रूप घनानंद के काव्य में राधा-कृष्ण के रूप में दिखाई देता है। सुजान के प्रति उनका प्रेम असीम था। इसलिए उन्होंने सुजान नाम का त्याग नहीं किया, अपितु अपनी सारी उम्र उस नाम के साथ गुज़ार दी।

घनानंद के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि नागरीदास जैसे श्रेष्ठ महात्मा इनका बहुत सम्मान किया करते थे, वे इनके सत्संग के लिए भी उत्सुक रहा करते थे। ये नागरीदास के मित्र थे। नागरीदास किशनगढ़ के महाराज सावंतसिंह के राज्य में थे—“किशनगढ़ में एक चित्र मिलता है, जिसमें घनानंद और नागरीदास जी साथ-साथ विद्यमान हैं। नागरीदास ने वृंदावन से किशनगढ़ तक पैदल यात्रा की थी, घनानंद भी उसमें पैदल गये थे।”<sup>27</sup> घनानंद और ब्रजनाथ समकालीन थे।

इन्होंने घनानंद की प्रशस्ति में कविताओं को संग्रहीत किया है। ये घनानंद के काव्य के बड़े प्रशंसक थे। ब्रजनाथ ने घनानंद प्रशस्ति में निम्न दोहा लिखा था—

“नेही महा ब्रजभाषा—प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै।

जोग—बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना—भेद—स्वरूप कौं ठानै॥

चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै।

भाषा—प्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कबित्त बखानै॥<sup>28</sup>

घनानंद का काव्य सृजन तत्कालीन कवियों से भिन्न था। इसी कारण ब्रजनाथ घनानंद के काव्य के बहुत बड़े प्रशंसक थे। घनानंद को बचपन से रासलीला देखने का बहुत शौक था। वे रासलीला करवाते थे और स्वयं उसमें हिस्सा भी लिया करते थे। इसी से उन्हें हिन्दी के प्रति अनुराग हो गया था।

घनानंद के नाम, जन्म—स्थान, जन्म—तिथि के समान ही उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। मिश्रबन्धु, रामचंद्र शुक्ल व रामफेर त्रिपाठी के इतिहास ग्रन्थों में घनानंद की मृत्यु नादिरशाही हमले में हुई थी, देखने को मिलती है—“मिश्रबन्धु के अनुसार सं० 1796 में घनानंद नादिरशाह के आक्रमण में मारे गये।”<sup>29</sup> “आचार्य शुक्ल ने इनकी मृत्यु सं० 1796 में नादिरशाही हमले में मानी हैं।”<sup>30</sup> “रामफेर त्रिपाठी ने इनकी मृत्यु सं० 1796 में नादिरशाही आक्रमण में मानी है।”<sup>31</sup>

कुछ विद्वानों के अनुसार घनानंद की मृत्यु नादिरशाही हमले में नहीं, बल्कि अहमदशाह अब्दाली के समय में हुई थी। इन विद्वानों में विश्वनाथप्रसाद मिश्र, मनोहरलाल गौड़, हनुमंत रणखांब, शशि सहगल आदि का नाम मुख्य है। इन सभी विद्वानों ने पूर्ण रूप से यह स्वीकार किया है कि घनानंद के समय में अहमदशाह अब्दाली का ही आक्रमण हुआ था, नादिरशाह का नहीं। उनका कहना है कि सं० 1796 में नादिरशाह का आक्रमण हुआ था, जबकि घनानंद की रचनायें 1798 तक मिलती रही हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस बात की पुष्टि की है—“नादिरशाह के आक्रमण के अनन्तर तो ये जीवित थे।...नादिरशाह का भारत पर आक्रमण सं० 1796 में हुआ और दिल्ली तक ही सीमित रहा। सं० 1798 में ये आनंदघन ग्रन्थ की रचना कर रहे हैं अर्थात् आक्रमण के दो वर्षों के अनन्तर भी ये

जीवित थे। इस प्रकार निश्चित हो गया कि ये सं० 1796 में नहीं मारे गये।<sup>32</sup> मनोहरलाल गौड़ ने इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है—“इतिहास ग्रन्थों में मथुरा पर नादिरशाह के हमले की बात तक नहीं लिखी गयी है। वह दिल्ली तक ही सीमित रहा था।...कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल ने आनंदघन जी को नागरीदास का समसामयिक माना है। सं० 1813 में नागरीदास के साथ जयपुर की यात्रा करने वाले आनंदघन 1796 में नहीं मरे, यह स्पष्ट हो जाता है। अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण दो बार मथुरा, वृंदावन पर हुआ था। एक बार सं० 1813 में और दूसरा सं० 1817 में। आनंदघन जी दूसरे आक्रमण में मारे गये।”<sup>33</sup>

घनानंद की मृत्यु पर उनके चाचा हितवृंदावनदास जी ने शोक व्यक्त किया था। डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा ने अपनी पुस्तक ‘घनानंद’ में लिखा है—“चाचा हितवृंदावनदास ने सं० 1817 में स्वयं अपनी आँखों से घनानंद का शव देखा था और उस कारुणिक दृश्य का वर्णन उन्होंने एक छंद में इस प्रकार किया था—

विरह सौं तायौ तन निबाह्यौ बन सांचौ पन,  
धन्य आनन्दघन मुख गायौ सोई करी है।  
एहो ब्रजराज कुँवर धन्य धन्य तुमहूँ कौ,  
कहा नीकी प्रभु यह जग में बिस्तरी है।  
गाढ़ौ ब्रज उपासी जिन देह अन्त पूरी पारी,  
रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।  
वृंदावन हित रूप तुमहूँ हरि उड़ाई धूरि,  
ऐ पै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है।”<sup>34</sup>

हनुमंत रणखांब जी ने भी घनानंद की मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के द्वितीय आक्रमण में ही मानी है। घनानंद की कृति ‘मुरलिका मोद’ की निम्न चौपाईयों से यह स्पष्ट होता है कि घनानंद 1798 में जीवित थे और ग्रन्थ की रचना कर रहे थे—

“गोप मास श्रीकृष्ण पच्छ सुचि। संबत्सर अठानबै अति रुचि।  
मुरली—सुर—सुख कहत न आवै। सो जानै जो सुनि गुनि गावै।”<sup>35</sup>

कृष्णचंद्र वर्मा का कहना है “अहमदशाह अब्दाली का सं० 1817 में मथुरा पर दूसरा आक्रमण हुआ, जिसमें घनानंद के साथ कितने ही संत पुरुष मारे गये।”<sup>36</sup> घनानंद के कत्लेआम के विषय में कहा गया है कि घनानंद ने मथुरा में कत्लेआम करने वालों से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोड़े-थोड़े बहुत देर तक दो। इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव लगते गये त्यों-त्यों ब्रजरज में लोटते रहे और देह त्याग कर दिया। घनानंद की इच्छा थी कि ब्रजरज में लोटकर प्राण त्याग करें। उनकी यह अभिलाषा भी पूर्ण हो गयी। अतः “हरि तो ‘धूल ही उड़ाते रहे’, पर भक्त की निष्ठा सत्य ही निकली कि शरीर ब्रजरज में ही मिला, खंड-खंड और कण-कण होकर।”<sup>37</sup>

इतिहास पूर्ण तथ्यों और प्रमाणों के अनुसार घनानंद की मृत्यु 1817 में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण में हुई थी, जो लगभग उचित प्रतीत होती है। विभिन्न विद्वानों में घनानंद की मृत्यु के सम्बन्ध में विविध मतभेद देखे गये, कि घनानंद की मृत्यु नादिरशाही हमले में हुई थी अथवा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण में। विश्वनाथप्रसाद मिश्र, मनोहरलाल गौड़, कृष्णचंद्र वर्मा, हनुमंत रणखांब व शशि सहगल आदि विद्वानों ने घनानंद पर विस्तृत रूप से अध्ययन किया है। घनानंद पर उनका विशेष काम प्रशंसनीय है। उनके विचारों को स्वीकार करती हुई मैं यह मानती हूँ कि—घनानंद की मृत्यु सं० 1817 में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण में हुई थी। मुहम्मदशाह का समय 1776 से 1805 तक रहा। घनानंद की मृत्यु 1796 में नादिरशाह के आक्रमण में न होकर अहमदशाह अब्दाली के द्वितीय आक्रमण सं० 1817 में हुई थी। अतः मैं यह मानती हूँ कि घनानंद का समय सं० 1730 से 1817 तक माना गया है, जो लगभग उचित है।

## 2.2 कृतित्व

वस्तुतः साहित्य-सृजन अन्तः प्रेरणा से ही उद्भूत होता है। सृजनात्मक शक्ति सभी प्राणियों में विद्यमान होती है। किन्तु जब संवेदनशीलता तीव्र हो जाती है, तो वही संवेदनशीलता अभिव्यक्त होकर व्यक्ति को सृजनशील बना देती है। जब व्यक्ति के अन्दर कोई अभाव पलता है, तो वह उसके अहं को चुभता है और

कल्पना में प्रबल हो जाता है। वस्तुतः वही चुभन, वही आवेश, मानवीय विचारधारा को रचनात्मक प्रक्रिया में परिवर्तित कर देती है। रीतिकालीन रीतिमुक्त कवि ऐसे ही काव्य स्रष्टा हैं, जिन्होंने अकृत्रिम रचना विधान में सफलता प्राप्त की है। घनानंद ने 'लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहि तो मेरे कबित्त बनावत' कहकर परिपाटी और धन की लालसा से युक्त काव्य सृजन करने वाले रीतिकालीन कवियों पर करारा व्यंग्य किया है।

जिस प्रकार घनानंद के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद रहा, उसी प्रकार घनानंद की रचनाओं के सम्बन्ध में भी मतैक्य हैं। समय-समय पर की गई विभिन्न खोज रिपोर्टों के आधार पर घनानंद की अब तक कतिपय रचनायें प्रकाश में आ चुकी हैं। उनकी विभिन्न रचनायें समय-समय पर प्रकाशित होती रही हैं। घनानंद की रचनाओं के सर्वप्रथम प्रकाशनकर्ता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी हैं, जिन्होंने सन् 1870 में 'सुजान शतक' नाम से सौ से अधिक कवित्त और छंदों का संकलन किया है। जगन्नाथदास रत्नाकर जी ने सन् 1897 में 'सुजान सागर' का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया था। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने कविता कौमुदी में घनानंद की छः कृतियों—'सुजान सागर, घनानन्द कवित्त, रसकेलिबल्ली, कृपाकाण्ड निबंध, कोकसार तथा विरहलीला आदि का उल्लेख किया है।"<sup>38</sup> कुछ आलोचक घनानंद की सर्वप्रथम रचना 'घनानंद कवित्त' मानते हैं, जिसका संकलन उनके प्रशंसक ब्रजनाथ ने किया था। कुछ विद्वान घनानंद की प्रथम रचना 'सुजान शतक' को मानते हैं, जिसका संकलन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था। आचार्य शुक्ल ने घनानंद की पांच कृतियों का उल्लेख किया है—'सुजान सागर, विरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्ली और कृपाकंद आदि हैं।"<sup>39</sup> वास्तव में घनानंद की रचनाओं की विस्तृत सूचना सर्वप्रथम मिश्रबन्धुओं ने दी है, जिसे विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक में कुछ इस प्रकार रेखांकित किया है—'इन्होंने सुजान सागर, कोकसार, घनानंद कवित्त, रसकेलिबल्ली आदि ग्रन्थ लिखे, जो खोज में मिले हैं। हमको इनका 542 बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रन्थ संवत् 1882 का लिखा हुआ दरबार छतरपुर के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें 1811 विविध छंदों तथा 1044 पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—प्रियाप्रसाद, ब्रजव्योहार, वियोगबेलि, कृपाकाण्ड निबंध,

गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, ब्रजप्रसाद, धाम-चमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाम-माधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, ब्रजवर्णन, रसवसंत, अनुभव-चंद्रिका, रंग-बधाई, परमहंसावली और पद।<sup>40</sup> इन सभी रचनाओं का प्रकाशन घनानंद ग्रन्थावली के नाम से हुआ है। मिश्रबन्धुओं द्वारा दी गई घनानंद की कृतियों की सूची के आधार पर परवर्ती विद्वानों ने घनानंद की रचनाओं का विस्तृत रूप में वर्णन किया है। कतिपय विद्वान घनानंद के नाम से लिखे बहुत से ग्रन्थों को उनके द्वारा लिखित नहीं मानते हैं। उनकी मान्यता है कि घनानंद के काव्य प्रेमियों ने घनानंद, आनंद, आनंदघन नाम देखकर उन्हें घनानंद की कृति मानकर उनकी कृतियों में समाहित कर दिया है। पर ऐसा शायद ही है।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने सं० 2000 की खोज के आधार पर घनानंद की कृतियों का उल्लेख किया है, जिसका विवरण हनुमंत रणखांब जी ने इस प्रकार दिया है—“घनआनंद कवित्त, आनन्दघन के कवित्त, कवित्त, आनंदघन जू के कवित्त, सुजानहित, सुजानहित प्रबन्ध, कृपाकन्द, वियोग बेलि, इश्कलता, जमुनाजस, प्रीतिपावस, सुजानविनोद, आनंदघन जू की पदावली, कवित्त संग्रह, रसकेलि बल्ली, वृंदावन के खत आदि।”<sup>41</sup> श्री शंभु प्रसाद बहुगुणा जी ने घनानंद की जिन कृतियों का उल्लेख किया है, उनका विवरण हनुमंत रणखांब जी ने इस प्रकार दिया है—“सुजान सागर, कृपाकन्द निबंध, इश्कलता, प्रीतिपावस, सुजान रागमाला, वियोग बेलि, नेह सागर, विरहलीला, प्रेम पत्रिका, बानी।”<sup>42</sup>

हिन्दी साहित्य में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने ही घनानंद की रचनाओं की प्रामाणिकता को ज्ञात कर समस्त कृतियों को प्रकाश में लाया है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने ग्रन्थ में उन सत्तरह कृतियों के नाम दिये, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित की गयी थीं, पर विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने नागरी प्रचारिणी सभा के साथ-साथ मिश्रबन्धुओं द्वारा खोज किये गये छतरपुर पुस्तकालय के संग्रह से भी आधार ग्रहण किया है। विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित घनानंद की रचनाओं के ग्रन्थों की सूची दृष्टव्य है—“सुजानहित, वियोगबेलि, यमुनायश, प्रेमपत्रिका, ब्रजविलास, अनुभवचंद्रिका, प्रेमपद्धति, गोकुलगीत, गिरिपूजन, दानघटा, कृष्णकौमुदी, प्रियाप्रसाद, ब्रजस्वरूप, प्रेमपहेली, गोकुलविनोद, मुरलिकामोद, ब्रज—

व्यवहार, त्रिभंगी छंद, कृपाकदनिबंध, इश्कलता, प्रीतिपावस, प्रेमसरोवर, सरसवसंत, रंगबधाई, वृषभानुपुर-सुषमा, नाममाधुरी, विचारसार, भावनाप्रकाश, धामचमत्कार, वृंदावन मुद्रा, गोकुलचरित्र, रसनायश, ब्रजप्रसाद, मनोरथमंजरी, गिरिगाथा, छन्दाष्टक, कवित्त-संग्रह, पदावली, परमहंस वंशावली, स्फुट।<sup>43</sup>

विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित ये कृतियाँ छतरपुर वाले संग्रह और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित संग्रह से मिलती हैं। इनकी ये कृतियाँ लगभग प्राप्त भी हो चुकी हैं। विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन सभी रचनाओं को संग्रहीत कर 'घनानंद ग्रन्थावली' नाम से प्रकाशित किया है। विश्वनाथप्रसाद मिश्र के ग्रन्थों की प्रामाणिकता के आधार पर यह ज्ञात होता है कि घनानंद ने लगभग इकतालीस ग्रन्थों की रचना की है, जो अधिकतर मुक्तक ही हैं।

घनानंद जी ने अपनी लेखनी द्वारा हिन्दी साहित्य को जिन रचनाओं के द्वारा समृद्ध किया है, उन कृतियों का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि उनकी रचनाओं में 'सुजानहित' सबसे विशाल और बहुचर्चित रचना है। यह एक विस्तृत मुक्तक रचना है, जिसमें कवित्त, सवैये और दोहे की अधिकता है। इसमें कवि ने विरह व्यथा का संदेश, प्रेम का स्वरूप, संयोग-वियोग की अनुभूति के चित्रण, प्रकृति का संयोगकालीन और वियोगकालीन चित्रण, सुजान का रूप सौन्दर्य, प्रेम का स्वरूप, ब्रज महिमा, विरहोपालम्भ तथा भक्ति आदि का चित्रण किया है। घनानंद के इस 'सुजानहित' नामक विशाल रचना के सृजन का श्रेय उनकी प्रेमिका सुजान को है। अपनी प्रेमिका सुजान के नाम पर ही उन्होंने इसका नाम 'सुजानहित' रखा है। सुजान के द्वारा ठुकरा दिये जाने पर ही इनका प्रेम लौकिक से अलौकिक की ओर परिवर्तित हुआ था, जिससे इनके प्रेम में स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। इसलिए इनका काव्य अनुभूति प्रधान है। घनानंद की सुजान के प्रति सच्ची निष्ठा थी। प्रेम की एकनिष्ठता एवं समर्पित भाव इनके काव्य का प्रधान अंग है। कृष्णचंद्र वर्मा जी ने सुजानहित के विषय में लिखा है—'सुजानहित घनानंद के लौकिक प्रेम या सुजान प्रेम का अचल स्मारक है।'<sup>44</sup> काव्यत्व की दृष्टि से यह कवि की प्रौढ़ रचना है। यह कवि की काव्य प्रतिभा की परिचायक है। भावावेश की सहज अभिव्यंजना इसमें देखी जाती है।



‘कृपाकंद निबंध’ घनानंद की भक्ति रस से ओत-प्रोत रचना है। इसमें ईश्वर की कृपा का वर्णन किया गया है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित ‘घनानंद ग्रन्थावली’ में इसका नाम ‘कृपाकंद’ दिया गया है। आचार्य शुक्ल इसका नाम ‘कृपाकांड’ मानते हैं। ‘कृपाकंद’ नाम अधिक प्रयुक्त होने के कारण यह नाम प्रचलित हो गया है। भक्ति-भाव से ओत-प्रोत इस रचना में घनानंद ने जीवन-सत्य को उद्घाटित किया है—“इस संसार में खटखट भटकते मन को प्रभु के द्वार पर ही शांति मिलती है। भगवान के बिना कोई कार्य पूरा नहीं हो सकता। जीवन के जंजालों से व्यथित व्यक्ति को जब संसार में कहीं स्थान नहीं मिलता, तब वह अपना सर्वस्व अलौकिक सत्ता के समक्ष अर्पित कर देता है।”<sup>45</sup> इस कृति में भगवत्कृपा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। ‘वियोग बेलि’ घनानंद की विरहयुक्त रचनाओं के अन्तर्गत आती है। गोपियों का विरह वर्णन इस कृति का मुख्य विषय है। रास लीला के मध्य से कृष्ण का अन्तर्धान हो जाना और गोपियों का कृष्ण के प्रति विरह का वर्णन ही इस रचना का सार है। ‘इश्कलता’ फारसी शैली में वर्णित घनानंद की विरहयुक्त रचना है। इसमें प्रेम भावना और प्रेम से उत्पन्न विरहजन्य पीड़ा को चित्रित किया गया है। हनुमंत रणखांब जी ने इस कृति के विषय में कहा है—“इश्कलता हृदय के चमन में हरी-भरी होती है। विरह के कांटे ही उसकी बाढ़ हैं और आनंद का घन ही इसे सींचता है। सुजान के अभाव में जब वेदना का स्वरूप तीव्र होकर गंभीर और गहन हो जाता है, तब वह मानस का मंथन कर बड़ी पीड़ा देती है।”<sup>46</sup>

घनानंद ने अपनी ‘यमुना यश’ नामक रचना में यमुना के महत्व का वर्णन किया है। इस रचना के नाम के आधार पर कह सकते हैं कि घनानंद ने यमुना किनारे गोकुल घाट पर निवास किया था। इसी कारण तो इन्होंने यमुना के यश का वर्णन किया है। घनानंद की ‘प्रीति पावस’ नामक रचना में गोपियों का कृष्ण के साथ वन विहार का वर्णन है। श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, कोयलों की कूक, मधुकर का गुंजार आदि का वर्णन इस रचना में देखने को मिलता है। ‘प्रेम-पत्रिका’ रचना ‘विनय पत्रिका’ की शैली का आधार लेकर लिखी गयी है। इसमें विरहणी गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम पत्र है। इसमें प्रेमी की अनुपस्थिति में प्रेमिका की अकुलाहट, और विरहजन्य भावों को पत्र के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

‘प्रेम सरोवर’ घनानंद की लघु रचना है। यह राधा का विरह स्थल है, जिसकी शोभा का चित्रण किया गया है। घनानंद की ‘ब्रज विलास’ रचना में ब्रजभूमि के प्रति लगाव के दर्शन होते हैं। इस रचना के प्रारंभ में प्रेम की विषमता और बाद में ब्रजभूमि के प्रति अनुराग दिखाई देता है। घनानंद का प्रकृति प्रेम ‘सरस वसंत’ नामक रचना में व्यक्त हुआ है। वसंत ऋतु में प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों का, प्रकृति के सौन्दर्य का एवं मादकता आदि का चित्रण है। फूलों की गंध, भौरों की गुंजार आदि प्रकृति में नये रंग भर देते हैं। ‘ब्रजधाम’ घनानंद का प्रिय धाम है। अतः ‘अनुभवचंद्रिका’ नामक रचना में कवि ने ब्रजभूमि का वर्णन किया है। घनानंद के हृदय और आत्मा को ब्रज के कण-कण में बसकर ही पूर्ण शांति मिलती है। वह इस धाम में रहकर ही कृष्ण-राधा की आराधना करना चाहते हैं।

‘रंग बधाई’ में श्री कृष्ण के जन्म की बधाई का वर्णन है। इस रचना में कवि का निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होना भी दिखलाई देता है। ‘प्रेम पद्धति’ नामक रचना में प्रेम का महत्व वर्णित है। गोपी की कृपा को सर्वोत्तम माना गया है। कवि का मानना है कि गोपियों को प्रेम मार्ग का अनुसरण करने पर ही प्रेम की सच्ची अनुभूति होती है। ‘वृषभानुपुर सुषमा वर्णन’ नामक रचना से घनानंद का सखीभाव व्यक्त होता है। इसमें कवि ने वृषभानुपुर के सौन्दर्य का संक्षिप्त वर्णन करके अपने को राधा की सखी के रूप में बताया है। ‘गोकुलगीत’ में कवि ने गोकुल के महत्व को बतलाया है। नंद यशोदा के वात्सल्यपूर्ण मनोभावों को घनानंद ने इस छोटी सी रचना में कुशलता के साथ व्यक्त किया है। ‘नाम माधुरी’ एक जप पुस्तक है। यह एक लघु रचना है। राधा के नामों का अनेक बार स्मरण कर कवि ने अपनी भक्ति प्रदर्शित की है।

‘गिरिपूजन’ में कवि ने ब्रज को महत्व प्रदान किया है। कृष्ण ने नंदगांव वासियों को इंद्र के स्थान पर गोवर्धन पर्वत की पूजा करना सिखलाया था। साथ ही इसमें कवि ने कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं और चेष्टाओं का सजीव वर्णन किया है। ‘विचार सार’ में कवि का मानना है कि भगवत् स्मरण ही समस्त विचारों का सार है। ‘दानघटा’ में गोप सहित श्रीकृष्ण की दानलीला का वर्णन है। ‘भावना प्रकाश’ के दो भाग हैं—प्रथम भाग में राधा-कृष्ण मिलन का वर्णन है तथा द्वितीय भाग में ब्रज

की महिमा का वर्णन है। 'ब्रज स्वरूप' में श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ विहार, ब्रज सौन्दर्य एवं उत्सवों का वर्णन है। 'प्रेम पहेली' यह एक अपूर्ण रचना है। राधा अथवा गोपी का प्रसंग लेकर इसका आरंभ तो हुआ था, किन्तु बीच में ही यह क्रम टूट गया। अतः इसका नाम प्रेम पहेली रखा गया। 'रसना यश' में भगवत् नाम में निरंतर रत रहने वाली जिह्वा की प्रशंसा की गई है। 'गोकुल विनोद' में गोकुल की शोभा, कृष्ण और बलराम के विहार का वर्णन है।

'कृष्ण कौमुदी' में श्रीकृष्ण के नाम की महिमा को बताया गया है, फिर नख-शिख पद्धति के आधार पर रूप वर्णन किया गया है। 'धाम चमत्कार' में वृंदावन की महिमा वर्णित है। वृंदावन को कवि ने अगाध रस सागर और आनंदमय कहा है। 'प्रिया प्रसाद' में कवि ने सेवक भाव को प्रस्तुत किया है। राधा नाम को महत्त्व देकर अपने को राधा की सखी के रूप में माना है। 'वृंदावन मुद्रा' में वृंदावन की महिमा को प्रतिपादित किया है। इसमें वृंदावन की गलियों और यमुना तट की शोभा का वर्णन है। 'ब्रज प्रसाद' में ब्रज को प्रमुख मानकर ब्रज और कृष्ण के परस्पर सम्बन्ध को महत्त्व दिया गया है। कवि का मानना है कि कृष्ण ही ब्रज है और ब्रज ही कृष्ण की महिमा है। 'गोकुल चरित्र' में गोकुल मार्ग में की गई कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है।

'मुरलिका मोद' में श्रीकृष्ण की मुरली का प्रभाव गोपियों पर दिखाया गया है, जिसकी धुन पर गोपियाँ घर-बाहर की चिंता न कर कृष्ण से प्रेम करती हैं। अतः इसमें स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण देखने को मिलता है। 'मनोरथ मंजरी' में कवि ने स्वयं को राधा की सखी के रूप में प्रस्तुत किया है। 'ब्रज व्यवहार' में ब्रज महिमा, गोचारण, गोपी प्रेम-महिमा आदि का वर्णन दृष्टव्य है। इसके आठ दोहे प्रेम सरोवर में भी मिलते हैं। 'गिरिगाथा' में गोवर्धन पर्वत को महत्त्व प्रदान किया गया है। 'त्रिभंगी' में कवि जीव को भगवान् भक्ति का उपदेश देता है। 'छन्दाष्टक' एक लघु रचना है। इसमें गोपी वियोग का वर्णन है। रासलीला के पश्चात् कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं, तब गोपियाँ कृष्ण को ढूँढ़ती हैं और विरह में व्यथित होती हैं, इसका मर्मस्पर्शी चित्रण देखने को मिलता है।

‘पदावली’ घनानंद की बड़ी रचना है। इसमें गंगा, सूर्य, चैतन्य, नारद, गोवर्धन आदि की स्तुतियाँ विद्यमान हैं। इसमें वृंदावन और प्रकृति का मनोहारी चित्रण है साथ ही राम के जन्म का वर्णन तथा शिव की प्रशस्ति भी प्रस्तुत है। ‘परमहंस वंशावली’ में निम्बार्क सम्प्रदाय के गुरुओं की नामावली प्रस्तुत की गई है तथा उनके गुरुओं के गुणों को भी वर्णित किया गया है। ‘स्फुट’ इसके अनेक छंद सुजानहित से संग्रहीत हैं। प्रकृति, सौन्दर्य व शृंगार इसके मुख्य विषय हैं। घनानंद जी की रचनाओं का प्रकाशन विभिन्न रचनाकारों के द्वारा किया गया है “लेकिन उनकी समस्त रचनाओं का सम्पादन और प्रकाशन करने का एकमात्र श्रेय पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी को दिया जाता है, जो घनानंद ग्रन्थावली के नाम से संग्रहीत है।”<sup>47</sup>

वस्तुतः कविता कवि की अनुभूति होती है, जिसमें कवि का हृदय स्पष्ट रूप से बिम्बित होता है। घनानंद की कविता भी कुछ इसी तरह की थी, जिसमें हृदय तत्त्व मौजूद है। उनका काव्य ही उनकी पहचान है। घनानंद की कविता भाव प्रधान है। वह एक ऐसे सृजक थे, जिन्होंने युग का स्वच्छन्द रूप में मानचित्र प्रस्तुत किया। घनानंद ने कुशल कृतित्व के द्वारा तत्कालीन युग की ऐसी छवि उतारी है, जो रंगीन भी है और विषम भी। वे युग चेतना के सजग शिल्पी थे। घनानंद ने अपने मानस को नैतिक मूल्यों व वैचारिक सौन्दर्य के स्तर तक गति देने का साहस किया। उनकी प्रतिभा जड़, परम्परावादी अथवा रूढ़िवादी नहीं, अपितु स्वच्छन्द और गतिमान रही है। उन्होंने अपने काव्य में प्रेम के विषम रूप, वैयक्तिक प्रेम का स्वरूप, राधा-कृष्ण के चित्रण, गोपियों की प्रेम लीलाओं, उनका वियोग वर्णन तथा ब्रज की महिमा आदि का बड़ा सजीव चित्रण किया है। घनानंद जी के काव्य के वैशिष्ट्य को देखते हुए सभापति मिश्र ने कहा है—“घनानंद की कविता में भावात्मकता, लाक्षणिकता, वक्रता, रहस्यात्मकता तथा भावों की स्वच्छन्दता के गुण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।”<sup>48</sup>

घनानंद के काव्य में दो प्रकार के भाव दृष्टव्य हैं—प्रेम भाव और भक्तिभाव। प्रेमभाव अपनी प्रेमिका सुजान के प्रति और भक्तिभाव अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति है। उनके काव्य में हृदयगत प्रेम की जो लहर देखी गई है, वह वास्तव में अन्यत्र

दुर्लभ है। सभापति मिश्र जी ने घनानंद के काव्य में अभिव्यक्त प्रेम के सम्बन्ध में लिखा है—“घनानंद की कविता ने प्रेम की आरती उतारी है, उसकी पवित्रता को अपने अंचल में समेटा है, उसके गीत को वाणी दी है, दीप को ज्योत्सना दी है, पुष्पों की पंखुड़ियों को सुगन्धि दी है। जो भी उनके पथ से गुजरा है, वह एक साथ काव्य की पवित्रता, गीत, गंध का अनुभव करता है।”<sup>49</sup> घनानंद के काव्य की एक विशेषता भावों का असाधारण होना है। काव्य में भावों की अभिव्यक्ति हेतु घनानंद ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। अतः वे ब्रजभाषा प्रवीण भी कहे गये हैं—“भाषा प्रवीण सुछन्द सदा रहे, सो घन जी के कवित्त बखाने।’ डॉ० नगेंद्र का कहना है—“घनानंद का काव्य उनकी अपनी प्रेमानुभूति है, जो रीतिकाल के लिए एक नवीन प्रणाली है तथा जो अन्य कवियों में नहीं देखी जाती है।”<sup>50</sup>

### 2.3 वैचारिक धरातल

रीतिमुक्त कवि घनानंद किसी प्राचीन परम्परा या परिपाटी के अनुकरणकर्त्ता नहीं थे, वे तो स्वच्छन्द भावों के कवि थे। ये स्वनिर्मित मार्ग पर चलने के अभिलाषी थे। परम्परा व रूढ़ियों से ये दूर ही रहना चाहते थे। कवि घनानंद ने जो भी महसूस किया उसको उसी रूप में अभिव्यक्त कर दिया। स्वच्छन्दता इनके व्यक्तित्व की प्रधान प्रवृत्ति रही है। स्वच्छन्द होकर ही इन्होंने अपने आत्मिक भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की। इसलिए इनकी कविता इनके हृदय की भावधारा रही है। यही कारण है कि घनानंद ने अपने काव्य में प्रेम में भोगे हुए यथार्थ और सौन्दर्य की प्रत्यक्षानुभूति को वाणी प्रदान की है। इन्होंने अन्तर की आवाज को न केवल सुना, उसे ईमानदारी के साथ काव्य में अभिव्यक्त भी किया। अनुभूति में आन्तरिकता का समावेश होता है। इसलिए उनमें बनावटीपन नहीं था, जो भी था अन्तर का आवेग था। आत्माभिव्यक्ति ही इनके साहित्य का चरम लक्ष्य रहा है। कविता इनके हृदय से निकली है, जिसकी अनेक परतें काव्य के माध्यम से खुलती गई हैं और जिसका कारण उनके व्यक्तिगत जीवन को काव्य का स्वरूप देना रहा है। घनानंद ने अपने भोगे हुए जीवन को कविता का रूप दे दिया था, जो साहित्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। इनकी प्रवृत्ति भावों को खोलने की अधिक रही है। घनानंद के सम्पूर्ण काव्य में इस आत्माभिव्यक्ति का एकछत्र अधिकार रहा है।

तत्कालीन युग में साहित्य जीवन से दूर ही था, उस युग में घनानंद एकमात्र ऐसे कवि थे, जिन्होंने कविता को जीवन से जोड़ा। उसका कारण यह था कि उन पर दरबारी वातावरण का प्रभाव कम ही पड़ा था। रीतियुग में घनानंद एक ऐसे कवि थे, जो चमत्कार प्रदर्शन से सदैव अलग ही रहे। इनका दृष्टिकोण अत्यन्त सूक्ष्म था। इन्होंने काव्य का सृजन राजाओं को प्रसन्न करने के लिए नहीं किया था। यश प्राप्ति और अर्थ प्राप्ति की लालसा इन्हें न थी। इन्होंने अपने व्यक्तिगत भावों को अभिव्यक्त कर काव्य का सृजन किया था। घनानंद का काव्य मुख्य रूप से भावों की अन्तर्भूमि पर खड़ा हुआ दिखाई देता है। अपने हृदय की अनुभूतियों को स्वच्छन्द रूप से अभिव्यक्त कर सकने की क्षमता तो केवल घनानंद में ही थी। इनका काव्य अनुभूति प्रधान है इसलिए इन्होंने काव्य की बाह्य सजावट पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। घनानंद ने नवीन विषयों को नहीं अपनाया था, बल्कि उन्होंने परम्परागत विषयों में ही नवीन दृष्टि स्थापित की थी। प्रेम, भक्ति और सौन्दर्य आदि विषयों को अन्य रीतिकालीन कवियों ने भी अपने काव्य में व्यक्त किया है, परन्तु इन विषयों का जैसा जीवंत और वास्तविक चित्रण घनानंद ने किया है, वह अत्यंत ही अतुलनीय है।

घनानंद से पूर्व अन्य किसी भी रीति कवियों की दृष्टि अनुभूति पक्ष पर नहीं गयी थी, सभी काव्य के बाह्य रूपों को ही सजाने संवारने में लगे हुए थे, परन्तु घनानंद ने काव्य के बाह्य रूप के स्थान पर आन्तरिक रूप को अधिक महत्त्व दिया। चूंकि आन्तरिकता की अभिव्यक्ति उनकी प्रमुख प्रवृत्ति है इसलिए वह अन्य रीतिमुक्त कवियों में श्रेष्ठ हैं। "जिस समय लोगों ने कविता करने को खेल समझ रखा था, उस समय घनानंद ने आत्मा की पुकार पर कविता रचकर काव्य को प्रकृत भूमि प्रदान की। उनका काव्य अन्तःप्रेरित भावोद्वेलन का ही परिणाम है। स्वाभाविक प्रवाह होने के कारण उनका काव्य मर्मस्पर्शी, भावोत्तेजक तथा आल्हादकारी हो गया है।"<sup>51</sup>

सभी रीतिमुक्त कवियों के जीवन का आधार मूलतः प्रेम ही रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो ये कवि प्रेम के लिए ही बने थे। प्रेम तत्व ही इनके लिए सर्वोपरि था। प्रेम का आधार लेकर ही इन्होंने काव्य का सृजन भी किया। घनानंद

के काव्य का भी मुख्य आधार प्रेम ही है। हालांकि प्रेम का प्रवाह तो सम्पूर्ण रीतिकालीन कवियों में देखने को मिलता है, परन्तु घनानंद का प्रेम इनके विपरीत था। रीतिकालीन कवि नारी सौन्दर्य के प्रति आकर्षित थे, नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन करना इनका मुख्य उद्देश्य था। वे निजी स्वार्थ के वशीभूत होकर भी काव्य रचना करते थे, परन्तु घनानंद का प्रेम निःस्वार्थ था। उनके प्रेम में तो स्वार्थ के लिए स्थान ही नहीं था।

‘प्रेम’ घनानंद के लिए एक साधना रही है इसी के द्वारा काव्य में अनन्यता का समावेश दिखाई देता है। उनके काव्य में उन्मुक्त प्रेम स्पंदन और भाव प्रवणता की सच्ची अनुभूति देखी जाती है। प्रेम और अनुभूति की गहनता व सच्चाई का स्वरूप घनानंद के काव्य में मिलता है। घनानंद जैसे प्रेमी कवि ने समस्त बंधनों को त्याग कर अपने काव्य का सृजन किया है। स्वानुभूति की अभिव्यक्ति उनके काव्य सृजन का मुख्य विषय रहा है यही कारण है कि इनका प्रेम स्थूल न होकर सूक्ष्म था। सूक्ष्म होने के कारण इनके प्रेम में अंतरात्मा की पुकार सुनाई देती है। अन्तर की आवाज और आवेग ही इनके काव्य का मूल रहा है। हनुमंत रणखांब जी ने इस संदर्भ में लिखा है—“रीतिकाल की काव्य चेतना जहाँ स्थूल शृंगार थी, वहीं घनानंद की रीतिमुक्त काव्य साधना अन्तर्मुखी शृंगार रस में डूबी हुई थी।”<sup>52</sup>

यद्यपि प्रेम के अनेक रूप हैं, जैसे—वात्सल्य, दाम्पत्य, मातृत्व, भ्रातृत्व, बहन-भाई का प्रेम आदि, परन्तु घनानंद का प्रेम इन सबसे अलग है। काव्य में भी प्रेम के अनेक रूप मिलते हैं जैसे—व्यक्तिगत प्रेम, एकनिष्ठ प्रेम, स्वार्थ रहित प्रेम, समर्पणपरक प्रेम, लोक या सामाजिक मर्यादाओं से मुक्त प्रेम आदि। प्रेम का जो उन्मुक्त रूप घनानंद के काव्य में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अनुभूतियों का मार्मिक रूप उनके काव्य को मर्मस्पर्शी बना देता है।

प्रेम की उमंग में घनानंद जिंदगी भर डूबे रहे। जाति, धर्म, समाज और परिवार के बंधन इनके हृदय को बांध न सके। उनकी स्वच्छन्द वृत्ति के विषय में कृष्णचन्द्र वर्मा जी का कहना है—“न तो कृष्ण भक्तों सी इनमें साम्प्रदायिक भक्ति थी, न सूफियों सी रहस्यमयी ब्रह्म साधना और न रीतिबद्ध काव्याचार्यों सा रीति और शास्त्र सा आग्रह। प्रेम की दिव्य मंदाकिनी में निमग्न रहने वाले ये स्वच्छन्द कवि

अपनी शैली में स्वच्छन्द थे।<sup>53</sup> 'घनानंद के प्रेम की स्वच्छन्द अनुभूति ही उन्हें प्रेम की उस उच्च भावभूमि पर ले जाती है, जहाँ प्रेम अत्यन्त दिव्य हो जाता है। इनकी अनुभूति में हृदय के भाव स्पष्ट झलकते हैं। प्रेम इनके जीवन का भोगा हुआ यथार्थ और झेला हुआ सत्य रहा। इसलिए इनकी प्रेम सम्बन्धी उक्तियों में रीतिकालीन कवियों की सी कृत्रिम वासना नहीं, वरन् वास्तविक साधना देखने को मिलती है। घनानंद का प्रेम सच्चे हृदय की सच्ची साधना है।

सभी रीतिमुक्त कवि प्रेम के दर्द से घायल हुए थे। घनानंद, बोधा, आलम और ठाकुर आदि सभी रीतिमुक्त कवि अपनी प्रेमिकाओं के निष्ठुर व्यवहार से आहत हुए हैं। यही कारण है कि घनानंद ने अपने काव्य में देखे-सुने अनुभवों को नहीं, बल्कि भोगे हुए अनुभवों को व्यक्त किया है। इसलिए इसमें आत्मिक शुद्धता और तीव्र भावावेगों के दर्शन होते हैं। इनके प्रेम चित्रण में सजीवता का रूप दिखाई देता है। लखनलाल सिंह ने तो कहा भी है—“घनानंद का हृदय प्रेम वाण से विद्ध था, इसलिए प्रेम के बहुरंगी छटा के बड़े ही सजीव और मार्मिक चित्र इनकी रचनाओं में देखने को मिलते हैं।”<sup>54</sup>

चातक पक्षी के बारे में यह कहा जाता है कि वह स्वांति नक्षत्र की ही बूंद पीता है। अगर बूंद स्वांति नक्षत्र की न हो तो वह पीता नहीं है। प्यास बुझाने के लिए भले वह प्यास में कितना ही तड़पता रहे परन्तु हमेशा उसी की ही चाहत में लगा रहता है और उसको पाने के इंतज़ार में समय व्यतीत कर देता है। प्रेम की यही तड़पन व समर्पण भाव हमें घनानंद में देखने को मिलता है। यही वजह है कि घनानंद को चातक के समान प्रेमी माना है। वे चातक की भांति निरंतर प्रेमी के ध्यान में डूबे रहे और उसी से प्रेम करते रहे। सुजान के द्वारा मना कर दिये जाने पर भी सुजान के प्रति उनका प्रेम कम नहीं हुआ, बल्कि वे जीवन पर्यंत प्रेम की अग्नि में दग्ध होते रहे और अपने काव्य का सृजन करते रहे। इतना ही नहीं उन्होंने अन्यत्र किसी की ओर अपना प्रेम निवेदन नहीं किया, उम्र भर सुजान की याद में गुज़ार दी। सुजान की याद उन्हें वियोगी बना देती है। वियोग का यही रूप घनानंद में सर्वाधिक देखा गया है। उनके वियोग वर्णन को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो विरह ही उनके जीवन का आधार बन गया था। घनानंद के विरह की



अनुभूति इतनी व्यापक रही है कि उनको संयोग में भी विरह ही दिखाई देता है। घनानंद के जीवन में संयोग के क्षण बहुत ही कम आये थे, उनका अधिकांश जीवन विरह में ही बीता था। अतः घनानंद ने सुख की अपेक्षा दुख को अधिक महत्व दिया। विरह की मार्मिक व्यंजना घनानंद में अत्यधिक रूप से देखने को मिलती है। उन्होंने वियोग की लगभग सभी अन्तर्दशाओं को व्यक्त किया है, घनानंद के मन की जो दशा सुजान के असीम रूप सौन्दर्य को देखकर होती है, वह दशा दृष्टव्य है—

“निरखि सुजान प्यारे रावरो रूचिर रूप,

बावरो भयो है मन मेरो न सिखौ सुनै।

मति अति छाकी गति थाकी रतिरस भीजि,

रीझ की उझिल घनआनंद रह्यौ उनै॥

नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी

दसा अचिरज देखौ बूझति गर्हँ गुनै।

नेह लाय रूखे अब कैसेँ हूजियत हाय,

चंद ही के चाय च्यै चकोर चिनगी चुनै।”<sup>55</sup>

विरह वेदना और प्रेम की पीड़ा घनानंद के रोम-रोम में बसी है। उनका काव्य अन्तर की पीड़ा से ओत-प्रोत है, जो हृदय का स्पर्श कर आत्म विभोर कर देता है। अतः इनके काव्य में प्रेम की चरमावस्था के दर्शन होते हैं। घनानंद का स्वानुभूतिमय जीवन उनके काव्य में व्यक्त हुआ है। व्यक्तिगत भौतिक प्रेम की असफलता ने घनानंद के हृदय में वेदना, निराशा और अवसाद के गहरे भाव भर दिये थे। अतः उनके काव्य में संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग की प्रधानता देखने को मिलती है। पीड़ा की अधिकता उनके व्यक्तिगत जीवन में इतनी अधिक घुलमिल गई थी कि वे संयोग के क्षण में भी विरह का ही अनुभव किया करते थे। घनानंद के प्रेम का चरम रूप उनके विरह में ही देखने को मिलता है। विरह में ही प्रेम का पूर्ण परिपाक होता है और यही परिपाक उनके जीवन का आधार बन गया था।

घनानंद का मानना था कि प्रेम की साधना में प्राण का परित्याग करना कायरता की निशानी है। मछली और पतंगे का अटूट प्रेम विश्व विख्यात है परन्तु घनानंद मीन और पतंगे के प्रेम को नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में इनका प्रेम

इतना तुच्छ है कि मनुष्य की वियोग साधना का स्पर्श भी नहीं कर सकता। उनका मानना था कि मीन तो जल से वियुक्त होते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है और पतंगा दीपक की लौ के प्रति आकृष्ट होता है और उसके चारों ओर चक्कर काटता है तथा गिरकर अपना अन्त कर देता है, परन्तु मनुष्य प्रिय के वियोग में तड़पता ही रहता है। इससे जल को, मीन (प्रेमी) को और उसके प्रेम को कलंक लगता है। दोनों का अंत अपने प्रिय के प्रति प्रेम की अधिकता के कारण ही होता है। घनानंद प्रिय के वियोग में प्राण देने वाले कवि न थे। वे मछली और पतंगे को कायर मानते हैं क्योंकि मीन और पतंगे अपने प्राण त्यागकर प्रिय वियोग के कष्ट से छुट्टी पा लेते हैं, परन्तु सच्चा प्रेमी इतना उतावला नहीं होता, वह तो प्रिय के रूप को देखता रहता है और उसके वियोग में तड़पता है, आँसू बरसाता है, कष्ट सहता है, जो मीन और पतंगे से कहीं बढ़कर है। घनानंद ऐसे कवि हैं, जो जीवित रहकर अपने प्रिय के प्रति विरहानुभूति को सहन करते हैं, वही विरहानुभूति उन्हें जीने के लिए प्रेरित करती है इसी विरहानुभूति में वह समर्पण और त्याग को प्रमुखता प्रदान करते हैं। उनका मानना है कि विरह को झेलते रहना ही प्रेमी का कर्तव्य है—

“हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।

नीर सनेही कोँ लाय, कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै॥

प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़, मीत के पानि परे कोँ प्रमानै।

या मन की जु दसा घनआनँद, जीव की जीवनि जान ही जानै॥<sup>66</sup>

प्रिय के द्वारा टुकरा दिये जाने पर वे वियोग की पीड़ा में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं। विरह की सच्ची साधना में वे इस प्रकार का कलंक लगने नहीं देना चाहते हैं। घनानंद का मानना है कि विरहजन्य कष्ट का जो अनुभव उनको है, वह मीन का जल के विरह में और पतंगे का दीपक के विरह में छटपटाकर मर जाने में कहाँ है? वैसे भी मरकर तो सभी कष्टों से मुक्ति मिल जाती है। इसमें घनानंद का भारतीय आशावादी दृष्टिकोण देखने को मिलता है। वे प्रेम में प्राण त्यागने को कलंक मानते हैं। अतः प्रेम मार्ग में आने वाली हर बाधा को झेलने में वे पीछे नहीं हटते थे। वे जिन्दगी भर प्रेम में उत्पन्न वियोग को झेलते ही रहे। इस सम्बन्ध में लखनलाल सिंह ने कहा है—“सच्चा प्रेमी वियोग से कभी

घबराता और कतराता नहीं क्योंकि वियोग में अनुभोगता के कारण प्रेम संचित होकर घनीभूत हो जाता है।<sup>57</sup> घनानंद के प्रेम में वियोग की प्रधानता का कारण उनकी प्रेमिका सुजान थी। घनानंद अपनी प्रेमिका सुजान से सच्चा प्रेम करते थे परन्तु इसके बदले में उन्हें उपेक्षा, दुत्कार और निराशा ही मिली। इसके बावजूद घनानंद अपने प्रेम पथ से विचलित नहीं हुए। घनानंद के मन में हमेशा ही प्रिय की हित की कामना बनी रही। वह अपनी प्रेमिका का कभी भी अनिष्ट नहीं चाहते थे, अपितु प्रिय के द्वारा ठुकरा दिये जाने पर भी वे उसके हित के बारे में ही सोचते रहते रहे।

रीतिमुक्त कवियों ने अपनी विरह वेदनाओं की कसक और सौन्दर्यानुभूति के व्यक्तिगत रूप को अपने हृदय की गहराइयों में उतारा, उसी को कविता के क्षेत्र में अपनी प्रेमानुभूतियों के रूप में व्यक्त कर दिया। ये प्रेम और सौन्दर्य को वासना नहीं अपितु सच्ची आराधना मानते थे। इसलिए घनानंद का प्रेम आगे चलकर आत्मिक स्तर से आध्यात्मिक स्तर की ओर अग्रसर हुआ। घनानंद के लिए प्रेम एक मामूली खेल न था, वह तो उनके जीवन का सत्य था। यही कारण है कि घनानंद का प्रेम, विरह रूपी अग्नि में तपकर शुद्ध कुंदन की तरह निखर आया है। इसलिए इनके प्रेम में अन्य रीति कवियों की भांति वासना की गंध नहीं आती, अपितु इनके प्रेम में स्वच्छन्द निर्मल रूप के दर्शन होते हैं। स्वार्थ तो उनके प्रेम से कोसों दूर था। उनका प्रेम साधन नहीं अपितु साध्य था। अपने प्रिय का प्रेम पाने के लिए इतना तत्पर होने पर भी, वे जीवन पर्यंत प्रेम के अभिलाषी ही बने रहे। प्रेम की विभोरता, हालांकि सभी रीतिमुक्त कवियों में देखी गई है, परन्तु प्रेम में जो भाव विभोरता घनानंद में देखने को मिलती है, वह अन्य में नहीं मिलती।

घनानंद ने राधा-कृष्ण के प्रेम को लौकिकता की ओर नहीं खींचा, बल्कि अपनी लौकिक वासनाओं को राधा कृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिया था। अपने प्रिय 'सुजान' नाम को ही कृष्ण नाम दे दिया था। इसी से वे प्रेम की लौकिकता में ही अलौकिकता के दर्शन करने लगे। उनकी यह लौकिक प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठा ही निश्छल प्रेम भक्ति का रूप धारण कर लेती है। घनानंद का सम्बन्ध निम्बार्क सम्प्रदाय से था। उनकी भक्ति-भावना दास्य, सख्य, मधुर सभी रूपों को लेकर चली थी।

घनानंद के काव्य का मूल शृंगार ही रहा है। घनानंद ने काव्य में शृंगार के भोगपक्ष की अपेक्षा अनुभूति पक्ष को अधिक महत्व दिया है। इसलिए उनके शृंगार वर्णन में स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म रूप ही मुख्य रहा। घनानंद सहज और स्वाभाविक सौन्दर्य के कायल थे। सौन्दर्य सम्बन्धी घनानंद का दृष्टिकोण अत्यन्त सूक्ष्म था, इसीलिए उन्होंने बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य पर अधिक बल दिया था। रूप सज्जा को तो उन्होंने बहुत कम स्थान दिया है। घनानंद का सौन्दर्य के प्रति आकर्षण अवश्य रहा है, परन्तु अत्यन्त संयत और सीमित रूप में। रीतियुग में जहाँ एक ओर रीतिकालीन कवि नारी के स्थूल सौन्दर्य के प्रति आकर्षित थे और उनका मन उसी स्थूल सौन्दर्य का वर्णन करने में रमता था, वहीं दूसरी ओर स्वच्छन्द कवि घनानंद ने सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण किया है। रीतिकाल में यह परम्परा थी कि दरबार में रहकर राजाओं का यशोगान करना और धन कमाना, घनानंद ने उन सभी परम्परा से हटकर अपने काव्य की रचना की। घनानंद प्रेम के मार्ग को सीधा और सरल मानते हैं, जहाँ पर सच्चाई के साथ ही चला जाता है, उस मार्ग में कपटी व स्वार्थी लोगों का कोई स्थान नहीं है—

“अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ झझकै कपटी जे निसाँक नहीं॥

घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तँ दूसरो आँक नहीं।

तुम कौन धौँ पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥”<sup>58</sup>

घनानंद प्रेम में सीधे व सरल मार्ग को ही प्रमुखता प्रदान करते हैं। ये प्रेमहीन व्यक्ति को अनुभूति शून्य मानते हैं। मानव जीवन में वे प्रेम को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। प्रेम के बिना वे मानव जीवन को निरर्थक मानते हैं। वे प्रेमानुभूति को बुद्धि से भी ऊपर मानते हैं। प्रेम के विषय में हृदय को बुद्धि से परे समझते हैं। इनके काव्य में बुद्धि दासी है और हृदय का स्थान सर्वोपरि है। सभापित मिश्र ने इस सम्बन्ध में लिखा है—“रीतिमुक्त काव्य की रानी अनुभूति और दासी बुद्धि है। रीझि सुजान सची पटरानी बची बुधि—बाबरि ह्वै करि दासी।”<sup>59</sup>

घनानंद भाषा की बाहरी सजावट पर बल नहीं देते हैं क्योंकि स्वाभाविक अभिव्यक्ति में या आन्तरिक अभिव्यक्ति में भाषा की सजावट पर ध्यान नहीं दिया जाता है। उनका मानना है कि हृदय में उत्पन्न भावों को व्यक्त करने के लिए भाषा की सजावट करनी ही नहीं चाहिए। हृदयस्थ भावों का आकार बाह्य परक नहीं

होता है और उसमें बनावटीपन भी नहीं होता। भावों का असाधारण होना, इनके काव्य की विशेषता है परन्तु इसकी अभिव्यक्ति में उन्होंने अलंकृत भाषा का प्रयोग नहीं किया है। ब्रजभाषा में वर्णन करना इनकी मुख्य विशेषता है। लक्षणा का प्रयोग करने में वे सफल रहे हैं—

“नेही महा ब्रजभाषा—प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौँ जानै।

जोग—बियोग की रीति मैँ कोबिद, भावना—भेद—स्वरूप कौँ ठानै॥

चाह के रंग मैँ भीज्यौ हियो, बिछुरैँ मिलैँ प्रीतम सांति न मानै।

भाषा—प्रवीन, सुछंद सदा रहैँ सो घन जी के कबित्त बखानै॥”<sup>60</sup>

घनानंद काव्य में अलंकारों के स्थान पर स्वाभाविकता को प्रमुखता प्रदान करते हैं। उन्होंने अलंकारों के द्वारा पांडित्य का प्रदर्शन नहीं किया है। अलंकार तो उनके काव्य में स्वतः ही आ गये हैं, ऊपर से चिपकाये नहीं गये हैं। घनानंद ने सवैया और कवित्त छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। घनानंद को संगीत से गहरा लगाव था। वे संगीत के स्वर आदि से भली-भाँति परिचित थे। उनके पदों में शास्त्रीय संगीत और भावनाओं का सुन्दर सामंजस्य है। इनके काव्य का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि भाव और संगीत साथ-साथ चल रहे हैं।

इस प्रकार देखा जाय तो घनानंद में जो विशेषतायें हैं, वह अन्य रीतिकालीन कवियों में नहीं। घनानंद ने अपने स्वच्छन्द भावों को काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनको अन्य रीतिबद्ध कवियों की भाँति बाहरी सजावट, आभूषणों, अलंकारों आदि से कोई सरोकार ही न था। सभी रीतिमुक्त कवियों की भाँति उन्होंने अपने काव्य में व्यक्तिगत प्रेम को स्वच्छन्द रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है। कृष्णचंद्र वर्मा जी का कहना है—“आलम और शेख का प्रेम, घनानंद और सुजान का, बोधा और सुभान का, इसी प्रकार ठाकुर का भी वैयक्तिक प्रेमाख्यान अविदित नहीं।”<sup>61</sup> घनानंद ने अपने काव्य में स्वच्छन्द प्रेम को ही प्रमुखता प्रदान की है। प्रेमहीन मानव जीवन को वे निरर्थक मानते हैं। वे प्रेम के बाह्य स्वरूप के स्थान पर आन्तरिक पक्ष पर अधिक बल देते हैं, यह आन्तरिकता की प्रवृत्ति इनके काव्य में मुख्य रूप से पाई जाती है। सौन्दर्य के प्रति इनका दृष्टिकोण सूक्ष्म ही था। अतः घनानंद के काव्य को देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्य पर रीति का प्रभाव तो था, लेकिन

बन्धन नहीं था। कतिपय प्रमुख कवियों की विशेषतायें उनके काव्य में दिखाई देती हैं। सभापति मिश्र जी ने लिखा है—“घनानंद के काव्य में कबीर की सच्चाई, मीरा की तरलता, सूर का संगीत, तुलसी की दीनता, रसखान का आवेग, देव की रसात्मकता तथा पदमाकर की चंचलता है।”<sup>62</sup> रीतिकालीन अन्य कवियों से साम्य होते हुए भी घनानंद की रचनाओं में व्यापक रचना दृष्टि, हृदय पीड़ा की विशालता, तन्मयता, भावों की तीव्रता, आध्यात्मिकता, प्रेम की गहनता और अभिव्यंजना की अद्भुत शक्ति उनके काव्य को गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करती हैं।

निष्कर्षतः घनानंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि उनका समय सं० 1730 से सं० 1817 तक रहा। घनानंद एक स्वच्छन्द प्रेमी कवि थे इसलिए उन्होंने किसी परम्परा अथवा परिपाटी का अनुसरण नहीं किया था, अपितु स्वच्छन्द होकर अपने आत्मिक भावों को अभिव्यक्त किया। इस प्रकार देखा जाय तो घनानंद की काव्य प्रणाली तत्कालीन कवियों से भिन्न है। घनानंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के परिप्रेक्ष्य में यह सहज रूप में कहा जा सकता है कि घनानंद हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं, वे असाधारण प्रतिभा के धनी हैं। घनानंद की काव्य सृजन की अपनी एक प्रणाली है, जिससे वह अन्य रीतिकालीन कवियों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान स्थापित करते हैं।

## संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-2), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0-262
2. सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, वाणी वितान, बनारस-2009, पृ0सं0-13
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी-सं0 2035, पृ0सं0-314, 319, 320, 351, 352, 362, 363
4. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-2), पृ0सं0-301
5. डॉ0 कृष्णचंद्र वर्मा, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, कैलाश पुस्तक सदन, आगरा-1967, पृ0सं0-46
6. डॉ0 अरविंद पांडेय, रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा- पृ0सं0-227
7. डॉ0 सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, द मार्टन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1957, पृ0सं0-204
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0सं0-319
9. डॉ0 मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी-2015 वि0, पृ0सं0-33
10. सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, पृ0सं0-68
11. वही, पृ0सं0-55, 56
12. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-1980, पृ0सं0-13
13. वही, पृ0सं0-13
14. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0सं0-319
15. उद्धृत, डॉ0 मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ0सं0-22
16. सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, पृ0सं0-75
17. डॉ0 मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ0सं0-23

18. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, पृ०सं०-75
19. रामफेर त्रिपाठी, कवित्रयी, रामा प्रकाशन, नजीराबाद, लखनऊ-1965, पृ०सं०-125
20. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, विकास प्रकाशन, कानपुर-2009, पृ०सं०-24
21. डॉ० शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ०सं०-14
22. डॉ० मंजू शर्मा, घनानंद और प्रसाद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, ज्योति इण्टरप्राइजिज, जवाहर नगर, दिल्ली-2009, पृ०सं०-10
23. डॉ० सभापति मिश्र, घनआनंद की काव्यसाधना, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद-1989, पृ०सं०-14
24. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (सुजान हित), छ०सं०-481
25. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०-40, 41, 42
26. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, पृ०सं०-23
27. वही, पृ०सं०-24
28. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (प्रशस्ति), छ०सं०-1
29. डॉ० श्याम बिहारी मिश्र, रायबहादुर पंडित, शुकदेव बिहारी मिश्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, गंगा ग्रन्थागार, मीनाबाद पार्क, लखनऊ-1966, पृ०सं०-221
30. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं०-335
31. रामफेर त्रिपाठी, कवित्रयी, पृ०सं०-125
32. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-2), पृ०सं०-371
33. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०-24, 25, 26
34. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, घनआनंद, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर-1976, पृ०सं०-65



35. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (मुरलिका मोद) छ०सं० 50, 51, पृ०सं०-311
36. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, गायत्री प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद-1965, पृ०सं०-537
37. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, पृ०सं०-60
38. पं० रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी (भाग-1), नवनीत प्रकाशन, मुम्बई-2000, पृ०सं०-445
39. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं०-320
40. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-2), पृ०सं०-366
41. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, पृ०सं०-30
42. वही, पृ०सं०-30
43. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, पृ०सं०-73, 74
44. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, घनआनंद, पृ०सं०-78
45. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, पृ०सं०-32
46. वही, पृ०सं०-33
47. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्य धारा, पृ०सं०-56
48. डॉ० सभापति मिश्र, घनआनंद की काव्यसाधना, पृ०सं०-51
49. वही, पृ०सं०-146
50. डॉ० नगेंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली-1987, पृ०सं०-373
51. डॉ० लखनलाल सिंह, घनानंद का काव्यशिल्प, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-सं० 2032, पृ०सं०-71
52. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, पृ०सं०-210
53. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, पृ०सं०-220
54. डॉ० लखनलाल सिंह, घनानंद का काव्यशिल्प, पृ०सं०-56
55. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (सुजानहित), छ०सं०-25

56. वही, छं०सं०-4
57. डॉ० लखनलाल सिंह, घनानंद का काव्य शिल्प, पृ०-62
58. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (सुजानहित), छं०सं० 267
59. डॉ० सभापति मिश्र, घनआनंद की काव्यसाधना, पृ०सं०-39
60. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (सुजानहित), छं०सं०-1
61. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य- पृ०सं०-175
62. डॉ० सभापति मिश्र, घनआनंद की काव्यसाधना, पृ०सं०-148

## तृतीय अध्याय

### घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप

- 3.1 प्रेम : शब्दार्थ व स्वरूप
- 3.2 शृंगार : प्रेम का मूलाधार
- 3.3 प्रेम : वियोग
- 3.4 प्रेम : विषमता
- 3.5 प्रेम : पीड़ा की अनिर्वचनीयता
- 3.6 सूफी-काव्य का प्रभाव
- 3.7 प्रेम का स्वच्छन्द रूप

# घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप

## 3.1 प्रेम : शब्दार्थ व स्वरूप

प्रेम मानव मन की आदि एवं चिरन्तन भावना है। यूँ तो मानव हृदय हर पल किसी न किसी भावना से उलझता रहता है, परन्तु मानव मन को शांति प्रदान करने का माध्यम प्रेम ही है। मानव का यह स्वाभाविक गुण है कि वह अपने हृदय की भावनाओं को अपने तक ही सीमित न कर दूसरे के हृदय से भी सम्प्रेषित करना चाहता है। इसके द्वारा वह दूसरे के हृदय के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करता है और उसे अपना प्रिय बनाता है। परिणामस्वरूप परस्पर स्नेह व झुकाव का भाव पैदा होता है और मानव मन में आकर्षण की वृद्धि होती है। एक दूसरे के सम्पर्क एवं साहचर्य के कारण ही मानव मन में प्रेम की भावना उत्पन्न होती है। प्रेम भावना मानव जीवन का आधार है। प्रेम वह दिव्य शक्ति है, जिसके मूल में ईश्वरत्व की छाया विद्यमान रहती है और यही वह शक्ति है, जो परमात्म तत्त्व की प्राप्ति का माध्यम भी है।

वास्तव में प्रेम जीवन का सारतत्त्व है। जड़, चेतन सभी इसके द्वारा संचालित होते हैं। प्रेम का प्रभाव न केवल मानव मन को प्रभावित करता है, अपितु वह सभी जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों आदि को भी प्रभावित करता है। चाँद, सूरज, तारे आदि सभी प्रकृतिदत्त नक्षत्र, प्रेम के वशीभूत होकर ही संचालित होते रहते हैं। किन्तु मानव जाति में इसका स्वरूप अधिक विकसित हुआ दिखाई देता है। प्रेम चराचर जगत की केंद्रीय शक्ति है। डॉ० रामचंद्र बिल्लौरे जी का इस सम्बन्ध में कहना है—“प्रेम एक अपार महासागर है, जिसमें सहस्रों रसिकों के पर्वत से भी ऊँचे हृदय ऐसे डूब जाते हैं कि उनका पता तक नहीं चलता।”<sup>1</sup> इसलिए हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक प्रेम किसी न किसी रूप में दिखाई अवश्य देता है।

प्रेम संसार के कण-कण में व्याप्त है। यह मानव जीवन का अनुभव मात्र है। प्रेम भावना के मूल में आनंद प्राप्ति या सुख प्राप्ति की कामना बनी रहती है। यह वह सूक्ष्म अनुभूति है, जिसे भाषा के बंधन द्वारा नहीं बांधा जा सकता। प्रेम अनुभूति

का विषय है, इसे अनुभव ही किया जा सकता है। वास्तव में प्रेम की महत्ता तो गूंगे के मीठे फल की मिठास की भांति है। जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति मीठे फल की मिठास को अन्दर ही अन्दर अनुभव करता है और उसे व्यक्त नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रेमी व्यक्ति भी प्रेम के एहसास को, उसकी महत्ता को अन्दर ही अन्दर अनुभव ही कर सकता है, उसे व्यक्त नहीं कर पाता। भक्तिकालीन कवि सूरदास ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

“अबिगत—गति कछु कहत न आवै।

ज्यों गूँगें मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।”<sup>2</sup>

प्रेम की महत्ता उसे अनुभव करने में है, व्यक्त करने लिए कोई भाषा नहीं है। मानव जीवन में प्रेम की भूख स्वाभाविक है, उसके बिना जीवन नीरस है, शून्य है। “जिस प्रकार नमक के बिना षट्‌रस—व्यंजन व्यर्थ हैं, उसी प्रकार प्रेम भावना के बिना साहित्य में जो बचेगा वह शून्य के निकट ही होगा।”<sup>3</sup> अतः प्रेम ही सर्वस्व है, अमूल्य सम्पत्ति है और वही जीवन का महान तत्व है।

प्रेम वस्तुतः अमूर्त विषय है, इसे वाणी से नहीं भावों से अभिव्यक्त किया जाता है। एक सच्चा प्रेमी संसार में हर तरफ प्रेम के दर्शन करता है। वह सिर्फ प्रिय की ही आवाज सुनता है, हर क्षण उसी का वर्णन करता है और उसी का ही चिन्तन करता है। प्रेम का भाव अत्यन्त पवित्र है। प्रेम हृदय में प्रवाहित होने वाली वह शीतल धारा है, जिसमें सात्विकता की प्रधानता होती है और जो दिव्य सौन्दर्य से ओत-प्रोत होती है। द्वारिकाप्रसाद सक्सैना का इस सम्बन्ध में कहना है—“प्रेम अमर सिद्धियों का भण्डार है, इसमें नैसर्गिक आभा रहती है। यही लोक और परलोक में श्रेय प्राप्ति का साधन है।”<sup>4</sup> प्रेम तत्त्व स्थूल जगत से लेकर सूक्ष्म जगत तक मूल तत्व के रूप में विद्यमान है। समस्त संसार इसी प्रेम तत्व से संचालित है—“आकाश के जितने भी नक्षत्र—मंडल हैं, वे सभी इसी प्रेम के द्वारा संचालित हैं, सूर्य एवं चंद्रमा भी उसी नियम के पालन में लगे हुए हैं, वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा पृथ्वी से चिपके हुए हैं, मछली पानी का परित्याग नहीं कर पाती और स्त्री एवं पुरुष की जोड़ी एक दूसरे के प्रति स्वतः ही अनुरक्त हो जाती है।”<sup>5</sup> वस्तुतः प्रेम सत्य है, स्थायी है। लैला—मजनूं, शीरीं—फरहाद, नल—दमयन्ती आदि प्रेमियों का प्रेम आज भी

लोगों के हृदय में मधुर स्फूर्ति बनकर जीवित है। प्रेम में दो लोगों का मिलन होता है, वे अलग नहीं एक ही प्रतीत होते हैं, जैसे प्रेम में चकोर चन्द्रमा हो जाता है और चन्द्रमा चकोर। देखने में वे दो ही प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में वे एक ही हैं। इसी प्रकार जब दो सच्चे प्रेमी आपस में मिलते हैं, तो बाह्य रूप से तो वे जरूर अलग होते हैं, लेकिन उनकी आत्मा एक ही होती है। प्रेम मानव जीवन का मूल है। मानव जीवन को सरस बनाए रखने में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है।

‘प्रेम’ शब्द ढाई अक्षर का है, परन्तु अत्यन्त व्यापक है। वेदों, उपनिषदों और पुराणों में ‘प्रेम’ शब्द की विस्तृत चर्चा हुई है। साहित्य में प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति विविध रूपों में हुई है। प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति ‘प्री’ क्रिया से हुई है। ‘प्री’ क्रिया आनंदानुभूति एवं चित्त प्रसन्न करने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। ‘प्री’ क्रिया में ‘मनिन्’ प्रत्यय के योग से ‘प्रेमन्’ शब्द बनता है। यही ‘प्रेमन् प्रेम’ शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—प्रीति, अनुराग और कृपा करना आदि। प्रेमन् भाववाचक संज्ञा शब्द है, इसलिए ‘प्रेमन्’ का अर्थ प्रियता या प्रिय का भाव है। शब्दकल्पद्रुम कोश में प्रेम शब्द का अर्थ—‘प्रेम, (न) प्रेमन्—प्रियस्यभावः, प्री+मनिन् सौहार्दम्, प्रेगा, प्रियता, हार्दम्, स्नेह इत्यमर मिलता है।’<sup>6</sup> प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में डॉ० अजब सिंह का कहना है—‘प्रेमन्’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘प्री’ (अर्थात् प्रसन्न करना, आनंद लेना या आनंदित होना) धातु से मनिन् (मन्) प्रत्यय जोड़कर भी होती है।’<sup>7</sup> इसके अतिरिक्त प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति व्याकरणानुसार भी मानी जाती है। ‘प्रीञ प्रीतौ’ धातु से उणादि सूत्र ‘सर्व धातुभ्यः’ से मनिन् प्रत्यय से युक्त होकर हुई है। डॉ० मनोहरलाल गौड़ का मत है—‘प्रेम ‘प्रिय’ शब्द का भाववाचक रूप है। ‘प्रिय’ शब्द का अर्थ है तृप्ति कारक। (प्रीणातीति प्रियः)। उसके भाववाचक रूप का अर्थ हुआ—‘तृप्ति’। प्रेम शब्द से हृदय के उस तृप्ति रूप आनंद का संकेत होता है, जो हमें किसी विषय के दर्शन से होता है।’<sup>8</sup> बृहत् हिन्दी कोश में प्रेम शब्द का अर्थ—‘प्यार, मुहब्बत, अनुराग; कृपा; क्रीड़ा, केलि, आनंद आदि लिया गया है।’<sup>9</sup>

इस प्रकार व्यापक शब्द होने के कारण प्रेम शब्द की विविध रूपों में व्याख्या हुई है। परशुराम चतुर्वेदी जी ने ‘प्रेम’ शब्द का आशय स्पष्ट करते हुए कहा है—‘प्रेम शब्द का अभिप्राय साधारणतया उस मनोवृत्ति से लिया जाता है, जिसमें

किसी व्यक्ति की दूसरे के सम्बन्ध में, उसके रूप, गुण, स्वभाव, सानिध्य आदि के कारण उत्पन्न कोई सुखद अनुभूति सूचित करती हो तथा जिसमें दूसरे के हित की कामना बनी रहती हो।<sup>10</sup> अतः प्रेम शब्द का अभिप्राय प्रीति या आनंद प्रदान करना है। प्रकृति और मानव, नदी और सागर, आकाश और पृथ्वी आदि में जो पारस्परिक आकर्षण है, वह प्रेम ही है।

प्रेम के विविध रूप होते हैं—शृद्धापरक प्रेम, स्नेहयुक्त प्रेम, सौहार्दपरक प्रेम आदि। शृद्धापरक प्रेम को भक्ति की संज्ञा दी जाती है, जो भक्त की ईश्वर के प्रति होती है। स्नेहयुक्त प्रेम को वात्सल्य प्रेम की संज्ञा दी जाती है, जो माँ की बेटे के प्रति होती है। इस प्रेम में माँ का बेटे के प्रति ममत्व का भाव होता है। यह प्रेम कर्तव्यपालन और लगाव के द्वारा उत्पन्न होता है। सौहार्दपरक प्रेम के अन्तर्गत पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका और मित्र आदि का प्रेम देखा जाता है। रामकुमार खण्डेलवाल जी ने प्रेम शब्द के विविध रूपों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—“लालसा और कामना, आकर्षण और मोह, भक्ति और शृद्धा सब प्रेम भावना के विभिन्न रूप हैं। कहीं रूपासक्ति तो कहीं सर्वस्व समर्पण। कहीं यह उस नश्वर जगत एवं अनगिनत नश्वरताओं के प्रति चिर तृषा है, तो कहीं उस चिरन्तन के प्रति आत्मनिवेदन। प्रेम तृप्ति का अमृत भी है, तो वासना का विषय भी, जीवन है तो मरण भी।”<sup>11</sup>

प्रेम के इन्हीं विविध रूपों के अन्तर्गत स्वार्थ से युक्त प्रेम और समर्पणयुक्त प्रेम भी दिखाई देता है। समर्पणयुक्त प्रेम के अन्तर्गत घनानंद जैसे प्रेमी कवि का नाम लिया जाता है। ये कवि अपने व्यक्तिगत जीवन में सुज्ञान पर पूर्णतया आसक्त थे। उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि वह उससे प्रेम ही करे, क्योंकि वह जानते थे कि सच्चे प्रेम का दूसरा नाम समर्पण है। यही समर्पण इनके प्रेम का आधार है। अपने प्रेम पात्र के सुख की कामना करने में ही वे खुश रहते थे। इसी प्रेम के वशीभूत होकर उन्होंने दरबार छोड़ वृंदावन में आश्रय लिया था। अपने प्रिय के सुख के लिए अनेक बाधाओं व कष्टों का सहन करना उन्हें स्वीकार था। इसके विपरीत स्वार्थ से युक्त प्रेम में मनुष्य लेने में ही विश्वास रखता है, देने में नहीं। फलतः वह सच्चे प्रेम के मर्म को समझ नहीं पाता। वह यह भूल जाता है कि प्रेम

मार्ग पर तो सच्चे व निष्कपट व्यक्ति ही चल सकते हैं, वही इस पथ पर सफलता प्राप्त करते हैं, सच्चा प्रेमी तो स्वार्थ से कोसों दूर रहता है। निष्कपट प्रेम तो मनुष्य के स्वभाव को भी बदल देता है—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

तहाँ साँचे चलैँ तजि आपुनपौ झझकैँ कपटी जे निसाँक नहीं।<sup>12</sup>

प्रेम का मार्ग अत्यन्त सहज एवं सरल है। इस रास्ते पर तो सच्चे प्रेमी ही चल सकते हैं, जिसमें कपट का कोई भाव नहीं है। सच्चे व निष्कपट प्रेम को प्राप्त करने के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अगम्य प्रेम मार्ग को देखकर तो अच्छे-अच्छे मुनि भी थक जाते हैं—“कबीर मारग अगम है, सब मुनिजन बैठे थाकि।”<sup>13</sup> अतः सच्चे प्रेम को प्राप्त करने के लिए स्वार्थ, कपट को छोड़ना पड़ता है। रामकुमार शर्मा तो प्रेम को एक चुंबकीय शक्ति मानते हैं। उनका कहना है कि “प्रेम में चुंबक और पारस के गुण हैं, जो मनुष्य को अपनी ओर खींचकर कंचन में बदल देता है।”<sup>14</sup>

प्रेम का एक रूप मनुष्य की उस वासना में भी लक्षित होता है, जिसे काम की संज्ञा दी जाती है। काम, वासना का स्थूल रूप ही है। प्रेमी-प्रेमिका के शारीरिक सौन्दर्याकर्षण के आधार पर जो प्रेम भावना जाग्रत होती है, जिसमें कामुकता का समावेश रहता है, काम की संज्ञा दी जाती है। काम वस्तुतः प्रेम का ही सोपान है, परंतु काम और प्रेम में भिन्नता होती है। वसंतलाल शर्मा (सं०) मरुभारती में संकलित लेख प्रकृति प्रेम में नागरमल सहल जी का कहना है—“प्रेम में आनंद होता है, वासना भ्रमर की तरह भ्रमणशील होती है।”<sup>15</sup> जहाँ प्रेम शुद्ध, सात्विक एवं मानवीय मनोवृत्ति से युक्त होता है, वहीं काम भावना वासना से युक्त होती है। काम में उदात्त भावना पैदा नहीं हो सकती है। यदि वासना में शारीरिक सौन्दर्य व आकर्षण का प्रमुख स्थान है, तो सच्चे प्रेम में त्याग और समर्पण का प्रमुख स्थान है, एक ओर यदि स्थूल (काम) भाव है, वहीं दूसरी ओर सूक्ष्म भाव (प्रेम) है। दोनों मूलतः एक होते हुए भी पूर्णतया भिन्न हैं। प्रेम में प्रेमी अपना सर्वस्व समर्पण कर अपने प्रिय की तुष्टि में ही तुष्ट होता है, उसी में आत्मसंतुष्टि प्राप्त



करता है, वहीं काम में प्रेमी लेने में विश्वास रखता है देने में नहीं—“इसलिए काम को हम प्रेम का रूप तभी दे सकते हैं जब उसमें आमूल परिवर्तन करके उसे अधिक से अधिक व्यापक और उदार बना दिया जाये।”<sup>16</sup> काम का उद्देश्य स्वार्थपरक होता है, परन्तु प्रेम का नहीं। काम का परिष्कृत रूप ही प्रेम है। “व्यक्ति जब अपनी इच्छानुसार सुन्दर वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का अवलोकन करता है, तो सुन्दरता के प्रति अनायास ही अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, तब उस सुन्दर वस्तु, व्यक्ति अथवा दृश्य के प्रति दृष्टा के रागात्मक सम्बन्ध को प्रेम कहते हैं।”<sup>17</sup>

प्रेम मानव जीवन को सार्थक बनाता है, उसी के द्वारा इस संसार में रिश्तों में मिठास बनी रहती है। प्रेम सत्य, शाश्वत और स्थिर है, उसी के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। प्रेम सत्य का अपार सागर है, जिस प्रकार समुद्र की गहराई की थाह ले पाना असम्भव है, उसी प्रकार प्रेम की गहराई की थाह ले पाना भी असम्भव है। प्रेम करने की कोई सीमा नहीं होती है। प्रेम की पवित्रता व उसकी विशालता को व्यक्त करते हुए डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सैना जी का कहना है—“प्रेम जीवन की शाश्वत भावना है। वह हृदय का अमर संगीत, मन की सात्विक वृत्ति, बुद्धि का चेतन विलास तथा अन्तःकरण का दिव्य आलोक है। प्रेम की पवित्रता से ही मानव-जीवन सफल होता है और प्रेम की सात्विकता से ही मानवता का विकास होता है तथा प्रेम की ज्योति से ही अज्ञान-तिमिर का नाश होता है। इसके साथ ही प्रेम की शीतलता से, ताप से संतप्ति मिलती है। इसलिए प्रेम ही चेतन-शक्ति है, प्रेम ही दिव्य ज्योति है और प्रेम ही ईश्वर की साकार प्रतिमा है।”<sup>18</sup>

भारतीय विद्वानों ने अपने साहित्य का मूलाधार प्रेम माना है। संस्कृत के विद्वान् बाल्मीकि, वेदव्यास, महाकवि कालिदास, महाकवि भारवि, महाकवि बाण, महाकवि भवभूति आदि ने प्रेम तत्त्व के आधार पर ही भारतीय साहित्य को उन्नतिशील बनाया है। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध महाकवि कबीर, सूर, तुलसी जायसी, रसखान आदि ने अपने काव्य में प्रेम तत्त्व को ही प्रमुखता प्रदान की है। संस्कृत कवि कालिदास ने प्रेम को जीवन का मुख्य तत्त्व माना है। अपने काव्य में

प्रेम को प्रमुख स्थान देते हुए उन्होंने प्रेम के ऐन्द्रिय रूप को नहीं बल्कि उसके आदर्श रूप को महत्त्व दिया है। उनका प्रेम मर्यादित है, वह कर्तव्य की सीमा में बँधा हुआ है। कालिदास इसी प्रेम तत्त्व का सम्बन्ध मानव जीवन के पूर्व संस्कारों से मानते हैं—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व,

भाव स्थिराणि जननान्तरसौहृदानि”<sup>19</sup>

कालिदास जिस भावात्मकता के साथ प्रेम की गहराई का स्पर्श करते हैं, वह अद्वितीय है। मनुष्य का रूप सौन्दर्य और शीलवान स्वभाव सदैव से ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। मनुष्य इन गुणों के प्रति आकर्षित होकर ही प्रेम करता है। महाकवि भवभूति ने इन गुणों के प्रति आकर्षित होने से ही प्रेम की उत्पत्ति मानी है। वे प्रेम में हृदयगत भावों को महत्त्व देते हैं। उनका मानना है कि प्रेम की पीड़ा को केवल प्रेम करने वाला हृदय ही समझ सकता है, वही इसके महत्त्व को पहचान सकता है। प्रेम एक ऐसा तत्त्व है, जो करता है, वही जानता है, अन्य व्यक्ति से इसका कोई लेना देना नहीं है—

“तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।

हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।”<sup>20</sup>

महाकवि भवभूति ने प्रेम को हृदय से हृदय का मिलन माना है। वेद, उपनिषद् आदि में भी प्रेम तत्त्व को शुद्ध, सच्चा, निष्कपट बताया गया है। नारदभक्तिदर्शन में प्रेम के अनुभूतिमय स्वरूप पर बल दिया गया है। प्रेम को व्यक्त करने के लिए किसी भाषा की आवश्यकता नहीं होती, यह केवल अनुभव ही किया जा सकता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रेम अवर्णनीय है। प्रेम गुण रहित, कामना रहित और प्रतिक्षण बढ़ने वाला होता है। नारदभक्तिदर्शन में प्रेम के सम्बन्ध में कहा गया है—

“अनिवर्चनीयं प्रेम स्वरूपम्।”

“मूकास्वादनवत्”

“प्रकाशतेऽपि पात्रे”

“गुणरहितं, कामनारहितं, प्रतिक्षणं वर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्”<sup>21</sup>

इस प्रकार संस्कृत के कवियों ने प्रेम को उदात्त तत्त्व मानकर उसे अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है और उसे अनुभव स्वरूप माना है। हिन्दी के विद्वानों में विशेषकर भक्तिकालीन कवियों ने तो प्रेम को परमात्मा का अंश माना है, फिर चाहे कबीर हों, सूर हों, तुलसी हों या फिर जायसी। सभी विद्वान प्रेम को ईश्वरीय शक्ति मानते हैं। कबीर प्रेम को ईश्वर से जोड़ते हैं और प्रेम को ईश्वरीय सत्ता का अंश मानते हैं। वे प्रेम के माध्यम से परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं। आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार ही मिलन की चरम अवस्था है। प्रेम रस का पान कर लेने से अन्तरात्मा पवित्र हो जाती है और उसका परमात्मा से तादात्म्य स्थापित हो जाता है—

“कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ।

अंतरि भीगी आत्माँ हरी भई बनराइ।”<sup>22</sup>

सूफी कवि जायसी का मानना है कि प्रेम ही वह तत्त्व है, जो ईश्वर तक पहुँचने में सहायक होता है। वे परमात्मा में ही अपने प्रिय के दर्शन करते हैं और सारा संसार उन्हें प्रियतममय दीखता है। उन्होंने ‘पदमावत’ में पदमावती को परमात्मा और रत्नसेन को आत्मा का प्रतीक मानकर आत्मा का परमात्मा से मिलन कराया है। वे प्रेम को मानव जीवन का आधार भी मानते हैं और जीवन को प्रेम की बाजी भी—

“मुहम्मद बाजी प्रेम कै, ज्यों भावै त्यों खेल।

तिल फूलहिं के संग ज्यों, होइ फुलायल तेल।”<sup>23</sup>

भक्त कवि सूरदास कृष्ण के सच्चे आराधक हैं और उनसे सच्चा प्रेम करते हैं। वे प्रेम के शुद्ध रूप को मानते हुए कृष्ण की आराधना करते हैं। अपने प्रिय के अतिरिक्त उनका (प्रेमी) मन संसार में कहीं नहीं लगता। वह कहीं पर भी हों बार—बार अपने प्रिय के पास आकर ही सुख, शांति प्राप्त करता है—

“मेरो मन अनंत कहाँ सुख पावै

जैसेँ उड़ि जहाज कौ पछी फिरि जहाज पर आवै।”<sup>24</sup>

रामभक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में आदर्श प्रेम का रूप प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार प्रेम वह तत्त्व है, जो सदैव स्थायी रहता है तथा जिसमें एकरसता बनी रहती है। उन्होंने दोहावली में चातक की जो प्रीति स्वांति नक्षत्र में बरसने वाली बूंद से प्रदर्शित की है, वह निश्चित रूप से प्रेम का आदर्श रूप है। चातक की भाँति तुलसीदास ने अपने प्रिय राम से एकनिष्ठ भाव से प्रेम किया। उन्हें अपने राम पर विश्वास है और उन्हीं से वह प्रेम की आस भी लगाते हैं—

“एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास।

एक राम—घनस्याम हित चातक तुलसीदास।”<sup>25</sup>

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में प्रेम पर विस्तृत रूप से चर्चा हुई है। प्रेम वर्णन करने की प्रवृत्ति रीतिकाल में मुख्य है। इस युग में प्रेम के स्थूल रूप का वर्णन अधिक हुआ है। चूंकि रीतिकालीन कवियों की मुख्य प्रवृत्ति नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों का वर्णन करने की अधिक रही है इसी कारण वे प्रेम की गहराइयों को छू न सके। रीतिकालीन कवि बिहारी के काव्य का आधार प्रेम ही है। वे प्रेम को अग्नि के समान मानते हैं, जो लगती तो आँखों में है, पर उसका प्रभाव मन तक होता है। प्रेम एक ऐसी दशा है, जिसमें व्यक्ति बावला हो जाता है। प्रियतम की छवि को सोचते हुए प्रियतमा बेहोश हो जाती है, रात-दिन का भेदभाव भूल जाती है और जो मन में आता है, बोलती रहती है। बिहारी के अनुसार प्रेमदशा की चरमावस्था यही है—

“पिय कैँ ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।

आपु आपु हीँ आरसी लखि रीझति रिझवारि।”<sup>26</sup>

रीतिमुक्त कवियों का प्रेम रीति, परम्परा से भिन्न था। इनका प्रेम स्थूल न होकर सूक्ष्म है। प्रेम की संवेदना से इनका सम्पूर्ण काव्य स्पंदित हो उठा है। इसी से वह हृदय की गहराइयों को छू सका है, फिर चाहे घनानंद हों, आलम हों, बोधा हों अथवा ठाकुर। बोधा के अनुसार प्रेम का पथ काँटों से भरा हुआ है। इस पथ पर चलना तलवार की धार के समान कठिन है। सच्चे प्रेमी के लिए यह रास्ता आसान होता है, परन्तु कपटी के लिए काँटों से भरा हुआ। प्रेमी सर्वस्व न्यौछावर कर ही इस प्रेम पथ पर चल सकता है, इसी में प्रेम की उत्कृष्टता है—

‘अति छीन मृनाल के तारहु तैं तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।  
सुईबेह तैं द्वार सकीन तहाँ परतीति को टाँड़ो, लदावनो है।  
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तैं चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है।  
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तलवार की धार पै धावनो है।’<sup>27</sup>

रीतिमुक्त कवि घनानंद सच्चे, सीधे-सादे प्रेमी कवि हैं। वे प्रेम के मार्ग को सीधा मानते हैं। वे अपने प्रिय के प्रति पूर्णतया समर्पित थे, जो उनके जीवन का आधार थी। वे जीवन में शुद्ध, सच्चे व निष्कपट प्रेम को महत्त्व देते हैं। सच्चे प्रेमियों के लिए तो यह पथ सीधा और सरल है, उसमें वक्रता नहीं है, वहाँ तो सच्चाई के साथ चला जाता है—

“अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।  
तहाँ साँचै चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।”<sup>28</sup>

इस प्रकार भारतीय विद्वानों ने प्रेम तत्व की विभिन्न रूपों में व्याख्या की है। भारतीय विद्वान जहाँ प्रेम को छल, कपट व स्वार्थ से रहित मानते हैं, वहीं वे उसी प्रेम को ईश्वरीय सत्ता का अंश भी स्वीकार करते हैं। प्रेम के माध्यम से सांसारिक बाधाओं का सामना करते हुए ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। निश्चित रूप से प्रेम एक आध्यात्मिक शक्ति है, जो कहीं न कहीं मानव मन में निहित रहती है।

भारतीय विद्वानों के साथ-साथ पाश्चात्य विद्वानों ने भी प्रेम को जीवन का मुख्य तत्व मानते हुए उसे संसार के कण-कण में व्याप्त माना है। प्रेम मानव के श्रेष्ठ गुणों को उभार कर उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करता है। पाश्चात्य शब्दकोशों में प्रेम का अर्थ अंग्रेजी शब्द ‘Love’ से माना है। अमेरिकन इंग्लिश शब्दकोश में ‘Love’ शब्द से तात्पर्य है किसी के प्रति गहरा एहसास, आकर्षण देखभाल अथवा इच्छावृत्ति—“A strong emotion of attraction, care, romance or desire towards someone”.<sup>29</sup> प्रेम के समानार्थी शब्द—“Like, be fond of, adore, care for”,<sup>30</sup> आदि हैं। अतः Love से तात्पर्य है किसी के प्रति ऐसा एहसास जिसमें उसके प्रति हित की भावना हो और उसी में आनंद की अनुभूति हो।

राबर्ट ब्राउनिंग का कहना है—“प्रेम एक आदर्श रूप है, जो प्रेमियों को जीवन में अहं को मिटाने की प्रेरणा देता है और यह एक वास्तविकता भी है, जिसका

मूल-आधार पारस्परिक सम्बन्धों का सामान्य मानवीय अनुभव है। यह एक ऐसा बंधन है, जिसमें हम एक दूसरे की कमियों की ओर ध्यान नहीं देते।<sup>31</sup> जब तक मनुष्य की भावना में अहंकार रहता है, तब तक निःस्वार्थ प्रेम का कोई स्थान नहीं होता है। अहंकार को त्यागकर ही सच्चे, निस्वार्थ प्रेम तत्व को गहराई से समझा जा सकता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने प्रेम के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति मानी है। इन्होंने जीवन का आधार प्रेम माना है। "हैवलाक एलिस ने प्रेमी, प्रेमिका के शरीर, मन और आत्मा के तादात्म्य में ही प्रेम की सत्ता स्वीकार की है।"<sup>32</sup> प्रेमी प्रेमिका के शरीर, मन और आत्मा से एक होने पर ही प्रेम अलौकिकता की ओर उन्मुख होता है। अलौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम की ओर संकेत करता है। ईश्वर की ओर उन्मुख प्रेम को ही एलिस ने मुख्य रूप से स्वीकार किया है। पाश्चात्य विद्वान लारेंस ने "प्रेम को अलौकिक आनंद की अनुभूति का माध्यम माना है।"<sup>33</sup> प्रेमी और प्रेमिका को अलौकिक आनंद की अनुभूति होने पर उनका लौकिक या वासनामय प्रेम समाप्त हो जाता है। एक दूसरे की भावना में लिप्त होने पर उन्हें अतीन्द्रिय आनंद की अनुभूति होती है। दोनों के एक होने पर अहं समाप्त हो जाता है और वे अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त कर लेते हैं, जो ईश्वरीय अंश की अनुभूति है।

पाश्चात्य विद्वान रसल—"प्रेमी और प्रेमिका का प्रेम स्वतन्त्र और भयमुक्त हो, शारीरिक बंधन और मन सही अनुपात में हो, शारीरिक स्तर के स्थान पर आदर्श की ओर उन्मुख मानते हैं, प्रेम एक ऐसा वृक्ष है, जिसकी जड़ें पृथ्वी की गहराई तक और जिसकी शाखायें स्वर्ग में फैली हुई हैं।"<sup>34</sup> वे प्रेम में आदर्श और गहराई को महत्व प्रदान करते हैं। प्रेमी और प्रेमिका का प्रेम भयमुक्त होना चाहिए, क्योंकि भययुक्त और बंधे हुए प्रेम में वह दृढ़ता और गहराई नहीं होती है, जो उन्मुक्त प्रेम में होती है। जब प्रेमी के शरीर, मन और आत्मा का, प्रेमिका के शरीर, मन और आत्मा से तादात्म्य हो जाता है, तब वह प्रेम अत्यन्त प्रभावशाली, दृढ़ और गहरा होता है। सौन्दर्य से आकर्षित होकर जो प्रेम प्रारम्भ होता है, वह दृढ़ और गहरा नहीं होता है, क्योंकि उसकी नींव बाह्यता पर ही निर्भर होती है। उसी आदर्श प्रेम और उसकी गहराई को रसल ने प्रमुखता प्रदान की है।

पाश्चात्य विद्वानों की प्रेम मूलक कविताओं में विरह, पीड़ा को भी प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। उनका मानना है कि विरह के ताप से ही प्रेम स्वर्ण के समान

निखर कर आता है। सच्चे और निःस्वार्थ प्रेम की पहचान तो विरह के समय में ही होती है। वैसे भी प्रेम में मिलन से वह सुख प्राप्त नहीं होता, जो विरह के समय प्रतीक्षा करने से होता है। विरह के बाद मिलन में प्रेम और अधिक गहरा हो जाता है। विरह में जो तड़प, जो बेचैनी देखने को मिलती है, वह मिलन में कहाँ? अतः टेनीसन ने प्रेम में विरह को ही प्रमुखता प्रदान की है—“उन्होंने प्रेम में असफलता को अधिक महत्व दिया है क्योंकि उनका मानना था कि प्रेम में विरह का अधिक महत्व होता है, मिलन का नहीं।”<sup>35</sup> “प्लेटो का प्रेम सत्यं शिवं सुन्दरं का प्रेम है। उसकी प्रेम कल्पना मांसल व्यक्तित्व का स्पर्श नहीं करती, बल्कि वह सूक्ष्म अतीन्द्रिय विचारों की नींव पर अपना महल खड़ा करती है।”<sup>36</sup>

पाश्चात्य विद्वान आर० डब्ल्यू ट्वाइन का मानना है कि “प्रेम न करने का अर्थ है—जीवन का निषेध या बस जीवित मृत्यु ही।”<sup>37</sup> प्रेम के अभाव में मानव जीवन मरुस्थल के समान हो जाता है, प्रेम से हीन मनुष्य जीवित लाश है। मानव जीवन में प्रेम वह तत्व है, जो उसके जीवन को आनंदमय बनाता है। प्रेम बिना मानव जीवन निरर्थक है। प्रेम से ही ईश्वरीय तत्व की प्राप्ति सम्भव है। जब ईश्वर के प्रति प्रेम ही नहीं, तो ईश्वर की प्राप्ति भी सम्भव नहीं है। शेक्सपीयर प्रेम में दृढ़ विश्वास को महत्व देते हैं। उनके अनुसार अविश्वास होने पर प्रेम ही कहाँ? “दृढ़ विश्वास प्रेम को जन्म देता है। जहाँ विश्वास नहीं वहाँ प्रेम कहाँ और जहाँ प्रेम है वहाँ अविश्वास कहाँ? अतः विश्वास ही प्रेम का जनक है।”<sup>38</sup> विश्वास की नींव ही प्रेम पेड़ की आधारशिला है। जिस प्रकार पेड़ की जड़ें जितनी गहरी होती हैं, वह उतना ही पल्लवित और विकसित होता है, उसी प्रकार प्रेम जितना गहरा होता है, उतना ही परिपक्व होता है।

शैली ने प्रेम को भगवान का एक गुण माना है, जिस पर पूरा ब्रह्माण्ड टिका हुआ है। ईश्वर का अंश होने के कारण उन्होंने प्रेम को ऐसा तत्व माना है, जो विश्व को जीवन प्रदान करता है और मानव जीवन को सुचारु रूप से संचालित करता है। शैली ने “प्रेम को आदर्श माना है और उसे समस्त विश्व के संचालन की मूल शक्ति एवं सर्वव्यापक माना है।”<sup>39</sup> प्रेम ऐसा तत्व है, जो आत्मा और परमात्मा को अनुप्राणित करता है। प्रेम ही जीवन है, वही सर्वस्व है और विश्व के कण-कण

में व्याप्त है। भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विद्वानों की प्रेम सम्बन्धी मान्यताओं में समानता दिखाई देती है। दोनों ही विद्वानों ने प्रेम को ईश्वरीय प्राप्ति का सोपान माना है। प्रेम संसार की ऐसी अद्भुत शक्ति है, जिसे सच्चाई से, सहजता से, सरलता से तथा निःस्वार्थता से ही पाया जा सकता है। यही वह शक्ति है, जो लौकिक और अलौकिक धरातल का आधार बिन्दु बनती है। प्रेम के माध्यम से मनुष्य उस लोक में विचरण करता है, जहाँ लौकिकता, वासना की गंध दूर हो जाती है और वह उस अलौकिक, परम तत्व को प्राप्त कर लेता है। यही प्रेम की सार्थकता है।

### 3.2 शृंगार : प्रेम का मूलाधार

रस साहित्य का प्राण है, रस के बिना साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। साहित्य का चरम उत्कर्ष रस के द्वारा ही सम्भव है। डॉ० लालचंद्र जैन का इस संदर्भ में मत है—“रस की अखण्डता में ही व्यष्टि और समष्टि, सौन्दर्य और उपयोगिता तथा शाश्वत और सापेक्षिकता का अन्तर मिट जाता है।”<sup>40</sup> रस काव्य की आत्मा है। संस्कृत काव्यशास्त्र में विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रस की प्रक्रिया मानी गई है, जिससे रसानुभूति होती है। हिन्दी काव्य ग्रन्थों में विविध रसों का परिपाक हुआ है, जिनमें शृंगार, शांत, करुण, हास्य, वीर, रौद्र आदि रस मुख्य हैं। इन रसों में शृंगार को रस राजत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। शशि सहगल ने शृंगार को प्रमुख माना है—

नव रस सब संसार में, नव रस में सिंगार।

नव रस सार सिंगार रस, युगल सार सिंगार।”<sup>41</sup>

काव्य का मूल ‘सौन्दर्य’ है और उस सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति जितनी अधिक शृंगार के माध्यम से सम्भव है, उतनी किसी अन्य रस के माध्यम से नहीं। सौन्दर्य की रमणीय व मनोरम कल्पना शृंगार के अन्तर्गत ही साकार होती है। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है, इसकी उत्पत्ति ‘शृंग’ धातु से मानी जाती है। शृंगार शब्द ‘शृंग’ और ‘आर’ दो शब्दों से निर्मित हुआ है। ‘आर’ शब्द की मूल धातु ‘ऋ’ है और ‘ऋ’ धातु का अर्थ गति या प्राप्ति है, अतः शृंगार का अर्थ ‘रति की



प्राप्ति' होना है। मानव में रति या प्रेम की भावना अधिक प्रबल रही है। इस भावना का समाहार शृंगार के अन्तर्गत ही सम्भव है। रति की भावना मनुष्यों में ही नहीं पशु-पक्षियों में भी देखी जाती है। शृंगार रस से आप्लावित होकर सभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी आदि प्रफुल्लता के साथ झूमने लगते हैं। डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी शृंगार रस की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं—“विकसित पुष्पों को देखकर भृंग गुंजार करने लगते हैं। पादप जब नवल फल से सजता है, तो कोयल कूकने लगती है। क्षितिज पर उठती हुई मेघमाला को देखकर केंकी शोर मचाते हैं, वीणा की मधुर ध्वनि सुनकर चंचल मृग और विषधर सर्प भी मोहित हो जाते हैं। यह सब उस प्रेम का ही चमत्कार है, जो शृंगार रस का कारण है।”<sup>42</sup>

प्रेम मानव हृदय की भावना का मूल है, जीवन का महत्वपूर्ण आधार है, जिसका उत्कर्षमय रूप शृंगार रस के अन्तर्गत निहित रहता है। शृंगार रस की तीव्रता और प्रभावशीलता सभी रसों में बढ़ी चढ़ी है, इसीलिए इसके अन्तर्गत प्रेम तत्व का समाहार हो जाता है। प्रेम की सफल अभिव्यक्ति शृंगार रस से ही सम्भव है। शृंगार रस की परम्परा संस्कृत काव्य से प्रवाहित होती हुई हिन्दी साहित्य में आयी है। आदिकाल से ही शृंगार की अजस्र धारा प्रवाहमान रही है। शृंगार रस की यह धारा भक्तिकाल में तो अवश्य क्षीण थी, लेकिन रीतिकालीन वातावरण का स्पर्श पाते ही इसका क्षेत्र विस्तृत हो गया। शृंगारिक वातावरण होने के कारण यह धारा तीव्र गति से प्रवाहित होने लगी। शृंगारपरक काव्य का सृजन करना रीतिकालीन कवियों का उद्देश्य बन गया था। यह स्वाभाविक है कि “काव्य से यदि प्रेम और शृंगार निकाल दिये जायें, तो काव्य की सरसता कम हो जायेगी।”<sup>43</sup>

शृंगार रस के दो भेद हैं—संयोग और वियोग। रीतिकवियों ने शृंगार के संयोग पक्ष को अधिक प्रमुखता प्रदान की है। संयोग से तात्पर्य है—जिसमें प्रेमी-प्रेमिका का मिलन हो तथा प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे के प्रेम में प्रत्यक्ष रूप से लिप्त रहते हों। प्रेम के दो रूप हैं—स्थूल एवं सूक्ष्म। रीतिकाल के शृंगारिक वातावरण में प्रेम का स्थूल रूप मुख्य रूप से रहा है। प्रेम के स्थूल रूप में शारीरिक आकर्षण का प्राधान्य है और सूक्ष्म रूप में अनुभूति की प्रधानता। शृंगार रस के मूल में शारीरिक सुख की लालसा रहती है, उसी लालसा में लिप्त रहकर रीतिकालीन

कवियों ने अपने काव्य का सृजन किया है। विलासी भावों का शमन शृंगार के द्वारा ही सम्भव है और उसी के द्वारा मानसिक तुष्टि भी सम्भव है। हृदय की वृत्तियों के विस्तार का जो रूप इस रस में मिलता है, वह अन्य रसों में मिलना दुर्लभ है। शृंगार ने ऐन्द्रिय आकर्षण को जन्म दिया है, जिसका केंद्र बिन्दु नारी है। नारी के प्रति आकर्षण इस रस का मूल है। नर आरम्भ से ही नारी के प्रति आकर्षित होता रहा है, इसलिए आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रायः सभी कवियों ने शृंगार रस का आधार नारी को ही माना है। रीतिकवियों का अधिकांश समय नारी के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण करने में ही व्यतीत होता था। नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों का चित्रण करने के कारण इनके काव्य में प्रेम का स्थूल रूप दिखाई देता है। डॉ० सुखस्वरूप श्रीवास्तव जी का मत है—“रीतिकाल में प्रवेश करते ही शृंगार की धारा अनेक परिवर्तित परिवेश में स्थूल प्रेम व सौन्दर्य को ग्रहण करती हुई ऐन्द्रिय जगत में विहार करने लगी थी।”<sup>44</sup> रीतिकाल में शृंगार की प्रवृत्ति अत्यन्त व्यापक रूप में प्रस्फुटित हुई। अंग-प्रत्यंगों का वर्णन, वासनाओं की तृप्ति, सौन्दर्य के बाह्य चित्रण करने में रीतिकवियों का ध्यान लगा रहा। स्थूल सौन्दर्य में सामान्यतः वासना होती है। स्त्री पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षित होना प्राकृतिक है, इसलिए सभी कवियों ने शृंगार रस का आधार नारी के प्रति आकर्षण माना है। “वासना की उद्दीप्ति नारी ही करती है और उसकी तृप्ति भी उसी के माध्यम से होती है।”<sup>45</sup>

रीतिकवि विलासिता के सागर में ही डूबे रहते थे। शृंगार के स्थूल स्वरूप में डूबे रहने के कारण इनके प्रेम में शुद्धता व सच्चाई न आ सकी। डॉ० जितेंद्र पाठक का कहना है—“रीतिकालीन शृंगार भावना प्रेम न होकर विलास रह गयी थी। इसलिए रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि रसिक ही थे, प्रेमी नहीं।”<sup>46</sup> प्रेम शृंगार के मूल में निहित रहता है, जो सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। प्रेम काव्य का महत्वपूर्ण तत्व है, प्रेम और शृंगार रीतिकाल के मुख्य विषय रहे हैं। समय की आवश्यकता के अनुसार रीतिकालीन कविगण नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन तथा शृंगार का चित्रण करने में ही व्यस्त रहते थे। ऐसे स्थूल शृंगारिक वातावरण में कुछ ऐसे कवि भी थे, जिन्होंने शृंगार की उस विलासमयी धारा में स्वयं को बहने नहीं दिया। परम्परा से

चले आ रहे स्थूल प्रेम के चित्रण के स्थान पर उन्होंने व्यक्तिगत प्रेम को महत्व दिया, ऐसे कवियों में घनानंद का नाम विशेष है। घनानंद का स्थूल प्रेम शारीरिक आकर्षण से ही आरम्भ हुआ था परन्तु उसकी परिणति आन्तरिक रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी, जहाँ वासना का, बाह्यता का, स्थूलता का कोई स्थान ही नहीं। सहदेव वर्मा जी ऐसे घोर शृंगारिक वातावरण पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—“घोर शृंगारिक वातावरण में कतिपय कवियों ने अपने व्यक्तित्व को इस धारा में नहीं बहाया है और निराश्रित होकर भी मथुरा वृंदावन के सुरम्य वातावरण में बैठकर आप-बीती, आन्तरिक मनोदशा का हृदय बेधक चित्रण किया है, इस दृष्टि से घनानंद रीतिकालीन कवियों से भिन्न हैं। इसलिए प्रेमी कवियों के ये मुकुटमणि हैं।”<sup>47</sup> घनानंद शृंगार रस के कवि हैं। घनानंद का काव्य शृंगार रस से आप्लावित है। उनके समकालीन कवियों ने शृंगार वर्णन में काव्यशास्त्र की परम्पराओं का पालन किया है, राधा-कृष्ण की ओट में नायक-नायिका का शृंगार वर्णन किया है, परन्तु घनानंद ने हृदय की मुक्त व स्वच्छन्द भावनाओं के समान राधा-कृष्ण का शृंगारिक वर्णन स्वच्छन्दता के साथ किया है। संयोग की अपेक्षा वियोग की अर्न्तदशाओं को घनानंद ने अधिक महत्व प्रदान किया है, क्योंकि वियोग में ही प्रेम की सच्ची परख होती है।

घनानंद का सम्पूर्ण काव्य अनुभूति प्रधान है। उनका प्रेम व्यक्तिगत है इसलिए आत्मानुभूति पर आधारित है। आचार्य शुक्ल ने कहा है—“घनानंद ने अपनी कविताओं में बराबर ‘सुजान’ को सम्बोधित किया है, जो शृंगार में नायक के लिए और भक्तिभाव में भगवान कृष्ण के लिए प्रयुक्त मानना चाहिए। परन्तु घनानंद को अपनी प्रेयसी ‘सुजान’ का नाम इतना प्रिय था कि विरक्त होने पर भी उसे नहीं छोड़ा। विरक्त भाव से वृंदावन जाने पर भी इनकी अधिकांश कविता भक्तिभाव की कोटि में न आकर शृंगार की कोटि में ही आयेंगी।”<sup>48</sup>

घनानंद के काव्य में संयोग शृंगार का चित्रण कम है परन्तु जितना भी है, वह अत्यन्त हृदयग्राही एवं मार्मिक है। डॉ० मनोहरलाल गौड़ जी का कहना है—“जो प्रेम वासनामूलक है उसका पर्यवसान भोग में ही होता है—पर जो विशुद्ध

आत्मानुभूति के रूप में है, उसका पर्यवसान भी प्रेम ही होता है। घनानंद जी ने अनुभूत्यात्मक प्रेम के प्रसंग से संयोग वर्णन किया है और साधनात्मक प्रेम में राधा और कृष्ण के मिलन में संभोग का वर्णन पदों में किया है।<sup>49</sup>

संयोग में हृदय की मार्मिक अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं, जिसमें मानसिक उत्साह दिखाई देता है, इसीलिए उसमें अश्लीलता का समावेश नहीं है। संयोग सुख में घनानंद के अंग-अंग का उमंग से भर उठना, रोम-रोम का आनंद से भर जाना, उनमें जीवन का संचार करता है—

“ललित उमंग-बेली आलबाल-अंतर तै,  
आनंद के घन सीँची रोम रोम द्वै चढ़ी।  
आगम-उमाह-चाह छायाँ सु उछाह-रंग,  
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।”<sup>50</sup>

सामान्यतः संयोग शृंगार, रूप सौन्दर्य पर आधारित होता है। सौन्दर्य की रमणीय कल्पना शृंगार रस के अन्तर्गत ही साकार होती है। सुजान एक रमणीय स्त्री थी, घनानंद उसके रूप सौन्दर्य पर पूर्णतया न्यौछावर थे, इसलिए वह संयोग के क्षणों में अपनी सुध-बुध ही खो बैठते थे और भावों के आवेश में बह जाते थे। घनानंद सुजान के रूप सौन्दर्य को देखकर अपने हाथों बिक गये थे, वे सुजान से दूर नहीं रहना चाहते थे, उस रूप पर रीझे ही रहना चाहते थे—

“रूप-मतवारी घनआनंद सुजान प्यारी,  
घूमरे कटाछि घूम करै कौन पै धिर।  
नाच की चटक लसै अंगनि मटक-रंग,  
लाड़िली लटक-संग लोयन लगे फिरै।  
अभिनै-निकाई निरखत ही बिकाई मति,  
गति भूली डोलै सुधि सोधौ न लहाँ हिरै।”<sup>51</sup>

संयोग के अन्तर्गत सुन्दरी सुजान की चेष्टाओं का वर्णन घनानंद ने खूब किया। सुजान के नेत्र तीक्ष्ण हैं, जिस प्रकार वाण लगने पर व्यक्ति घायल हो जाता है, उसी प्रकार सुजान के तीखे नेत्रों ने घनानंद के मन को घायल कर दिया है। ये

तीक्ष्ण नेत्र संकेत कहीं और करते हैं घाव कहीं और होता है। तीक्ष्ण नेत्रों की मार से घनानंद बेसुध हो जाते हैं—

“कौन के जौ पै कटाक्ष पैनाए,

काजर बिन ही करत हैं घायल फिर लै सान चढ़ाए।

सूधे सहज ही सालत ये, इते बंक बनाए।

जसति हौं आनंदघन पिय सौ तानि तानि बरसाए।”<sup>52</sup>

उन्होंने युगीन प्रवृत्ति के अनुसार शारीरिक सौन्दर्य को उभारा है और उसे विषयासक्ति से दूर भी रखा है, फिर भी उनके प्रेम में एकनिष्ठता व तल्लीनता की भावना है, जो उन्हें रसिकों से कहीं अधिक ऊपर उठा देती है। प्रिय के साक्षात्कार मात्र से ही वे आत्मसंतुष्टि को प्राप्त करते हैं। प्रिय से भेंट करने की स्मृति मात्र से ही उनके पैर जम जाते हैं, प्रिय के सामने उपस्थित होने पर भी वे कुछ समझ नहीं पाते हैं और भ्रमित हो जाते हैं कि सत्य है अथवा नहीं (कि प्रिय उनके समक्ष है या नहीं)।—

“चेटक रूप—रसीले सुजान! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।

कौंध मैं चौंध भरे चख हाय! कहा कहाँ हेरनि ऐसैं हिराई।

बातैं बिलाय गई रसना पै हियो उमग्यौ कहि एकौ न आई।

साँच कि संभ्रम हौ घनआनंद सोचनि ही मति जाति समाई।”<sup>53</sup>

संयोग के साथ-साथ घनानंद के काव्य में संभोग के भी दर्शन होते हैं। उनके जीवन में संयोग के क्षण बहुत ही कम आये थे, अपनी प्रिया सुजान के साथ रहने का समय बहुत कम मिला था। मिलन के क्षणों में सुजान के मुख सौन्दर्य का अधिक बढ़ जाना, मद में मस्त होना, प्रियतम (घनानंद) को देखना और अपनी चितवन के द्वारा प्रेम प्रदर्शित कर वह घनानंद के हृदय को सींच डालती है—

“रति—सुख—स्वेद ओप्यौ आनन बिलोकि प्यारो,

प्राननि सिहाय मोह मादिक महा छकै।

लाजनि लसौहीं चितवनि चाहि जान प्यारी

सींचति अनंदघन हाँसी सौं भरीन कै।”<sup>54</sup>

घनानंद निःसंकोच रूप से सब कुछ कह देते हैं क्योंकि वे सुजान के प्रति अपने भावों को छिपाना नहीं चाहते थे। घनानंद के संभोग की मुख्य विशेषता यह रही है कि उसमें मांसलता होते हुए भी अनुभूति की प्रधानता है। संभोग के क्षण अल्पमात्रा में प्राप्त होने के बावजूद भी उन्होंने मिलन के भावों को व्यक्त किया है। उनके संभोग वर्णन में विलास तो अवश्य है परन्तु दृष्टि विलासी परक नहीं। मांसल सौन्दर्य का यह चित्र संयोग के दिनों की स्मृति है, पर विरह में जब यही स्मृति मन में उभरती है, तो यह उतने ही गहरे दुख की सृष्टि करती है, जितनी तृप्ति उसे संयोग में मिली थी—

“रस—आरस भोय उठी कछु सोय लगी लसैँ पीक—पगी पलकैँ  
अँगराति जम्हाति लजाति लखैँ अंग अंग अनंग दिपैँ झलकैँ।  
अघरानि मैँ आधियैँ बात धरैँ लड़कानि की आनि परैँ छलकैँ।”<sup>55</sup>

घनानंद का प्रेम अद्भुत है, सुजान के साथ मिलन व सुख के अपार आनंद का उपभोग करने के बावजूद भी उनका मन रंक के समान दिखाई देता है—

“पौढ़े घनआनंद सुजान प्यारी परजंक,  
धरे धन अंक तरु मन रंक—गति है।”<sup>56</sup>

घनानंद के काव्य में अश्लीलता और मांसलता का समावेश न होने के दो कारण रहे हैं—एक तो संयोग में भी विरह का अनुभव करना, दूसरा प्रेम का लौकिक से अलौकिक की ओर परिवर्तित होना। घनानंद के जीवन में संयोग सुख के क्षणों में भी वियोग की आशंका के कारण अतृप्ति ही बनी रही। उनके शृंगार वर्णन में विलासी भावों के स्थान पर विरह की व्याकुलता है। उन्होंने “शृंगार रस की विश्वपरक भाव भूमि को अपने हृदय की सच्ची टीस से अभिमण्डित किया है।”<sup>57</sup>

घनानंद के काव्य का शृंगार वर्णन उच्चकोटि का है। उनके शृंगार वर्णन में प्रेम की तल्लीनता, रूप सौन्दर्य का वर्णन, मिलने की अनुभूति और मिलन के बाद के सभी वर्णन स्वानुभूति प्रेरित हैं, उनमें आन्तरिकता की प्रधानता है। घनानंद के संयोग शृंगार में जितनी अधिक मार्मिक और गहन अनुभूति है, उतनी ही उनकी अभिव्यक्ति सूक्ष्म और अनूठी है। अतः उनका संयोग शृंगार अत्यन्त व्यापक है।

### 3.3 प्रेम : वियोग

शृंगार के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। संयोग में नायक—नायिका के मिलन, रूप—वर्णन, नख—शिख वर्णन और प्रेमी व प्रिय की चेष्टाओं आदि का वर्णन किया जाता है और वियोग में प्रेमी के प्रिय से अलगाव के कारण विरह की पीड़ा को भोगने और विरह में तड़पने का वर्णन होता है। प्रेम की जितनी अधिक चरम अभिव्यक्ति वियोग में होती है, उतनी संयोग में नहीं। रमाशंकर जी वियोग की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं—“वस्तुतः प्रेम की मधुर धारा का निरंतर प्रवाहमान वियोग द्वारा ही सम्भव है।”<sup>58</sup> संयोग शृंगार में स्थूलता, बाह्यता तथा शारीरिक आकर्षण का प्राधान्य रहता है, शारीरिक तृप्ति उसका लक्ष्य होता है, परन्तु वियोग में आन्तरिकता की प्रधानता के साथ तड़पन व बेचैनी देखी जाती है। अतः वियोग को संयोग से श्रेष्ठ माना गया है। “वियोग शृंगार अपनी व्यापकता और प्रभावात्मकता के कारण ही प्रेम रस का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है।”<sup>59</sup>

सामान्यतः वियोग की दशा में ही प्रेमी और प्रेमिका के प्रेम में निखार आता है। विरह में प्रेम रंग लाता है, विरह प्रेम की कसौटी है, जिस पर कसकर ही प्रेम का रूप कुंदन की तरह निखर कर सामने आता है। जिस प्रकार स्वर्ण, अग्नि में तपकर कांतिवान बनता है, उसका उज्ज्वल रूप उभर कर आता है, उसी प्रकार प्रेम भी विरह की आग में तपकर शुद्ध, निर्मल और कांतिवान हो जाता है उसकी कलुषता खत्म हो जाती है। अतः शृंगार रस का पूर्ण परिपाक वियोगावस्था में ही होता है। वियोग की आन्तरिक दशाओं में प्रेम की गम्भीरता का आभास होता है। संयोग में प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे के निकट रहते हैं, इसलिए प्रेम में स्थिरता बनी रहती है, किन्तु वियोग में प्रेमी—प्रेमिका दूर होते हैं इसलिए बेचैनी व तड़पन होती है। “वियोग में शरीर प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने नहीं रहता इसीलिए हमारी प्रवृत्ति बहिर्मुखी के स्थान पर अन्तर्मुखी हो जाती है। हमारा दृष्टिकोण भोगपरक न रहकर अनुभूतिपरक बन जाता है।”<sup>60</sup>

अनुभूति के द्वारा ही रीतिमुक्त कवियों ने विरह की पीड़ा का अनुभव किया है क्योंकि वियोगावस्था का प्रेम अधिक तीव्र होता है। वियोगावस्था की विशेषता यह है कि इस अवस्था में प्रेमी और प्रिय का मानसिक मिलन तो रहता है, लेकिन प्रत्यक्ष मिलन की आकांक्षा बनी रहती है। मिलन की इच्छा जैसे—जैसे तीव्र होती है, वैसे ही वैसे प्रेम की गहराई बढ़ती जाती है। वियोग की स्थिति में वियोगी की भावनायें

उदात्त रूप धारण करती जाती हैं, जो प्रेमी को प्रेम की उच्च भावभूमि पर ले जाती हैं। वास्तव में प्रेमी प्रेमिका के अलग होने पर ही प्रेम के सच्चे स्वरूप की परख होती है। डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी का कहना है—“विरह वह नौका है, जिस पर बैठकर प्रेम-सागर में उठती हुई लहरों में झूला झूलते हुए प्रेम पयोधि का पूर्ण दर्शन करते हैं।”<sup>61</sup>

शृंगार की चरम अभिव्यक्ति संयोग की अपेक्षा वियोग में ही सम्भव है। वियोग में प्रेम का परिष्कृत रूप परिलक्षित होता है। संयोग में काम वासना की अतिशयता होती है, वियोग में यह वासनात्मक गंध दूर हो जाती है। वियोग के क्षणों में ही प्रेम पुष्ट होता है। इन्हीं क्षणों में मिलन की बेचैनी और तड़पन पैदा होती है। रघुनाथ जी ने इस सन्दर्भ में कहा है—“प्रेम की लता ही ऐसी है, जो विरह की अग्नि से हरी-भरी रहती है।”<sup>62</sup>

हिन्दी साहित्य के रीतिमुक्त कवियों के प्रेम में विरह का प्राधान्य रहा है। वियोग का स्वरूप तो संस्कृत और हिन्दी दोनों साहित्य के कवियों में भी देखा गया है, जिनमें विशेष रूप से बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति और सूर, तुलसी, मीरा, जायसी और कबीर आदि रहे हैं। प्रेम विरह में ही अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त करता है। अतः विरह में ही इन कवियों को चिर आनंद की प्राप्ति हुई है। रीतिमुक्त कवियों ने विरह की तड़पन को झेला है, इसलिए इनके काव्य में जो प्रभाव की तीव्रता है, वह औरों में नहीं।

मानव जीवन का आनंद तृप्ति में नहीं, तृषा में है, प्रेम में जितनी तृषातुरता होगी, वह उतना ही दिव्य और परिपक्व होगा। प्रेम का यही आदर्श रूप कवि तुलसीदास के जीवन में भी दिखाई देता है। उनका मानना था कि चातक जो वर्ष भर में सिर्फ एक बार स्वांति नक्षत्र का एक बूंद पीकर तृप्त होता है, फिर भी उसे और पीने की इच्छा में उसकी अतृप्ति ही झलकती है। क्योंकि प्रेम की तृषा का बढ़ना ही भला, तृप्ति पाकर तृषा के कम होने से प्रेमी का मान कम होता है—

“चातक तुलसी के मते, स्वांतिहु पियै न पानि।

प्रेमतृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि।”<sup>63</sup>

रीतिमुक्त कवि घनानंद वस्तुतः विरह के ही कवि हैं। विरह ही उनका जीवन है और वही चिरतत्त्व है। उन्होंने प्रेम में संयोग की अपेक्षा वियोग का अत्यधिक



तल्लीनता के साथ चित्रण किया है, आचार्य शुक्ल का कहना है—“यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर इनकी दृष्टि वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर अधिक रही है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद अधिक हैं। वियोग वर्णन अधिकतर अंतर्वृत्तिनिरूपक हैं, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानंद ने बिहारी की तरह विरहताप को बाहरी माप से नहीं मापा है—यह तो उनकी ‘मौनमधि’ पुकार है।”<sup>64</sup> घनानंद की व्यथा मौन है, ‘मूक’ में ही इनकी पीड़ा अभिव्यक्त हुई है, बार-बार वह अपनी व्यथा से घुटते हुए व्यथित हुए हैं—

“त्यौँ पुकार मधि—मौन, कृपा—कान मधि—नैन ज्यौँ।”<sup>65</sup>

विरह घनानंद की एकमात्र साधना थी। जायसी, सूर, मीरा आदि महाकवियों के विरह के समान घनानंद के विरह में बड़ी गहराई है। “समूचे मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में विरहदशा के चार ही चित्रकार उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर सके हैं—गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन करते हुए सूरदास, नागमती का विरह निवेदन करने वाले जायसी, अपने विरह को मुखर करती हुई मीरा और सुजान—विरही घनानंद।”<sup>66</sup>

घनानंद कृत ‘सुजानहित’ में वियोगी हृदय की पुकार है, वियोगी हृदय की वेदना ने उनके प्रेम को अमर कर दिया है। घनानंद की विरहाकुलता उनके सच्चे प्रेम की कसौटी है। अपनी विरह व्यथा को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि सुजान का स्मरण उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर देता है। उनकी आँखों में विरह रूपी ऐसा सूल लगा है, जिसकी चुभन सुजान के दर्शन देने पर ही कम हो सकती है क्योंकि सुजान की स्मृति में न तो उनसे सोते ही बनता है और न जागते ही। अपने मानस पटल पर चित्रित सुजान के अनुपम सौन्दर्य को वे विस्मृत नहीं कर पाते हैं। वे वियोग की उस स्थिति पर पहुँच गये हैं जहाँ स्वयं की सुध—बुध खत्म हो गयी है—

“सोएँ न सोयबो, जागँ न जाग, अनोखियै लाग सु आँखिन लागी।

देखत फूल, पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही चित जागी।

चेटक—जान—सजीवनी—मूरति रूप—अनूप महारस—पागी।

कौन बियोग—दसा घनानंद, मो मति—संग रहै अति खागी।”<sup>67</sup>

घनानंद के वियोग में आन्तरिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। उनका प्रेम निजी जीवन से प्रेरित है, अतः उन्होंने आप बीती विरह व्यथा का वर्णन किया है। सच्चा प्रेमी अपने हृदय में हुई विरह-पीड़ा की जितनी सच्ची अभिव्यक्ति कर सकता है, उतना कोई पराई पीड़ा की कैसे कर सकता है? घनानंद ने अपनी विरह वेदना को स्वयं महसूस किया और उसी को वाणी प्रदान की है। “प्रिय के निकट रहने पर प्रतिदिन आनंद की उदभावना होती है, किन्तु नवनीत की सी स्निग्धता शुष्क होने लगती है। जीवन की इसी अवस्था एवं भावों की कोमलता पर आच्छादित इसी आवरण को दूर करने के लिए विरह का आश्रय लिया जाता है।”<sup>68</sup> घनानंद के जीवन का कोई क्षण ऐसा न था, जिसमें वे बेचैन न होते हों, उन्हें रात-दिन चैन न था—

‘रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैये, भाग

आपने ही ऐसे, दोष काहि कौँ लगाइयै।’<sup>69</sup>

प्रिय की मनमोहिनी मूर्ति रात-दिन घनानंद को अपने सामने ही दिखाई देती है—‘निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी छबि रंग भरी मुरि चाहनि की।’ यह छवि मन की आँखों के सामने तो निरंतर उपस्थित रहती है परन्तु प्रत्यक्ष रूप से घनानंद, सुजान की एक झलक को भी तरस जाते हैं—‘घनानंद जीवन मूल सुजान की कौंधनि हू न कहूँ दरसै।’ घनानंद के वियोग वर्णन में प्रेम की परिपक्वता का एक कारण यह भी था कि घनानंद को अपने निजी जीवन में प्रेम में असफलता मिली थी, जिसके कारण उन्होंने अपने जीवन में विरह अधिक झेला था। इनका मानना था कि जिसने विरह, व्यथा का अनुभव ही नहीं किया, वह प्रेम पंथ का सच्चा पथिक कैसे हो सकता है? सच्चे प्रेमियों में विरह, वेदना जितनी तीव्र होती है, उनका प्रेम उतना ही गहरा, पवित्र और परिपक्व होता है। विरह की तपन को जिसने जितना सहा है उसका प्रेम उतना ही अमर हुआ है। घनानंद के प्रेम की उत्कृष्टता का कारण विरह ही है। वे वियोग के बिना संयोग को अधूरा मानते हैं—‘वियोग शृंगार के बिना न तो संयोग का पूर्ण रूप से आस्वाद प्राप्त होता है और न ही उसके मूल्यों का अंकन किया जा सकता है। रति की आध्यात्मिक परिणति वियोग शृंगार द्वारा ही सम्भव है।’<sup>70</sup>

विरह ही प्रेम की जाग्रत अवस्था है, विरह व्यथा इनके जीवन में इस तरह घुल-मिल गयी थी कि न तो वह इन्हें छोड़ती थी और न ही घनानंद उसे छोड़कर रह सकते थे। विरह से इनको लगाव हो गया था, इन्हें प्रेम की पीड़ा और व्यथा अत्यन्त मधुर लगने लगी थी। उनकी विरह वेदना संयोग में भी पीछा नहीं छोड़ती थी—

“यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यों हूँ बिछोहतु है।”<sup>71</sup>

घनानंद का विरह अपनी निरंतरता के कारण जीवन का स्थायी तत्त्व बन गया था। सुख की कामना में ये जिधर चलते हैं, उधर चाहे सुख मिले न मिले, दुख अवश्य मिलता है। रीतिमुक्त कवि बोधा भी घनानंद की भाँति सुख की खोज में जिस दिशा में भी जाते हैं, उन्हें दुख ही प्राप्त होता है—

“दिसि जेहि चल्यो सुख चित्त चाय। तित दरद सनेही मिलत आय।”<sup>72</sup>

इसी प्रकार घनानंद का संयोग वर्णन विरह वेदना से युक्त था। वह सुजान की स्मृति को किसी भी दशा में विस्मृत नहीं करना चाहते थे। उनके संयोग काल की स्मृतियाँ उनके मानस में उभर कर उनके वियोग को और भी अधिक तीव्र कर देती थीं। सुजान के वियोग में घनानंद सारा सुख भूल गये थे। वह वियोगपूर्ण जीवन को ही श्रेष्ठ मानने लगे थे। उनके जीवन का आधार सुजान का दर्शन करना रहा है, जो सुजान पहले उनसे प्रीति रखती थी, पर बाद में नहीं। इसी कारण घनानंद अपने प्रिय से मिलन की याचना करते रहे, उनकी दृष्टि सुजान के अतिरिक्त कहीं और नहीं जाती—

‘भीत सुजान अनीति करौ जिन हाहा न हूजियै मोहि अमोही।

दीठि कौँ और कहूँ नहिँ ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही।

एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान—बटोही।

हौ घनआनँद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही।”<sup>73</sup>

रीतिमुक्त कवि ठाकुर के प्रेम में भी घनानंद के सदृश्य ही प्रेम प्राप्ति की प्यास देखी जाती है। अपनी प्रिय के दर्शन न होने पर भी वे विचलित नहीं होते हैं, बल्कि वे अपने प्रेम को भाव-विभोर होकर निभाते हैं। प्रिय की निष्पूरता का उन्हें आभास ही नहीं होता और वे रात-दिन उसी की गली के चक्कर लगाते रहते हैं। वे अपने प्रेम पथ से हटते नहीं, बल्कि दृढ़ता के साथ टिके रहते हैं—

“गति मेरी यही नितबासर है चित तेरी गलीन के गाहने है।  
चित कीन्हो कठोर कहा इतनो अरी तोहि नहीं यह चाहने है।  
कहि ठाकुर नेक नहीं दरसी कपटीन कोँ काह सराहने है।  
मन भावै सुजान सोई करियौ हमै नेह को नातो निबाहने है।”<sup>74</sup>

प्रेम की यह दृढ़ता ठाकुर में भी थी। ठाकुर की प्रेयसी सुनारिन उन्हें दर्शन दे या न दे, पर वे तो अपना प्रेम निभाते ही रहे। प्रेम की इसी दशा से घनानंद भी रूबरू हुए। घनानंद के जीवन का मूल तत्त्व सुजान के प्रति प्रेम ही रहा। वे जीवनभर अपनी प्रेमिका के प्रेम रूपी सागर में डूबे रहे, उसी प्रेम के सागर में निरंतर डुबकियाँ लगाते रहे और यही प्रेम उनके जीवन का मूल उत्स बन गया। प्रेम का यही विरही स्वरूप उन्हें जीवन भर सालता रहा और ये उसी विरह में तड़पते रहे। जीवन का अभिन्न अंग बन जाने के कारण ये विरह से दूर न हो सके। प्रेम के अटूट विश्वास ने घनानंद को कष्ट सहने का बल प्रदान किया था। सच तो यह है कि स्मृति विरह की जननी है इसीलिए उन्होंने सुजान की स्मृति में विरह को झेला। प्रेम की सफलता तो वियोग में ही है। जो व्यक्ति प्रेम की वियोगाग्नि में जितना अधिक जलेगा, उसका प्रेम उतना ही पवित्र व उज्ज्वल होता जाएगा। वे निःश्वास अन्तर की विरहाग्नि में तपते रहे। अपनी प्राणप्रिया सुजान के दर्शन के अभाव में उन्हें चारों ओर अंधकार ही दिखाई दिया। जिस प्रकार अमावस की तिथि में चंद्रमा अपने ही प्रकाश से प्रदीप्त नहीं होता चारों ओर अंधकार फैल जाता है, उसी प्रकार विरह रूपी अमावस का काला अंधकार घनानंद के जीवन में भी फैल गया—

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।  
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौ हूँ कहूँ सु धरै नहीं थ्यावस  
नैन उधारि दियेँ बरसैँ घनआनंद छाई अनोखियै पावस।  
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरैँ सदाई अमावस।”<sup>75</sup>

विरह घनानंद के अन्तःकरण से निकला हुआ आवेग है, उनके अनुसार जिसने विरह का अनुभव नहीं किया, वह सच्चा प्रेम न तो कर संकता है और न ही प्रेम के सच्चे स्वरूप को समझ सकता है। उनकी विरहानुभूति स्वानुभूति का परिणाम

है। घनानंद के विरह की उक्तियाँ इतनी मार्मिक बन पड़ी हैं कि वह अन्तःकरण का स्पर्श करने लगती हैं। घनानंद के विरह में आत्मोत्सर्ग की प्रधानता है। वह स्वयं तो सारे कष्टों को झेलने को तैयार रहते हैं, परन्तु अपने प्रियतम को प्रसन्न देखना चाहते हैं, चाहे इनका प्रिय इन्हें भूल ही क्यों न जाये? प्रिय इन्हें प्रेम करे या न करे, इसकी इन्हें परवाह नहीं थी। इनका प्रेम अत्यन्त दिव्य है, जिसमें प्रेमी प्रिय के अतिरिक्त कुछ और नहीं चाहता। घनानंद का हृदय प्रिय के प्रेम के लिए निरंतर तड़पा है और उसी तड़पन में प्रिय के आनंद की कामना बनी रही। सुजान के द्वारा विस्मृत कर दिये जाने पर भी वे सुजान की स्मृति में ही जीवित रहे उसके द्वारा उपेक्षित किये जाने पर भी वे उलाहना नहीं देते—

“इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसेँ उराहनो दीजियै जू।

अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।

घनआनँद जीवन—प्राण सुजान! तिहारियै बातनि जीजियै जू।

नित नीके रहौ तुम्हँ चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू।”<sup>76</sup>

प्रिय के द्वारा निष्ठुरतापूर्वक मना कर दिये जाने पर भी घनानंद ने प्रेम करना नहीं छोड़ा, क्योंकि विरह इनको शिरोधार्य था। यह संसार का नियम ही है कि महत् सुख प्राप्त करने के लिए महत् दुख झेलना ही पड़ता है, जैसा कि रीतिमुक्त कवि बोधा ने कहा है—

“चहियै सुख तौ सहियै दुख कोँ दृगबारि पयोनिधि में बहियै।”<sup>77</sup>

घनानंद अपने निर्मोही प्रिय के गुणों का ही गान करते रहे। हनुमंत रणखांब जी का कथन है—“सुजान के निर्मोही हो जाने पर भी हृदय में बना प्रेम प्रासाद ढहता नहीं वरन् घनानंद के आँसुओं से पटकर और पक्का हो जाता है, जो तोड़ने से नहीं टूट सकता।”<sup>78</sup> घनानंद ने उसी प्रेम को पवित्र माना है, जो विरह की ज्वाला में तप जाता है। इसलिए इनके प्रेम की समानता मीन और पतंग से नहीं की जा सकती। घनानंद इनके प्रेम को तुच्छ मानते हैं, जो प्रेमी विछोह में अपना प्राण त्याग देता है, वह कायर है। अतः “घनानंद का विरह उदात्त है। संसार के प्रसिद्ध विरही मीन और पतंग तो मर कर विरह से त्राण पा लेते हैं पर घनानंद तो जीवित रहकर पीड़ित रहते हैं और वियोग की लपटों को झेलते रहते हैं।”<sup>79</sup> घनानंद मीन

और पतंगे में साहस और सहिष्णुता का अभाव मानते हैं, जो एक सच्चे प्रेमी में अवश्य होने चाहिए। एक सच्चा प्रेमी निरंतर रूप से विरह को झेलता रहता है और उसी विरह में ही कष्ट सहता रहता है, यही सच्चे प्रेमी का कर्तव्य है—

“हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।  
नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास द्वै कायर त्यागत प्रानै।  
प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़, मीत के पानि परे कोँ प्रमानै।  
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।”<sup>80</sup>

मृत्यु का अर्थ है—दुखों की समाप्ति होना, मृत होने पर सारे कष्ट समाप्त हो जाते हैं। मीन और पतंग बिछड़ने की व्यथा न सह पाने के कारण मृत्यु का वरण कर लेते हैं। रीतिमुक्त कवि घनानंद का प्रेम इनके प्रेम से कहीं बढ़कर है क्योंकि वे साहसपूर्वक प्रेम पथ पर चलते हैं, जीवित रहते हैं, प्रेम की पीड़ा को सहन करते हैं, जिससे उनका रोम-रोम त्रस्त हो उठा है—

“आसा—गुन बाँधि कै भरोसो—सिल धरि छाती,  
पूरे पन—सिंधु मैं न बूड़त सकायहाँ।  
दीह दुख—दव हिय जारि उर अंतर,  
निरंतर यौँ रोम रोम त्रासनि तचायहाँ।  
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,  
साहस सम्हारि सिर आरे लौँ चलायहाँ।  
ऐसँ घनआनँद गड़ी है टेक मन माहिँ,  
एरे निरदई तोहि दया उपजायहाँ।”<sup>81</sup>

सुजान के विरह में घनानंद ने घोर पीड़ा झेली, पर वे अपने पथ से विचलित नहीं हुए। विरह में प्रेमी को हर क्षण प्रिय की छवि ही दिखाई देती है। घनानंद की विरह में यह दशा हो गई है कि सुजान के वियोग में बुद्धि खो गई है, स्मृति सो गई है, कुछ समझ में नहीं आता, कभी वह रोते हैं, कभी हंसते हैं, कभी मौन हो जाते हैं, तो कभी चकित होकर इधर-उधर देखने लगते हैं, शरीर में विरह की अग्नि निरन्तर रूप से जली हुई है—

“खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है।

मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै तैं न दाह दग्यौ है।<sup>82</sup>

वियोग की इसी चरम साधना द्वारा घनानंद ने ईश्वरत्व प्राप्ति की कामना की। विरह की असीम वेदना ने घनानंद के प्रेम को उस स्तर पर पहुँचा दिया, जहाँ लौकिकता के स्थान पर अलौकिकता का समावेश होने लगा और परमात्मा की सत्ता का आभास होने लगा—

“अंतर मैं बासी पै प्रबासी को सो अंतर है,

मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।

लोचननि तारे ह्वै सुझावौ सब सूझै नाहिँ,

बूझी न परति, ऐसैँ सोचनि कहा दहौ।

हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यातें,

आनंद के घन छाये छाय उघरे रहौ।

मूरति मया की हाहा सूरति दिखैये नेकु,

हमैँ खोय या बिधि हो कौन धौँ लहा लहौ।”<sup>83</sup>

घनानंद का प्रिय (ईश्वर) उनके मन में ही रहता है, फिर भी वह उन्हें प्रवासी सा ही दिखाई देता है। वह अपने प्रिय के दर्शन की आस लगाये रहते हैं, पर दर्शन न होने के कारण चिन्तित भी रहते हैं। उनका प्रिय (ईश्वर) सब कुछ जानता है, पर फिर भी उसे जानना कठिन है। आनंद की वर्षा करने वाला वह (ईश्वर) सर्वत्र व्याप्त है फिर भी घनानंद ईश्वर की उस लुभावनी मूर्ति के दर्शन के आकांक्षी रहते हैं, जो उनके हृदय में ही विद्यमान है। असीम विरह उन्हें उस ऊँचे शिखर पर ले जाता है, जहाँ प्रिय और परमेश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता। वियोग की यही चरम अवस्था है, जहाँ मधुर आनंद की प्राप्ति होती है। भगवत्प्रेम ही मधुर आनंद है, जो विरह के अभाव में पूर्ण नहीं होता है। प्रेम में विरह और विरह के बिना प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं है। जहाँ प्रेम है, वहाँ विरह है, जहाँ विरह है, वहाँ प्रेम है। राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी जी का कहना है—“बिना प्रेम के विरह की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, इसी तरह बिना विरह के प्रेम का अस्तित्व नहीं है। जहाँ प्रेम है, वहाँ विरह है। प्रेम की अग्नि को विरह पवन ही प्रज्वलित करता है। प्रेम के अंकुर को विरह जल ही पल्लवित करता है।”<sup>84</sup> वास्तव में विरह प्रेम की पराकष्टा है, प्रेमी का सुख है,

दुख है, पीड़ा है, कसक है और वही वेदना है। विरह की ज्वाला में तपकर घनानंद के मन की वृत्तियाँ उदात्त हो गयी थीं, ये ईश्वरोन्मुख हो गये थे। मन की वासनायें, कलुषतायें नष्ट हो गयी थीं। अतः “रीतिकालीन स्वच्छन्द कवि (घनानंद) में प्रेमी प्रेमिका का मिलन न होने से प्रेम में उदात्ता आ गयी।”<sup>85</sup> घनानंद का विरह वर्णन एक नयी दिशा का सूचक रहा है।

सुजान का विरह घनानंद के लिए वरदान है, उन्होंने अपनी विरह, व्याकुलता का निरूपण कर सुजान प्रेम को अमर कर दिया। विरह की पीड़ा निरंतर झेलने के कारण ये विरह के पीड़ित कवि कहलाये। घनानंद का विरह विविध प्रकार की मनः स्थितियों को लेकर सामने आया है। शाही दरबार का गौरवपूर्ण पद त्यागकर, सुजान से बिछुड़कर घनानंद के हृदय में अथाह दुख उमड़ पड़ा था, जो उनके लिए अत्यन्त असहनीय रहा। विरह कभी प्रिय की स्मृति जगाती रही, कभी उसके रूप की रीझ, प्रिय के प्रति निष्ठा भाव जगाती रही, तो कभी प्रिय की कठोरता, प्रिय से दया, दर्शन की याचना करती रही। घनानंद के ये सभी भाव एक ही संवेदना अर्थात् प्रेम से प्रसूत हैं, जो विविध रूपों में प्रस्फुटित हुए हैं। उनके काव्य में विरह विविध रूपों में अभिव्यक्त हुआ जो इन्हें साहित्य में सर्वश्रेष्ठ पद पर प्रतिष्ठित करता है।

### 3.4 प्रेम : विषमता

रीतिमुक्त कवियों के काव्य में प्रेम विषमता का चित्रण मुख्य रूप से है। वस्तुतः प्रेम के दो रूप हैं—सम और विषम। जहाँ प्रेम के उभय पक्षों में समान रूप से अनुराग होता है, वहाँ प्रेम सम होता है और जहाँ एक ओर से प्रणय निवेदन हो, दूसरी ओर से प्रेम के प्रति उदासीनता हो, वह एकतरफा अनुरक्तिमय प्रेम, विषम प्रेम कहलाता है। प्रेम की इस विषम दशा के विषय में ओमप्रकाश जी ने कहा है—“प्रेम एक विषम दशा है, जो मिटना चाहता है उसके लिए प्रेम के समान दूसरी वेदी नहीं; और जो लाभ—हानि का हिसाब रखता है, उसे इस मार्ग पर भूलकर भी कदम नहीं रखना चाहिए, इसलिए प्रेमी मरकर अमर होता है, सर्वस्व खोकर जीवन का फल प्राप्त करता है।”<sup>86</sup> प्रेम का विषम रूप बड़ा ही विचित्र है, जिसमें प्रेमी प्रिय को इतना प्रेम करता है कि सारी दुनिया को भूलकर उसी की स्मृति में डूबा रहना चाहता है, पर प्रिय को उसकी इस भावना का बोध ही नहीं होता है। प्रेम के विषम



रूप से तात्पर्य यह है कि प्रेमी की ओर से प्रेम प्रकट किया जाये और प्रिय की ओर से उसका कोई उत्तर न दिया जाये। प्रेम की यही विषमता घनानंद, बोधा, आलम और ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवियों में देखने को मिलती है।

रीतिमुक्त कवि स्वभाव से प्रेमी थे। ये जीवन भर जिससे प्रेम करते रहे, वे न तो इनके निकट ही आ सकीं और न ही ये कभी उन्हें पा सके। प्रिय की स्मृति में काव्य सृजन कर इन्होंने अपने प्रिय को प्रमुखता प्रदान की। डॉ० बच्चन सिंह का कहना है—“इनकी कविता की प्रेरणा का केंद्र वे प्रेमिकायें हैं, जो इनके जीवन में कभी नहीं आ सकीं। इस व्यवधान ने ही इन्हें वह प्रेरणा दी जिससे उनके अन्तर्मन की अभिलाषाएँ, चिंताएँ आदि कविता की वाणी में परिणत हो सकीं। प्रेम की एकांतिक उपासना इनके जीवन का साध्य एवं साधन दोनों रही। प्रेमोन्माद में डूबे इन कवियों को इसकी परवाह नहीं थी कि इनका प्रिय इन्हें प्रेम ही करे।”<sup>87</sup> प्रेम में यही विषमता इनके जीवन में पायी गयी। घनानंद जीवन भर सुजान से एकनिष्ठ होकर प्रेम करते रहे, परन्तु वे (घनानंद) इन्हें (सुजान को) प्राप्त न कर सके। इनके प्रेम में प्रिय के प्रति जो आकुलता व पीड़ा देखी गई वह अन्यत्र नहीं। प्रेमी प्रिय को जितना चाहता है, जितना तड़पता है, उतना प्रिय प्रेमी के लिए नहीं। प्रेमी प्रिय से एकनिष्ठ प्रेम करता है, परन्तु प्रिय के प्रेम में प्रेमी के लिए निष्ठुरता और उदासीनता ही मिलती है। जहाँ एक ओर प्रिय के प्रति तन्मयता है तो दूसरी ओर प्रेमी के प्रति उपेक्षा का भाव। यही विषमता घनानंद के हृदय को व्यथित कर देती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रेम विषमता ही इनके काव्य सृजन का आधार बनी। प्रेम में प्रिय की ओर से उदासीनता मिलने पर भी इनके प्रेम में कभी कमी नहीं आयी, ये प्रेम पथ से विचलित नहीं हुए, बल्कि अडिग होकर विश्वास के साथ अपने प्रेम पथ पर अग्रसर होते रहे। घनानंद जैसे प्रेमी को इस बात की परवाह नहीं थी, कि इनका प्रिय इन्हें प्रेम ही करे। उनके प्रेम में बदले की भावना का कोई स्थान नहीं था। डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा ने इस विषय पर लिखा है—“वास्तव में प्रेम की यही उच्चता है, जिसमें बदले की भावना का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने तो सच्चा प्रेम, त्याग और बलिदान में माना है भोग और उपलब्धि में नहीं।”<sup>88</sup> घनानंद का प्रेम शुद्ध व सच्चा था। सच्चे प्रेम में केवल प्रदान का स्थान होता है, आदान का नहीं। प्रिय के न चाहने पर भी वे उससे (सुजान) प्रेम करते ही रहे—

“चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,  
 प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है।  
 मोहिं तुम एक, तुम्हें मो सम अनेक आहिं,  
 कहा कछू चंदहिं चकोरन की कमी है।”<sup>89</sup>

विषम प्रीति की रीति घनानंद के रोम-रोम में बसी है क्योंकि घनानंद ने केवल सुजान से ही प्रेम किया, परन्तु सुजान ने नहीं। यही कारण रहा कि घनानंद को अपने जीवन में विषमताओं का सामना करना पड़ा। प्रेम की यही विषमता उनके काव्य में बड़े उत्कर्ष रूप में दिखाई देती है। इसमें प्रेमी की लघुता और प्रिय की महत्ता का प्रतिपादन है। प्रेमी प्रिय के समक्ष अत्यन्त दीन-हीन है, प्रिय का निर्मोही स्वभाव होने पर भी घनानंद का लक्ष्य केवल प्रिय की प्राप्ति ही रहा है। प्रिय के इस स्वभाव के लिए ये उसको दोषी नहीं ठहराते, अपितु स्वयं को दोष देते हैं, जिससे इनकी उदात्त मनोभावना का परिचय मिलता है। घनानंद के प्रेम पर सदैव वैषम्य का साम्राज्य बना रहा। विरोधी प्रवृत्तियाँ तो सुजान के व्यक्तित्व में दिखलाई देती हैं, सुजान प्रेम भी करती है और मना भी करती है। प्रेम का यह बड़ा ही विचित्र रूप है। जहाँ प्रेमी प्रिय की अनुभूति में सब कुछ विस्मृत कर देता है, वहीं प्रिय को इस भावना का बोध ही नहीं होता। घनानंद ने सुजान के प्रेम में वशीभूत होकर सारा जग भुला दिया, परन्तु वह जिससे प्रेम करते रहे, वह उनसे उपेक्षा का भाव रखती रही। ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रेम करके भूल जाना सुजान का स्वभाव रहा है, जीवन के बीच मंझधार में छोड़ देना भी उसका स्वभाव है। वह स्नेह का बंधन हंस कर बांधती रही और फिर हंस कर तोड़ती भी रही। वह प्रेम और नफरत दोनों करती रही। घनानंद सुजान से अनन्य प्रेम करते हैं, अतः उन्हें सुजान का यह स्वभाव अच्छा लगा। यही कारण है कि घनानंद ने सुजान से राज्य छोड़ते समय साथ चलने को कहा, परन्तु उसने (सुजान) मना कर दिया। घनानंद को यही दुख सताता रहा कि सुजान ने उनको भुला दिया है, उनका सुख चैन छीन लिया है। सुजान ने घनानंद की इस विरह व्यथा को समझा ही नहीं क्योंकि उसने कभी दुख सहा ही नहीं। जिसे दुख भोगने की आदत नहीं, वह दुख कैसे समझ सकता है? सुजान का घनानंद के प्रति ऐसा व्यवहार यह संकेत देता है कि सुजान ने घनानंद के साथ विश्वासघात ही किया था—

“परतीति दै कीनी अनीति महा, विष दीनौ दिखाय मिठास—डरी।”<sup>90</sup>

प्रेम विषमता का जितना सजीव और गंभीर चित्रण घनानंद ने किया है, उतना कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। घनानंद के काव्य का वैशिष्ट्य उनका विषम प्रेम है। “वैषम्य ही घनानंद के प्रेम में निखार और रंग लाता है, विविध भावना—भेदों का उद्घाटन करता है और चाह में भीगे हृदय का निदर्शन करता है।”<sup>91</sup> घनानंद एकनिष्ठ प्रेमी कवि थे। अपनी प्रेमिका सुजान से अत्यधिक प्रेम करने के कारण, वे निरंतर प्रेम पीड़ा को सहते रहे। प्रियतमा के द्वारा उपेक्षित होने पर भी वे अन्य की ओर आकर्षित न हुए। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के द्वारा घनानंद को दरबार से निष्कासित किये जाने पर सुजान दरबारी सुख का परित्याग नहीं कर सकी, अपने प्रेमी (घनानंद) को तुकरा दिया और उनके साथ नहीं गयी। घनानंद जीवन भर अपने एकपक्षीय प्रेम को साथ लेकर चलते रहे। सुजान के स्वर की अनुपस्थिति अंत तक बनी रही। प्रारम्भ में तो घनानंद का प्रेम सम था क्योंकि प्रेमिका को उनका प्रेम प्रस्ताव स्वीकार्य था, परन्तु बाद में उनका यह सम प्रेम विषम प्रेम में परिवर्तित हो गया। यह प्रेम विषमता उनके निजी जीवन का आधार बन गई। सुजान ने पहले तो घनानंद के हृदय को मीठी—मीठी प्यार भरी बातों से सींचा, उनके हृदय में प्रेम की ज्योति जगाई, फिर उसी हृदय को ठग लिया। परन्तु वही सुजान अब निष्ठुर होकर वियोग की ज्वाला में जलाती है। घनानंद को सुजान के पूर्व व्यवहार से और उससे विश्वासघात की ऐसी आशा न थी। उनका कहना था कि जब हृदय ही तोड़ना था, तो हँस कर क्यों लूट लिया प्रेम करके मन में प्रेम की लहर क्यों पैदा की—

“पहिलें घनआनंद सीँचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार—पगी,

अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास—दगानि दगी।”<sup>92</sup>

×

×

×

मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिले तौ तब,

अब जिय जारत कहौ धौँ कौन न्याय है।

सुनी है कै नार्ही यह प्रकट कहावति जू

काहू कलपायहै सु कैसेँ कल पायहै।”<sup>93</sup>

यदि रीतिमुक्त कवि बोधा और आलम के प्रेम को देखें तो वे सौभाग्यवश संयोगी हो गये थे, जबकि घनानंद के जीवन में ऐसा न हो सका। घनानंद अपने जीवन में जिस छवि पर रीझकर सुख की आस लगाए बैठे रहे, उसी के दीर्घ दुख की आग में उन्हें जलने का कटु अनुभव मिला। उनका यह कहना था कि प्रिय चाहे कितना भी निष्ठुर रहे, वह उसे भली-भांति चाहते ही रहेंगे। सुजान उनके प्रति जरा भी उत्साह प्रकट नहीं करती, फिर भी घनानंद प्रिय के लिए ही तरसते रहे। वह उसी एक नाम के सहारे जीवित रहे, जबकि सुजान विश्वासघात का विष देती रही—

“हम एक तिहारियै टेक धरैँ तुम छैल! अनेकन सौँसरसौ।

हम नाम अधार जिवावत ज्यौ तुम दै बिसवास—बिषै बरसौ।”<sup>94</sup>

घनानंद के जीवन में जहाँ एक ओर समर्पण की भावना है, वहीं दूसरी ओर उपेक्षा का भाव है, एक सहर्ष सोता है, दूसरा सविषाद जागता है, एक का स्वभाव स्मरण का है, तो दूसरे का भूलने का, ‘इत बाँट परी सुधि रावरे भूलनि।’ दोनों के स्वभाव में बड़ा ही अन्तर है, पर फिर भी प्रेमी प्रेम की डगर से दूर नहीं भागता है। प्रेम-वैषम्य उनके जीवन का सारतत्व था और वही उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था। इसी के आधार पर उन्होंने सच्चा प्रेमतत्व प्राप्त किया।

घनानंद की भांति रीतिमुक्त कवि ठाकुर के प्रेम में भी विषमता है। उनका प्रेम भी एकपक्षीय है, वे प्रेम का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं, जिसमें स्वार्थ नहीं है। इसीलिए उनका प्रेम शुद्ध व सात्विक है। कवि ठाकुर इतना अवश्य चाहते हैं कि उनकी प्रिय को बस उनके प्रेम का एहसास मात्र हो जाए। इसी एहसास में ही वे प्रेम की सफलता मानते हैं—

“ठाकुर या मन की परतीत है जौ पै सनेह न मानति ह्वै है।

आवत हैं नित मेरे लए इतनो तो बिसेष कै जानति ह्वै है।”<sup>95</sup>

घनानंद को जीवन भर सुजान का वियोग सताता रहा। उनके (घनानंद) अन्तस में उद्वेग की विषम अग्नि की भयंकर लपटें उठती रहीं, जिसमें हृदय का फूट कर टूक-टूक हो जाना स्वाभाविक था, फिर भी घनानंद जीवित रहे—

“विषम उदेग-आगि लपटैँ अँतर लागैँ,  
कैसँ कहौँ जैसँ कछू तचनि महा तई।  
फूटि फूटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,  
बचिबो अचंभो, मीचौ निदर करै गई।”<sup>96</sup>

घनानंद को प्रिय की स्मृति में इतनी पीड़ा और वियोग मिला, फिर भी वे प्रिय की स्मृति से बाहर निकलने को तैयार नहीं होते। उनका वर्तमान उन्हें अतीत की स्मृति कराता रहता है, प्रिय की स्मृति इन्हें सुखद अनुभूति का एहसास कराती रहती है। संयोग में जहाँ घनानंद के नेत्र सुजान का दर्शन कर आनंदमयी हो उठते थे, वहीं वे अब दुख की ज्वाला में जल उठते हैं—

“तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे,  
घनआनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।”<sup>97</sup>

घनानंद को खेद तो यह था कि जो प्राण, प्रिय के साथ रहकर तुष्ट हो जाया करते थे और प्रेम का निर्वाह किया करते थे, वे अब अकेले ही रह गये हैं। घनानंद को सुजान के साथ वार्तालाप में समय का पता ही न चलता था, परन्तु अब सुजान के बिना एक भी क्षण सुखद अनुभूति नहीं देता। घनानंद का निजी जीवन विरोधों और विषमताओं से भरा हुआ था। यही उनके जीवन की सबसे विषम स्थिति और सबसे गहरी अनुभूति थी। स्वयं विरह में पीड़ित रहने के बावजूद भी प्रिय के बारे में चिन्तित बने रहना उनके जीवन को एक नई दिशा प्रदान करता है। जहाँ उनके प्रिय के लिए चैन रूपी चाँदनी है, वहाँ स्वयं घनानंद के लिए विरह रूपी विषाद—

“मोहिँ दुख-दोष दोखै तोहि तोखै पोखै सुख,  
चिंता मोहिँ चूरि तोहि राखै निधरक है।  
तोहि चैन-चाँदनी मैँ सरसै हरष - सुधा,  
मोहिँ जारै बारै ह्वै बिषाद को अरक है।  
कहूँ घनआनँद घमँड़ि उघरत कहूँ,  
नेह की विषमता सुजान अतरक है।”<sup>98</sup>

प्रेम वैषम्य का यही रूप उनके सम्पूर्ण जीवन को अनुप्राणित किये हुए था। डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा जी का कथन है—“घनानंद स्वच्छन्द काव्यधारा में प्रेम की विषमता के प्रबलतम पोषक हैं।”<sup>99</sup> घनानंद सच्चे प्रेमी थे, वे सही अर्थों में प्रेम के सच्चे स्वरूप को समझते थे। इसी कारण वे प्रेम के उदात्त रूप को प्राप्त कर सके। सुजान की निर्दयता ने इनके प्रेम में परिपक्वता ला दी थी। सुजान के उदासीन होने पर भी घनानंद के मन में सुजान के प्रति गहरी निष्ठा में कमी न आयी। त्याग, बलिदान इनके प्रेम को उदात्त बना देता है। वास्तव में प्रेम विषमता बड़ी असहनीय होती है, परन्तु जो भी प्रेमी विषमता के साथ अपने पथ पर दृढ़ रहता है, वही प्रेम का सच्चा पारखी होता है। घनानंद में प्रेम का यही प्रबल रूप विद्यमान था।

### 3.5 प्रेम : पीड़ा की अनिर्वचनीयता

घनानंद प्रेम पीर के नायक हैं। वह एक ऐसे रीतिमुक्त कवि हैं, जिन्हें अपने जीवन में सबसे अधिक पीड़ा मिली, ऐसी पीड़ा जिसका स्वरूप अनिर्वचनीय था। प्रेम एक सहज मानवीय अन्तर्मन की वृत्ति है इसको व्यक्त करना कठिन है। जो व्यक्ति इस प्रेम रस से सराबोर होता है, वह इसके स्वाद को कभी भूल नहीं सकता। यह एक ऐसा रस है, जिसका पान करने के लिए प्रेमी सदैव व्याकुल रहता है, ऐसे प्रेम का स्वाद बड़ा विलक्षण है। परशुराम चतुर्वेदी का कहना है—“प्रेम का भाव सभी को अपने रंग में डुबो देने का प्रयत्न करता है। प्रेमाभिव्यक्ति में एक अनिर्वचनीय रस मिलता है, जिसे बार-बार पीकर प्रेमी नहीं अघाता, प्रत्युत् इसके लिए उसकी प्यास बराबर बनी ही रहती है। इसका स्वाद अत्यन्त विलक्षण है, जिसे पीकर भी तृप्ति नहीं मिलती।”<sup>100</sup> प्रेम के अनिर्वचनीय स्वरूप को व्यक्त करते हुए रघुनाथ जी ने कहा है—“प्रेम अजोड़ है, अमूल्य है, अनिर्वचनीय है। जैसे आकाश का अन्त दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार प्रेम को आंका नहीं जा सकता। वह अमृत से भी मीठा है, अंगूर से भी अधिक रसीला है।”<sup>101</sup>

घनानंद ने स्वयं प्रेम कर विरह वेदना को सहा और उसको ज्यों का त्यों अभिव्यक्त कर दिया। घनानंद ने युगीन अभिरुचि का अतिक्रमण करते हुए पीड़ा का संसार बसाया, यह पीड़ा उनके जीवन से ही निकली थी, बनावटी नहीं थी और न ही आरोपित। इसलिए उनकी विरह पीड़ा की समता कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सका है।

रीतिमुक्त कवियों में सर्वाधिक रूप से प्रेम की पीड़ा घनानंद को ही मिली थी, क्योंकि घनानंद का अपने जीवन के अन्त तक अपने प्रिय से मिलन नहीं हो सका। अन्य रीतिमुक्त कवियों (बोधा, आलम) का तो अपने प्रिय से मिलन भी हो गया था, लेकिन घनानंद जीवन भर विरह की पीड़ा में दग्ध होते रहे। उन्हें अपने प्रेम में निरंतर असफलता ही मिलती रही इसलिए उनका प्रेमानुभव प्रेम की पीर के रूप में उभर कर सामने आया। उनकी इस प्रेम की पीर को समझने के लिए प्रेम रस में भीगी हुई हृदय की आँखों की आवश्यकता है। हृदय से प्रेम को अनुभूत करने वाला व्यक्ति ही घनानंद के प्रेम की पीर को समझ सकता है, क्योंकि प्रेम हृदय से होता है, मस्तिष्क से नहीं। ब्रजनाथ जी ने कहा भी है—

“समझै कविता घनानंद की

हिय-आँखिन नेह की पीर तकी।”<sup>102</sup>

घनानंद के प्रेम में कसक, तड़प, विह्वलता, बेचैनी सदा बनी रही। उनकी यही कसक, बेचैनी, विह्वलता ने कविता का रूप धारण किया और इन्हें कवि बना दिया—‘लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहि तो मेरे कबित्त बनावत’ के माध्यम से घनानंद की अर्न्तवृत्ति प्रकट हुयी है। रीतिकाल में कतिपय कविगण जो राज्याश्रित थे, ने अर्थ व यश की लालसा हेतु काव्य सृजन किया, किन्तु घनानंद का काव्य तो निजी जीवन की अभिव्यक्ति है। निजी जीवन की अभिव्यक्ति वही कर सकता है, जो स्वतः विभिन्न परिस्थितियों से गुजरा हो। घनानंद भी अपने जीवन में विषम परिस्थितियों से गुजरे, उनका अनुभव किया और अपने काव्य में उन परिस्थितियों का ज्यों का त्यों चित्रण कर दिया।

वेदना और पीड़ा की कसक से घनानंद का रोम-रोम भरा हुआ था। वह यत्र-तत्र अपनी प्रेम पीर को अभिव्यक्त करते नहीं थकते। उनकी मनोदशा कुछ ऐसी हो गई है कि उनसे अपने प्रेम पात्र को विस्मृत करते नहीं बनता। प्रिय कहीं भी आये, जाये, किसी भी स्थान पर निवास करे, उनका प्रेमी मन सदा प्रेम पात्र के लिए विकल बना रहता है। घनानंद की यही पीड़ा और वेदना इनको समकालीन कवियों में श्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है। कृष्णचंद्र वर्मा घनानंद की इस आन्तरिक पीड़ा पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—“कि घनानंद के विरह के उद्गारों की

आन्तरिक टीस और व्यथा की समकक्षता बिहारी, देव, मतिराम और पदमाकर के दूतियों के कथनों में नहीं ढूँढ़ी जा सकती।<sup>103</sup> प्रेम पीर के उन्मुक्त गायक घनानंद विरह, वेदना की ज्वाला में तपकर कुंदन तुल्य बन गये थे। हृदय में प्रिय बसा हुआ है, पर फिर भी मिलन का सा सुख प्राप्त नहीं होता, वियोगजन्य पीड़ा की अनुभूति होना तो स्वाभाविक ही है। ऐसी अनुभूति केवल महसूस की जा सकती है, वर्णित नहीं। वर्णित की गई वियोगजन्य पीड़ा, वास्तविकता में सहे हुए कष्ट से भिन्न होती है। उसमें रात और दिन का सा अंतर आ जाता है—

“कंत रमै उर-अंतर मैं सु लहै नहीं क्यों सुख-रासि निरंतर।  
दंत रहै गहै आँगुरी, ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।  
जो दुख देखति हों, घनआनंद रैन-दिना जान सुतंतर।  
जानै वेई दिन-राति, बखानैं तैं जाय परै दिन-रति को अंतर।”<sup>104</sup>

घनानंद मीराबाई की तरह प्रेम की अजस्र धारा में बहते रहते थे और मन के भावों को कविता में निश्छल रूप से अभिव्यक्त कर देते थे। उनके काव्य में मीराबाई के समान वेदना की अनुभूति दीखती है, उनका प्रेम अनन्य था, वे निरंतर अपने प्रियतम के वियोग में ही डूबे रहे। पीड़ा की जो कसक मीरा में है, वही घनानंद में है—“घनानंद मीराबाई की तरह अपने मन के भावों को निश्छल रूप से प्रकट कर देते थे। ‘ऐरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दरद न जाने कोय’ में मीरा की जिस हार्दिक वेदना की अनुभूति है, वही अनुभूति घनानंद में भी मिलती है। घनानंद का प्रेम व्यक्तिपरक था। वे रोते थे और पछताते थे, फिर उस पीड़ा में अपने आप को विस्मृत कर बैठते थे।”<sup>105</sup>

घनानंद को पीड़ा अत्यन्त प्रिय थी। प्रेम का दूसरा नाम ही पीड़ा है उन्होंने प्रेम और पीड़ा को एक दूसरे का पर्यायवाची माना। प्रेम की पीर और प्रेम मार्ग की कठिनाइयों को घनानंद ने जितना अधिक सहन किया, उतना शायद किसी अन्य कवि ने नहीं। प्रेम साधना ने उनकी प्रेम पीड़ा को अत्यन्त मधुर बना दिया था। उन्होंने प्रेम पथिक को प्रेम पंथ पर संभल कर चलने को कहा है, क्योंकि प्रेम का नाम लेने मात्र से ही जीभ पर छाले पड़ जाते हैं—

“बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,  
रसना केँ छाले परैँ प्यारे नेह-नावँ छवै।”<sup>106</sup>



प्रेम का मार्ग सरल भी है और कठिन भी, इस मार्ग पर चलने वाले केवल वही व्यक्ति होते हैं, जिनमें साहस होता है, हिम्मत होती है, जो प्रेमी इस पथ पर चलते हैं उन्हें अनेक विपत्तियों का सामना करना होता है। फूंक-फूंक कर कदम रखने वाला व्यक्ति ही इस मार्ग पर चल सकता है। प्रेमी हमेशा संकटों से घिरा रहता है, विषम ज्वर की लू से पीड़ित रहता है, नेत्रों से अश्रु निरंतर बहते रहते हैं, प्रेम पीड़ा की अधिकता के कारण वह उठ भी नहीं सकता—

“उठि न सकत, ससकत नैन-बान-बिँधे,

इते हू पै विषम विषाद—जुर लू बरै।”<sup>107</sup>

घनानंद ने प्रेम मार्ग की यातनाओं को भोगा और निर्वाह किया। अपने आप को भूलकर प्रेम में कष्ट सहन करने वाला प्रेमी व्यक्ति ही इस मार्ग पर चलने का साहस रखता है, जो व्यक्ति अपने आप को भूल नहीं पाता, वह इस प्रेम मार्ग में थकित होकर बैठ जाता है, यह प्रेम पंथ बड़ा ही अनोखा है—

“जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,

भूले ते चलत, रहै सुधि के थकित ह्वै।”<sup>108</sup>

सच्चे प्रेम में प्रेमी अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है, अपना अस्तित्व मिटा देता है, स्वयं को भूल जाता है, हर कण में प्रिय के ही दर्शन करता है, यही दशा हमें घनानंद में देखने को मिलती है। घनानंद एक सच्चे प्रेमी थे, प्रत्येक क्षण उन्होंने सुजान की स्मृति में ही लीन रहकर, स्वयं को भुला कर अपना सम्पूर्ण जीवन सुजान के लिए ही समर्पित कर दिया था। “घनानंद का तो समूचा जीवन ही विरह की चित्रशाला है। अतः आश्चर्य नहीं कि समूचे रीतिकाल में उनकी सी विरह की पीर का निदर्शन विरल ही है।”<sup>109</sup>

घनानंद के अनुसार प्रेम की पीर की अनुभूति में जो सुख है, वह अभिव्यक्ति में नहीं। प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति के लिए तो भाषा की सामर्थ्य क्षीण पड़ जाती है, घनानंद की प्रेम पीड़ा की अनिर्वचनीयता को भाषा के बंधन में नहीं बांधा जा सकता। रामचंद्र बिल्लौरे ने विरह की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहा है—“विरह वेदना से पीला पड़ा हुआ शरीर और आँसुओं से डबडबाए नेत्र ही प्रेम की भाषा हैं।”<sup>110</sup> यह सृष्टि का नियम है कि संसार में व्यक्ति किसी अन्य के दुख को महसूस नहीं करता, जो स्वयं कष्ट और कठिनाइयों को झेलता है, वही महसूस कर पाता

है। प्रेम पीर की अभिव्यक्ति को भाषा का रूप देना सम्भव नहीं। इसमें संदेह नहीं कि घनानंद की विरह व्यथा अपरिमित थी, वे एक अनन्य और निष्ठापूर्ण अविचल प्रेमी थे। घनानंद अपनी सम्पूर्ण मनोदशा को व्यक्त करने पर भी सर्वथा व्यक्त नहीं कर पाते—“बिरह—बिषम—दसा मूक लौं कहनि है।”<sup>111</sup> यह कहकर घनानंद अकथनीयता का आख्यान करते हैं, उनकी विरह व्यथा ऐसी है, जिसमें विरह एक साथ जलता भी है, भीगता भी है। विरह में उनकी स्थिति ऐसी हो गई है कि न ठीक से सोते बनता है, न जागते, न हंसते और न रोते। इस विरह में तो बिना प्राणों के जीना पड़ता है और बिना मौत के मरना—

“अंतर उदेग—दाह, आँखिन—प्रबाह—आँसू,

देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।

सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,

खोय खोय आप ही मैं चेटक—लहनि है।”<sup>112</sup>

सुजान के बिना घनानंद का सारा संसार सूना था। सुजान के निर्दयी होने के कारण वे जीवनभर पीड़ा सहते रहे हैं—“वैसा आत्मनिवेदन, वैसी प्रेम—पीड़ा, वैसी अभिव्यंजना वाला काव्य मध्ययुग में लिखा ही नहीं गया। आत्म पीड़ा का दूसरा नाम घनानंद का काव्य है।”<sup>113</sup> घनानंद अपनी विरह पीड़ा को बादलों के द्वारा प्रिय सुजान तक पहुँचाने की आस लगाये रहते हैं—

‘घनाआनंद जीवन—दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियेँ परसौ।

कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो असुँवानि हूँ लै बरसौ।”<sup>114</sup>

वास्तव में घनानंद के जीवन की प्रत्येक सांस और हृदय की प्रत्येक धड़कन में प्रेम की मधुर टीस और असह्य वेदना है। इनके प्रेम में प्राप्ति कम असह्य पीड़ा अधिक है। प्रेम पीड़ा की अनिर्वचनीयता ही घनानंद को हिन्दी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। घनानंद निर्मोही सुजान के द्वारा ठुकराये जाने के परिणामस्वरूप अपने ढंग के अकेले कवि हुए हैं।

### 3.6 सूफी-काव्य का प्रभाव

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में सूफी काव्य अथवा प्रेमाख्यानक की परंपरा देखी जाती है। सूफी कवियों के प्रेम सम्बन्धी आख्यान या कथानक, प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से जाने जाते हैं। “इन सूफी प्रेमाख्यानों का उदय भारतीय और ईरानी परम्पराओं के सामंजस्य से हुआ था।”<sup>115</sup> सूफी कवियों के काव्य में प्रेम तत्व की प्रमुखता रही है। ईश्वर ने प्रेम के वशीभूत होकर ही सृष्टि की रचना की है, अतः सृष्टि के मूल में प्रेम का स्वरूप स्वीकार्य है। प्रेम सूफियों का मूल लक्ष्य है यह एक ऐसा तन्तु है, जिसके वशीभूत हो संसार के सारे कण आपस में मिल जाते हैं। सूफी कवियों ने प्रेम के उसी तन्तु से देश के लोगों को आपस में बांधने का प्रयास किया है। वे मानव जीवन में प्रेम को अनिवार्य तत्व मानते हुए उसे अधिक महत्व देते हैं। प्रेम के बिना मानव जीवन नीरस और निष्प्राण है, प्रेम ही मानव जीवन का आनंद है। सूफी कवियों के काव्य में प्रेम के दोनों रूप-संयोग और वियोग देखने को मिले हैं, परन्तु प्रधानता वियोग रूप की ही रही है। विरह की पीड़ा, स्वच्छन्दतापूर्ण प्रेम का वर्णन और प्रिय की कठोरता आदि सभी सूफी काव्यों के मुख्य वर्ण्य विषय रहे हैं। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में अभिव्यक्त प्रेम की पीर, स्वच्छन्दतापूर्ण प्रेम का वर्णन, विरह वर्णन और प्रिय की कठोरता आदि सूफी प्रेमाख्यानों से प्रभावित हुए थे। डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा का कहना है—“सूफी संत, साधक या प्रेमी सारी सृष्टि में विरह के दर्शन करता है, समग्र सृष्टि को विरह के वाणों से विद्ध मानता है, समूची सृष्टि परमात्मा के विरह में उससे पीड़ित प्रतीत होती है। सूफियों की यही विरह भावना और प्रेम की पीर स्वच्छन्द कवियों ने वेदना विवृत्ति के साथ ग्रहण की है।”<sup>116</sup>

सूफियों ने विरह वेदना और उसकी पीड़ा को प्रेम का अभिन्न अंग माना है। उन्होंने अपने जीवन में प्रेम की पीर को अनुभव किया और काव्य में उसे वर्णित किया। प्रेमी प्रिय के वियोग को सहता है, अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करता है, क्योंकि उसके रोम-रोम में प्रियतम का वास है और हर कण में उसी प्रियतम के दर्शन होते हैं, जिसके लिए प्रेमी अपना सर्वस्व त्याग कर देता है। त्याग की यह भावना जिसमें देने पर विश्वास हो, लेने पर नहीं, घनानंद में दिखाई देती

है। द्वारिकाप्रसाद सक्सैना का कथन है—“सूफी कवियों के प्रेम निरूपण में भोग की नहीं त्याग की प्रधानता रही है और अपने प्रेमास्पद को प्राप्त करने के लिए किसी बल की आवश्यकता नहीं अपितु प्रेम तपस्या द्वारा प्राप्त करने की आकांक्षा रही है।”<sup>117</sup> अतः घनानंद के प्रेम में भी वही समर्पण है वही त्याग है जो सूफियों के प्रेम में था और जो उनके प्रेम को उत्कृष्टता की कोटि तक पहुँचा देता है। अपने निष्ठुर प्रिय को जिंदगी भर प्रेम करना और उसकी प्रसन्नता की कामना करते रहना घनानंद में सूफी कवियों के समान ही दिखाई देती है।

घनानंद जीवन पर्यन्त वियोग की अग्नि में दग्ध होते रहे इसलिए उनका प्रेम और अधिक उत्कृष्ट हो जाता है। सूफी कवि वियोग को प्रेम साधना में आवश्यक मानते हैं। उनकी निष्ठा प्रेम को शाश्वत बनाती है। प्रेमी के हृदय में प्रिय का संयोग प्राप्त करने की उत्कृष्ट लालसा बनी रही है, परन्तु प्रिय से संयोग तब तक नहीं होता, जब तक कि विरह की ज्वाला में तपकर हृदय की कलुषताएँ नष्ट न हो जायें। सच्चे प्रेम की पहचान ही होती है कि प्रेमी को विरह की अग्नि झेलकर (सामनाकर) उस तक पहुँचना होता है। यही अग्नि उसके प्रेम को शुद्ध करती है, अहं, क्रोध, ईर्ष्या आदि कलुषताओं को खत्म कर हृदय को पवित्र बनाती है, तभी प्रिय की प्राप्ति सम्भव होती है। विरह की अवस्था में प्रेम दृढ़ होता है, प्रिय को प्राप्त करने के लिए न जाने कितनी बाधाएँ आती हैं, किन्तु वह अपने पथ से विचलित नहीं होता। इन विपत्तियों से ही उसकी प्रेम साधना में निखार आता है। सूफी प्रेम का मार्ग अत्यन्त दुर्गम मानते हैं, जिस पर सच्चाई व शुद्ध मन के साथ चला जाता है। “रीतिमुक्त कवियों में विशेषतः घनानंद ने फारसी काव्य पद्धति से प्रिय की कठोरता और सूफी कवियों से प्रेम की पीर की प्रेरणा ली है। इनकी रचनाओं में वियोग की प्रधानता है।”<sup>118</sup> दोनों ही प्रेम तत्व पर बल देते हुए मनुष्य को प्रेम करते रहने का संदेश देते हैं क्योंकि प्रेम के बिना मानव जीवन निरर्थक है, प्रेम से मानव जीवन सार्थक होता है। सूफियों ने प्रेम के उच्चतम रूप को प्राप्त करने के लिए प्रेम में वियोग की अनिवार्यता स्वीकार की है यही अनिवार्यता घनानंद में भी देखी गई है। घनानंद को कभी क्षण भर के लिए संयोग सुख मिला भी, तो

विरह ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। वे समझ ही नहीं पाते कि यह कैसा संयोग है, जिसमें विरह, व्याकुलता, बेचैनी, तड़पन सदैव बनी रहती है—

“यह कैसो सँजोग न बूझि परै,  
जु बियोग न क्यों हूँ बिछोहतु है।”<sup>119</sup>

सूफी कवियों का त्याग और समर्पण हमारे हृदय को छू लेता है। “सूफियों के प्रेमाख्यान मानवीय हृदय की नैसर्गिक भावनाओं के काव्य हैं। इनमें प्रेम की स्निग्ध पुकार है, विरह की तड़प है, आत्मसमर्पण का आग्रह है, इसलिए ये हमारे हृदय को सहज स्पर्श करते हैं।”<sup>120</sup>

‘समुझै कविता घनआनंद की, हिय आंखिन नेह की पीर तकी’ वाली उक्ति से घनानंद की प्रेम—पीर सूफी प्रेमाख्यानों में व्यक्त प्रेम—पीर से ही प्रभावित दीखती है। सूफी, प्रेम की पीर का आस्वादन भीतर ही भीतर करते हैं, रीतिमुक्त कवि घनानंद भी प्रेम की पीर का आस्वादन अपने अन्दर करते हैं। जायसी के अनुसार—“जब से सृष्टि निर्मित हुई है, तब से समस्त जड़, चेतन, पदार्थ परमात्मा की वियोग बन्धि में जल रहे हैं। सूर्य विरहाग्नि में सतत् धधकता रहता है, वह कभी आकाश में उठता है, कभी पाताल जाता है, उस अपार विरहाग्नि के कारण स्थिर नहीं हो पाता।

“बिरह के आगि सूर जरि काँपा। रातिहि दिवस जरै ओहि तापा।

रिवनहिं सरग, खिन जाइ पतारा। थिर न रहै एहि आगि अपारा।”<sup>121</sup>

घनानंद की प्रेम पीर व उसकी कसक हृदय में निरन्तर वेदना उत्पन्न करती रही है। सूफी कवियों के प्रेम पीर की यह विशेषता है कि यह लौकिक से अलौकिक की उच्चसीमा पर जा पहुँची है। उनके प्रेम का मूल उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति करना रहा है, उन्होंने जिस प्रेम को अपनाया है, वह आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम है। “सूफियों के नजदीक प्रेम ही वह सोपान है, जो उसे ईश्वर तक पहुँचा सकता है।”<sup>122</sup> वे मानवीय प्रेम को ही आध्यात्मिक प्रेम तक पहुँचने का माध्यम मानते हैं। “सूफी कवियों की प्रेम भावना की मूल विशेषता है लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतर सोपान तक पहुँचना, इश्कमजाजी द्वारा इश्कहकीकी की उपलब्धि।

प्रेमगत यह सूफी सिद्धांत घनानंद और बोधा में मिलता है।<sup>123</sup> घनानंद ने लौकिक प्रेम का सम्बन्ध राधा-कृष्ण के शाश्वत प्रेम से स्थापित किया, इसीलिए उनका सुजान प्रेम राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम का प्रकाश है। राधा-कृष्ण के प्रेम का सागर इतना विशाल और गहन है कि उसमें राधा-कृष्ण ही अवगाहन कर सकते हैं, उस समुद्र की बूंद मात्र समस्त संसार के लिए पर्याप्त है। घनानंद और सुजान का प्रेम भी उसी विशाल प्रेम सागर के समान है, उनके प्रेम में राधा-कृष्ण की रस-क्रीड़ा अत्यन्त ही प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त हुई है—

“प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै बिचार,  
बापुरो हहरि वार ही तैं फिरि आयौ है।  
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,  
पूरि लोकलोकनि उमंडि उफनायौ है।  
सोई घनआनंद सुजान लागि हेत होत,  
ऐसेँ मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।  
ताहि एकरस ह्वैबिबस अवगाहँ दोऊ,  
नेही हरि-राधा जिन्हँ हेरँ सरसायौ है।”<sup>124</sup>

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी के अनुसार—“घनानंद और सुजान का लौकिक (मजाजी) प्रेम राधा और कृष्ण के अलौकिक (हकीकी) प्रेम का एक कण मात्र है।”<sup>125</sup> सूफी कवियों का प्रेम अलौकिकता का स्पर्श करते-करते उसी प्रियतम में समा गया है, वे अपने प्रिय के प्रेम में ही सुखद अनुभूति करने लगते हैं, वे स्वयं को उस (ईश्वर) की सत्ता में मिला देते हैं। सूफियों के समान घनानंद का प्रेम भी अन्ततः अलौकिकता का स्पर्श करता है। घनानंद ने सुजान को कृष्ण नाम तो ज़रूर दे दिया, लेकिन वे उससे प्रेम ही करते रहे, भक्ति नहीं। सुजान के प्रेम ने इन्हें अनुरागी भक्त बना दिया था—

“दिलपसंद दिलदार यार तू मुजन्नू की तरसाँदा है।  
मैन्नू ध्यान आन नहि जानी तू घन-कुंज-बिहारी है।  
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है।”<sup>126</sup>

स्वच्छन्द कवि होने के कारण घनानंद की शैली मुक्त भाव से कविता करने की रही। उनके समय में राज-भाषा फारसी थी, जिसका प्रभाव कवियों पर पड़ा। घनानंद मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीर मुंशी के पद पर कार्यरत थे, अतः दरबार का सारा कार्य वे ही करते थे, फलस्वरूप उन पर दरबारी वातावरण, मुगल रहन-सहन, आचार-विचार आदि का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। “उर्दू फारसी का प्रभाव तो रीतिकाल के समस्त कवियों पर था, स्वच्छन्द धारा के कवियों ने उसका कुछ अधिक उपयोग किया और रीति मार्ग के बाह्यावरण को उतार फेंका।”<sup>127</sup> इस दृष्टि से घनानंद की ‘इश्कलता’ फारसी काव्य पद्धति पर ही लिखी गई—

यारों गोकुलचंद सलोने दिया चस्म दा धक्का है।

ढोरि दिया घनआनंद जानी हुसन सराबी पक्का है।

सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारों झुक झारी है।

महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडा ज्यारी है।”<sup>128</sup>

सूफी कवियों का प्रेम और रीतिमुक्त कवियों की प्रेम व्यंजना में एक अन्तर यह है कि सूफी कवियों ने निर्गुण ब्रह्म का आश्रय लेकर अपने प्रेम की व्यंजना की थी, घनानंद ने सगुण कृष्ण का सहारा लेकर अपने प्रेम को अभिव्यक्त किया था। जहाँ एक की व्यंजना निर्गुण, निराकार की थी, तो दूसरे की सगुण, साकार की। पर दोनों का भाव एक ही था और वह था— परम तत्व की प्राप्ति। इस प्रकार रीतिमुक्त कवि घनानंद सूफी कवियों की प्रेम-पीर, विरह वेदना और स्वच्छन्द प्रेम वर्णन से अत्यन्त प्रभावित थे। घनानंद के प्रिय की निष्ठुरता और उदासीनता सूफियों से प्रभावित प्रतीत होती है। दोनों का प्रतिपाद्य विषय प्रेम की पीर है। प्रेम का उदात्त स्वरूप ही घनानंद को महान बनाता है।

### 3.7 प्रेम का स्वच्छन्द रूप

रीतिमुक्त धारा को हम ‘स्वच्छन्द काव्यधारा’ भी कह सकते हैं। परम्परा से हटकर चलने वाला काव्य ही स्वच्छन्द काव्य होता है। जो कवि यशोगान और अर्थ प्राप्ति हेतु काव्य रचना न करके अपने हृदय की अनुभूतियों को स्वच्छन्द रूप में

अभिव्यक्त करता है, वह स्वच्छन्द कवि कहलाता है। घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवियों ने परम्परागत मान्यताओं को त्यागकर भावनाओं के मुक्त क्षेत्र में विचरण किया, इसलिए ये रीतिमुक्त या स्वच्छन्द कवि कहलाये।

रीतिकाल में प्रेम के दो रूप रहे—एक तो वह जो शास्त्रीय बन्धनों से जकड़ा हुआ था और दूसरा वह जो स्वतन्त्र था। बन्धनों से जकड़े हुए प्रेम में हृदय का सच्चा स्वरूप अभिव्यक्त नहीं हो पाता जबकि स्वतन्त्र प्रेम में हृदय की अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती हैं।

रीतियुगीन कविता में कल्पना और कृत्रिमता का प्राचुर्य है, जबकि रीतिमुक्त कविता में स्वानुभूति का प्राचुर्य। रीतिमुक्त कवियों की दृष्टि व्यक्तिगत जीवन में सच्चे प्रेम की खोज करती रही। सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति में इनका स्वभाव स्वच्छन्द ही रहा। इसलिए कुल, मर्यादा और बंधनों के बीच होने वाला प्रेम न तो इनको अभीष्ट था और न ही इन्होंने उसे अपनाया। इनको सामाजिक बंधनों और लोक-परलोक की परवाह न थी। जो व्यक्ति बंधनों से मुक्त होकर प्रेम पथ पर अग्रसर होता है, वही स्वच्छन्द प्रेम मार्ग का सच्चा पथिक होता है। सच्चा प्रेम नियमों और बंधनों को तोड़ता आया है। बोधा हो अथवा घनानंद इनके प्रेम में लोक-लाज के नियमों और बंधनों को तोड़ने की प्रवृत्ति देखी गयी है। बंधनों में न बंधने के कारण प्रेमी अत्यन्त निडर हो जाता है, प्रेम पथ का सामना करने की हिम्मत पैदा हो जाती है। गाँव, घर और देह के बने बनाए रिश्ते का उसे ध्यान नहीं रहता। प्रीति की रीति को वही निभा सकता है, जिसमें धैर्य व साहस हो। जिन मित्रों को लोक का भय सताता है, उन्हें प्रीति के रास्ते में पाँव रखने की आवश्यकता ही नहीं होती—

“लोक की लाज औ सोच अलोक को वारियै प्रीति के ऊपर दोऊ।

गाँव को गेह को देह को नातो सनेह में हातो करै पुनि सोऊ।

बोधा सु नीतिनिबाह करै धर ऊपर जाके नहिँ सिर होऊ।

लोक की भीति डेरात जौ मीत तौ प्रीति के पैँडे परै जनि कोऊ।”<sup>129</sup>

घनानंद के प्रेम निरूपण में वही स्वच्छन्दता है, जो राधा, कृष्ण और गोपियों के मध्य थी। बिना किसी लोक-लज्जा के भय से ये प्रेम करते थे, इसलिए इन्होंने स्वच्छन्द होकर प्रेम का निर्वाह किया और काव्य-सृजन किया। भाव के ऐसे आवेग



में ही आकर सभी सामाजिक बंधन टूट जाया करते हैं—“इन कवियों का प्रेम निर्बन्ध है—वह लोक—लाज नहीं मानता, लोकरीति का अनुसरण नहीं करता, मान अपमान की परवाह नहीं करता, कुल धर्म की अवहेलना करता है और स्वच्छन्द वायुमण्डल में जीता है।”<sup>130</sup> घनानंद अपने भावोद्गारों का स्वयं उदघाटन करते थे, अपने समकालीन कवियों की भांति दूसरे के भावों की अभिव्यक्ति करना इनका उद्देश्य नहीं था। स्वयं की प्रेम अभिव्यक्ति में जो भाव आते हैं, वह अन्य के द्वारा की गई अभिव्यक्ति में नहीं। घनानंद ने अन्तःकरण की आवाज को और भावोद्गारों को वाणी प्रदान की। शशि सहगल का कहना है—“रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों ने प्रेमकाव्य तो खूब लिखा, परन्तु इनका प्रेम उधार का था, उनके अश्रु अपने नहीं थे, जबरदस्ती बहाये गये थे, इसी कारण रीतिमुक्त कवि घनानंद के समक्ष इनका प्रेमकाव्य फीका और कृत्रिम हुआ।”<sup>131</sup>

यह सत्य है कि प्रेम में स्वच्छन्दता और उदात्तता से इनका शुद्ध प्रेम वासनात्मक स्तर से ऊपर उठ गया है। इनका दृष्टिकोण मांसल अथवा शरीरी न होकर सूक्ष्म और भावनात्मक हो गया है। “घनानंद का प्रेम न तो रीतिबद्ध कवियों की भांति शरीरी है और न प्लेटोनिक प्रेम की तरह अशरीरी। इनकी स्थिति बहुत कुछ दोनों की मध्यवर्तिनी है।”<sup>132</sup> इनका प्रेम शुद्ध अन्तःकरण से फूटा हुआ आवेग है, जिसमें सच्चाई है, निष्ठता है, समर्पण है तथा त्याग की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। यद्यपि इनके प्रेम का प्रारंभ रूप और गुण से जरूर हुआ है परन्तु उसकी परिणति सूक्ष्म हो गई है अन्ततः वह राधा-कृष्ण का रूप ले लेता है।

घनानंद ने रुढ़िप्राप्त बंधनों को त्यागकर अपने जीवन की अनुभूतियों को काव्यबद्ध करके काव्यक्षेत्र में नवीन मार्ग का निर्माण किया है। अनुभूति का स्पर्श इनके काव्य को मर्मन्तिक बना देता है। प्रेम इनके जीवन में छनकर आया है, जिसमें ताज़गी है, तीव्रता है, आत्मगत अनुभूति की सच्चाई है, प्रेम का यथार्थ रूप है तथा कल्पना का अभाव दिखाई देता है। “रीतिमुक्त कवि प्रकृत्या प्रेमी हैं, किसी का किसी वेश्या से प्रेम हो गया था, तो किसी का विजातीय स्त्री से। सामाजिक तथा अन्य प्रकार की बाधाओं के कारण इन लोगों को अपने प्रेमपात्रों से वियुक्त होना पड़ा। प्रेम का माधुर्य, विरह की ठेस खाकर वाणी में मुखरित हो उठा। काव्य

रचना ये लोग पहले से ही करते थे, पर पहले वह कल्पना की क्रीड़ा थी, अब जीवन का करुण संगीत बन गई।<sup>133</sup> आलम और शेख का, ठाकुर और सुनारिन का (सुजान), घनानंद और सुजान का, बोधा और सुभान का प्रेम अपने व्यक्तिगत और स्वच्छन्द रूप में काव्य का आधार बना। स्वच्छन्द प्रवृत्ति होने के कारण घनानंद के मन में जो आया, उसे कह दिया। उच्छृंखलता उनके काव्य का स्पर्श भी नहीं कर पायी। उन्हें अपनी प्रेम अभिव्यक्ति में सुखद अनुभूति हुई है।

घनानंद का प्रेम आडम्बर रहित है, उनमें बनावटीपन अथवा कृत्रिमता नहीं है, वह दिखावे से दूर है। वह सभी रुढ़ियों, परम्पराओं और जाति-पांति के बंधन से ऊपर उठ गया है। सुजान जो अन्य धर्म की थी, उसके लिए सारे बंधनों को टुकराकर एकनिष्ठ होकर प्रेम करना इसका उदाहरण है, “प्रेम जिस पथ पर इन्हें दौड़ाता वही इनका निर्दिष्ट मार्ग होता था। वह मार्ग लोक और शास्त्र की मर्यादाओं का मान कर नहीं, उनका तिरस्कार कर आगे बढ़ता था। उस मार्ग में प्रेम ही रास्ता था, प्रेम ही मन्जिल थी, इसलिए ये स्वाभाविक प्रेम के पुजारी थे।”<sup>134</sup>

कविता को बंधी बंधाई लीक में प्रस्तुत करना और यश प्राप्त करना घनानंद का कार्य नहीं था, बल्कि इनके काव्य सृजन का उद्देश्य प्रेम भावना का स्वच्छन्द रूप में अभिव्यक्तिकरण करना था। ‘लोग है लागि कबित्त बनावत मोहि तो मेरे कबित्त बनावत’ से घनानंद का काव्य-वैशिष्ट्य स्पष्ट हो जाता है। घनानंद और ठाकुर दोनों ही रीतिमुक्त कवियों का अनुकरण करने वाले और रीति सीखने वाले कवियों को समझाते हुए कहते हैं कि कविता करना कोई खेल नहीं है—

डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच

लोगन कबित्त कीबो खेल कर जानो है।”<sup>135</sup>

घनानंद के प्रशंसक ब्रजनाथ का मानना है कि जो व्यक्ति स्वभाव से स्वच्छन्द होता है, वही घनानंद की कविता को समझ सकता है—

“भाषा-प्रवीन, सुछंद सदा रहै जो घन जी के कबित्त बखानै।”<sup>136</sup>

घनानंद का प्रेम हृदय की उपज है, इसीलिए वह हृदय से उत्पन्न एक स्वच्छन्द भावधारा के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इनके प्रेम में मस्तिष्क की नहीं हृदय की प्रधानता है और विचारों के स्थान पर भावों का चित्रण है। स्वच्छन्द प्रेम

और आत्मगत अभिव्यक्ति इनके काव्य का उत्स है। यही कारण है कि—“रीतिबद्ध कवि काव्य के बहिरंग में ही लिपटे रह गये, उसके अंतरंग में प्रविष्ट नहीं हुए। इसी से ‘स्वच्छन्द कवि’ हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की संकरी गलियों में धक्का करना नहीं। इन कवियों का काव्य स्रोत स्वतः उद्भावित होता था। जहाँ रीतिबद्ध कवियों की काव्य-प्रणाली टेढ़े-सीधे मार्ग पर बहती थी, वहीं ये रीतिमुक्त या स्वच्छन्द कवि अपनी भावधारा में स्वतः ही बह जाते थे।”<sup>137</sup>

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि घनानंद के जीवन में एकपक्षीय प्रेम की ही अनुभूति होती रही, जिसके फलस्वरूप उनके काव्य में विषम प्रेम ही दिखाई दिया। सूफी-काव्य के प्रभाववश वे प्रेम-पीर के नायक कहे गये। अतः घनानंद उन्मुक्त स्वभाव के कवि थे। इनका प्रेम अन्तः प्रेरणा से उद्भूत हुआ और स्वच्छन्द रूप में अभिव्यक्त हुआ जिसका चित्रण करने में ये सुखद अनुभूति महसूस करते थे। प्रेम के उन्मुक्त स्वरूप का चित्रण करने में घनानंद एक सफल व श्रेष्ठ कवि हैं।

## सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1. डॉ० रामचंद्र बिल्लौरे, जायसी की प्रेम साधना, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली-1973, पृ०सं०-40
2. सं०-नंद दुलारे वाजपेयी, सूरसागर (प्रथम खण्ड), पं०सं०-2, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-सं० 2021 वि०, पृ०सं०-1
3. डॉ० रामकुमार खंडेलवाल, हिन्दी काव्य में प्रेम भावना, जवाहरलाल पुस्तकालय, मथुरा-1976, पृ०सं०-21
4. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सैना, पद्मावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-1974, पृ०सं०-241
5. उद्धृत, परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी-काव्यधारा में प्रेम-प्रवाह, किताब महल, इलाहाबाद-1952, पृ०सं०-7
6. राधाकान्तदेव बहादुरेण, शब्दकल्पद्रुम, (तृतीय भाग), चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, पृ०सं०-372
7. डॉ० अजब सिंह, आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-1975, पृ०सं०-26
8. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी-2015 वि०, पृ०सं०-333,
9. राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, कालिका प्रसाद, वृहत हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस सं०-2013, पृ०सं०-877
10. परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी-काव्यधारा में प्रेम-प्रवाह, पृ०सं०-1
11. उद्धृत, रामकुमार खंडेलवाल, हिन्दी काव्य में प्रेम भावना, पृ०सं०-22
12. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (सुजानहित), वाणी वितान, बनारस-2009, छं०सं०-267
13. सं० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली (सूषिम मारग कौ अंग), दो०सं०-9, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी+नई दिल्ली सं० 2058 वि०, पृ०सं०-24
14. रामकुमार, तरुण काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, उन्मेष प्रकाशन, हरिद्वार-1993, पृ०सं०-15

15. सं०-वसंतलाल शर्मा, मदनलाल शर्मा, मरुभारती, (प्रकृति प्रेम-नागरमल सहल), राजस्थानी शोध-विभाग, पिलानी, अप्रैल-1994, अंक-1, पृ०सं०-141
  16. परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी-काव्यधारा में प्रेम-प्रवाह, पृ०सं०-3
  17. डॉ० अजब सिंह, आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ०सं०-27
  18. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सैना, पदमावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ०सं०-242
  19. रेवा प्रसाद द्विवेदी, कालिदास ग्रन्थावली (अभिज्ञान शाकुन्तलम्), श्लो० नं० 2, खण्ड-5, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-1976, पृ०सं०-289
  20. सं० कपिलदेव द्विवेदी, महाकवि भवभूति और उत्तररामचरित, श्लो० नं०-32/6, साहित्य संस्थान, इलाहाबाद-प्रथम संस्करण, पृ०-444
  21. स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, नारदभक्तिदर्शन, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, मालाबार हिल बम्बई-1969
- प्रेम का स्वरूप अवर्णनीय है। सू०सं०-51
- प्रेम गूंगे के स्वाद लेने के समान है। प्रेम में आस्वादन है, उसे बताया नहीं जा सकता। सू०सं०-52
- प्रेम किसी अधिकारी में प्रकाशित होता है, प्रेम स्वयं ही प्रकाश है। पात्र देखकर प्रेम प्रकट हो जाता है। सू०सं०-53
- प्रेम गुणरहित, कामनारहित, प्रतिक्षण बढ़ने वाला, कभी न टूटने वाला, अत्यन्त सूक्ष्म तथा अनुभव स्वरूप है। सू०सं०-54
22. सं० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली (गुरुदेव कौ अंग), छं०सं०-34, पृ०सं०-3
  23. सं० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली (मानसरोदक खण्ड), छं०सं०-6, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-सं० 2048 वि०, पृ०सं०-22
  24. सं० नन्ददुलारे वाजपेयी, सूरसागर (प्रथम खण्ड), छं०सं० 166, पृ०सं०-55
  25. सं० रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास, तुलसी-ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड), छं०सं०-277, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी-1500, पृ०सं०-105

26. सं० जगन्नाथ दास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, छ०सं०-583, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी-1998, पृ०सं०-271
27. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बोधा ग्रन्थावली, (इश्कनामा) प्रथम खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-सं० 2031, छ०सं०-7
28. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, (सुजानहित), छ०सं०-267
29. Richard A.spreers, NTC's American English Learner's Dictionary, Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford, New York-2007, P-541
30. A.S. Hornby, Oxford Advanced Learner's Dictionary, Oxford University Press-1974, P-913
31. ओम प्रकाश गोविल, महाकवि राबर्ट ब्राउनिंग : एक अध्ययन, शकुन पब्लिकेशंस, अलीगढ़-1990, पृ०सं०-27
32. उद्धृत, बच्चन सिंह, रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-सं० 2015 वि०, पृ०सं०-100
33. "It (Sensuality) is a fulfilment that great dark knowledge you cannot have in your head, the dark in voluntary being . It is death to one's self but it is the coming one to being of another." D.H. Lawrance, women in love, Thomas seltzer publishing company-1920, page-43
34. "The love of man and woman at its best is free and fearless, compounded of body and mind in equal proportions; not dreading the physical basis lest it should interfere with the idealisation. Love should be a tree whose roots are deep in the earth, but whose branches extended in to heaven." Marriage and Morals-Russell. page-175
35. उद्धृत, "It is better ot have loved and lost than never to have loved at all" रामेश्वर खण्डेलवाल, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली-1985, पृष्ठ-11
36. उद्धृत, बच्चनसिंह, रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-सं० 2015 वि०, पृ०सं०-99

37. उद्धृत, "Not to love is not to live or it is a living death" मंजू शर्मा, घनानंद और प्रसाद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, ज्योति इण्टरप्राइजिज, जवाहर नगर, दिल्ली-2009, पृ0सं-36
38. उद्धृत, "Where love is great, the littlest doubts are fears. where the fears grow great, great love is there"-shakespeare. रामेश्वर खण्डेलवाल, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ0सं0-109
39. यतेंद्र कुमार, शैली, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, पृ0सं0-38
40. उद्धृत, डॉ0 लालचंद्र जैन, जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन, भारतीय पुस्तक मन्दिर, भरतपुर-1976, पृ0सं0-220
41. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ0सं0-97
42. डॉ0 राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा-1969, पृ0सं0-26
43. त्रिभुवन सिंह, दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1958, पृ0सं0-95
44. सुखस्वरूप श्रीवास्तव, रीतिकाव्य में शृंगार निरूपण, प्रगति प्रकाशन आगरा-1972, पृ0सं0-11
45. वही, पृ0सं0-13
46. जितेंद्र पाठक, भक्ति तथा रीतिकालीन मुक्तक, काव्य, पृ0सं0-191
47. सहदेव वर्मा, घनानंद काव्य दर्शन, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली-1977, पृ0सं0-20
48. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी-सं0 2035, पृ0सं0-321
49. डॉ0 मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी-2015 वि0, पृ0सं0-301, 302
50. सुजानहित, छं0सं0-77
51. वही, छं0सं0-127

52. सं० अशोक शुक्ल, घनानंद कवित्त, पदम् बुक कम्पनी, जयपुर-1968, पृ०सं०-42
53. सुजानहित, छं०सं०-353
54. वही, छं०सं०-231
55. वही, छं०सं०-17
56. वही, छं०सं०-70
57. सहदेव वर्मा, घनानंद काव्य दर्शन, पृ०सं०-52
58. रमाशंकर, बिहारी का काव्य लालित्य, ग्रन्थम रामबाग, कानपुर-1970, पृ०सं०-132
59. डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, पृ०सं०-35
60. सं० अशोक शुक्ल, घनानंद कवित्त, पृष्ठ-49
61. डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, पृ०सं०-37
62. रघुनाथ भट्ट, हिन्दी सतसई परम्परा में दयाराम सतसई, गिरनार प्रकाशन,, महेसाना, गुजरात-1984, पृ०सं०-82
63. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, तुलसी ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड), दो०सं०-279 (दोहावली), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी-1500
64. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं०-322
65. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनानंद कवित्त, छं०सं०-22
66. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, घनानंद, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर-1976, पृ०सं०-145
67. सुजान हित, छं०सं०-235
68. हनुमानदास चकोर, हिन्दी साहित्य में विरह प्रसंग, नवयुग ग्रन्थागार, लखनऊ-1965, पृ०सं०-9
69. प्रकीर्णक, छं०सं०-5
70. सहदेव वर्मा, घनानंद काव्य दर्शन, पृ०सं०-56
71. सुजानहित, छं०सं०-104
72. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बोधा ग्रन्थावली, (विरहवारीश) (भाग-17), छं०सं०-4



73. सुजानहित, छं0सं0-7
74. सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ठाकुर ग्रन्थावली, छं0सं0-65
75. सुजानहित, छं0सं0-170
76. वही, छं0सं0-257
77. सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बोधा ग्रन्थावली, (इश्कनामा)-छं0सं0-72
78. डॉ0 हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, विकास प्रकाशन, कानपुर-2009, पृ0सं0-120
79. डॉ0 खेलचंद आनंद, डॉ0 सुषमारानी गुप्ता, प्राचीन प्रतिनिधि कवि, सूर्यभारती प्रकाशन नई सड़क दिल्ली-2002, पृ0सं0-205
80. सुजानहित, छं0सं0-4
81. वही, छं0सं0-169
82. वही, छं0सं0-178
83. वही, छं0सं0-271
84. डॉ0 राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, पृ0सं0-43
85. जयभगवान गोयल (सं0) संभावना, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र 7, अंक-72, 1987
86. ओम प्रकाश, हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, भारती साहित्य मंदिर दिल्ली-1957, पृ0सं0-257
87. डॉ0 बच्चन सिंह, रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ0सं0-229
88. डॉ0 कृष्णचंद्र वर्मा, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, कैलाश पुस्तक सदन, आगरा-1967, पृ0सं0-72
89. सुजानहित, छं0सं0-187
90. वही, छं0सं0-249
91. डॉ0 कृष्णचन्द्र वर्मा, घनआनंद, पृ0सं0-35
92. सुजानहित, छं0सं0-8
93. प्रकीर्णक, छं0सं0-6
94. सुजानहित, छं0सं0-316

95. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ठाकुर ग्रन्थावली, छ०सं०-133
96. सुजानहित, छ०सं०-280
97. वही, छ०सं०-36
98. वही, छ०सं०-113
99. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, गायत्री प्रेस दारागंज, इलाहाबाद-1965, पृ०सं०-181
100. परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1962, पृ०सं०-1
101. रघुनाथ भट्ट, हिन्दी सतसई परम्परा में दयाराम सतसई, पृ०सं०-77
102. सुजानहित, छ०सं०-285
103. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, घनआनंद, पृ०सं०-45
104. सुजानहित, छ०सं०-207
105. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, पृ०सं०-106, 107
106. सुजानहित, छ०सं०-296
107. वही, छ०सं०-215
108. वही, छ०सं०-296
109. डॉ० नरेंद्र कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य: मध्यकाल, ग्रन्थायन, सासनीगेट, अलीगढ़-1982, पृ०सं०-166
110. रामचन्द्र बिल्लौरे, जायसी की प्रेम साधना, पृ०सं०-56
111. सुजानहित, छ०सं०-196
112. वही, प०सं०-196
113. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, पृ०सं०-37
114. सुजानहित, छ०सं०-339
115. श्याम मनोहर पांडेय, भारतीय प्रेमाख्यान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ०सं०-302
116. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०-29
117. द्वारिका प्रसाद सक्सैना, पदमावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ०सं०-251

118. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, पृ०सं०-207
119. सुजानहित, छं०सं०-104
120. श्याममनोहर पांडेय, भारतीय प्रेमाख्यान, पृ०सं०-303
121. सं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, पृ०सं०-69
122. कौसर जयदानी, सूफी धर्म, साधना एवं साहित्य, जेन्युइन पब्लिकेशन्स एंड मीडिया प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली-1987, पृ०सं०-177
123. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०-81
124. सुजानहित, छं०सं०-116
125. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली, पृ०सं०-14, 15
126. इश्कलता, छं०सं०-19
127. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०-263
128. इश्कलता, छं०सं०-16
129. इश्कनामा, छं०सं०-18
130. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, घनआनंद, पृ०सं०-16
131. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ०सं०-49
132. भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (7), नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-2029 वि०, पृ०सं०-82
133. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०-237
134. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, पृ०सं०-189
135. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ठाकुर ग्रन्थावली, छं०सं०-7
136. घनआनंद ग्रन्थावली (प्रशस्ति), छं०सं०-1
137. घनआनंद ग्रन्थावली (वाङ्मुख), पृ०सं०-13, 14

## चतुर्थ अध्याय

### घनानंद के काव्य में सौन्दर्य का स्वरूप

- 4.1 सौन्दर्य : शब्दार्थ व स्वरूप
- 4.2 मानवीय सौन्दर्य
- 4.3 प्रकृति सौन्दर्य
- 4.4 प्रेम और सौन्दर्य का मिश्रित रूप
- 4.5 प्रेम और सौन्दर्य का लौकिक व अलौकिक स्वरूप

# घनानंद के काव्य में सौन्दर्य का स्वरूप

## 4.1 सौन्दर्य: शब्दार्थ व स्वरूप

सामान्यतः मानव मन को आकर्षित करने वाली सुन्दर व सुगठित वस्तु के सामान्य धर्म को सौन्दर्य की संज्ञा दी जाती है। जब किसी वस्तु, पदार्थ या दृश्य को देखकर मानव मन उसके प्रति प्रसन्नता व आकर्षण का अनुभव करता है, तब वही आकर्षण सौन्दर्य के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः जिस वस्तु को देखकर मानव मन में कोई सुखद अनुभूति होती है, उसी को वह सुन्दर कहता है, उदाहरणार्थ प्रातः कालीन उषा की लालिमा तथा नीले आकाश में खिंचे हुए रंग-बिरंगे इंद्रधनुष की शोभा को देखकर मानव मन प्रसन्नता से खिल उठता है और उसके मन में आनन्दमयी अनुभूति होती है, यही अनुभूति सौन्दर्य के नाम से जानी गई।

‘सौन्दर्य’ शब्द का सम्बन्ध वस्तुओं के एक विशेष गुण से है, जिसका बोध हम चक्षुरिन्द्रियों के माध्यम से करते हैं। जिस प्रकार हम मीठे और कड़ुवे का बोध स्वादेन्द्रियों द्वारा, सुगन्ध और दुर्गन्ध का बोध घ्राणेन्द्रियों द्वारा तथा कोमल और कठोर का बोध स्पर्शन्द्रियों द्वारा करते हैं, उसी प्रकार हम सुन्दर व असुन्दर का बोध चक्षुरिन्द्रियों द्वारा करते हैं। देवेन्द्रनाथ शर्मा (सं०) समीक्षा में संकलित लेख ‘भारतीय साहित्य में शृंगार रस’ में गणपतिचन्द्र जी का कहना है—“वस्तुओं की जिन विशिष्टताओं से हमारी चक्षुरिन्द्रियों को मधुर प्रभाव की अनुभूति होती है उसी का नाम सौन्दर्य है।”<sup>1</sup>

सौन्दर्य में एक सहज आकर्षण है। मनुष्य किसी भी सुन्दर वस्तु, दृश्य, व्यक्ति तथा उसके सुन्दर कार्यों को देखकर आह्लादित होता है क्योंकि सभी प्राणियों के मन में सौन्दर्य के प्रति अनुराग स्वाभाविक है। आँखें सुन्दर दृश्य देखना चाहती हैं, कान सुन्दर बातें सुनना चाहते हैं, नाक सुगंध ही सूँघना चाहती है तथा

जिह्वा स्वादिष्ट वस्तुयें ही खाना चाहती है और त्वचा में सुन्दर एवं सुकुमार स्पर्श प्राप्त करने की तीव्र लालसा मनोजगत को आन्दोलित किये रहती है। स्पष्ट है कि हमारी प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियाँ सौन्दर्य का आस्वादन करने के लिए सक्रिय दिखाई देती हैं। मन को हरने वाला, आँखों को सुख देने वाला तथा संसार को चेरा बनाने वाला रूप, सौन्दर्य का जनक है। सौन्दर्य भावना मानव मन की मूल प्रवृत्ति है, जो उसके जीवनानुभव से भी जुड़ी है। मानव, सौन्दर्य बोध को किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त करने के लिए उत्सुक रहता है। यह मानव मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि सौन्दर्य के प्रति उसका खिंचाव स्वतः ही होता है। सौन्दर्यानुभूति अत्यन्त तीव्र, गहरी और व्यापक होने के कारण मानव मन को अभिभूत कर देती है।

सौन्दर्य, जीवन और जगत में सर्वत्र व्याप्त है, यह जीवन का सारतत्त्व है। यह केवल मानव जाति तक ही सीमित नहीं है, अपितु समस्त चराचर जगत में व्याप्त है। सौन्दर्य वह मुख्य तत्त्व है, जिसके द्वारा केवल जड़-चेतन ही प्रभावित नहीं होते, अपितु मानव-मन, पशु-पक्षी भी सौन्दर्य से अभिभूत होते हैं। परन्तु मानव जाति में इसका स्वरूप अधिक विकसित हुआ है, यह चराचर जगत की केन्द्रीय शक्ति है और प्रकृति का श्वास-उच्छ्वास है। सृष्टि में जड़ अथवा चेतन समस्त पदार्थ सौन्दर्य के वशीभूत हैं।

सौन्दर्य सृष्टि का आवश्यक व महत्वपूर्ण तत्त्व है। यह संसार के कण-कण में व्याप्त है, संसार का कण-कण सुन्दरता के कारण मानव मन को आकर्षित करता है। आकर्षण सौन्दर्य का लक्षण है, इसीलिए जहाँ-जहाँ आकर्षण है, वहाँ-वहाँ सौन्दर्य है। आकर्षण में ही सौन्दर्य की आत्मा है। शकुन्तला शर्मा का कहना है—“जीवन सुन्दर है, मरण सुन्दर है, जागृति सुन्दर है एवं प्रसुप्ति आदि सभी सुन्दर हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु यदि एक ओर प्रकाशमयी है एवं उज्ज्वल होकर अभिभूत करती है, तो दूसरी ओर वह अन्धकारमयी प्रकाश से रहित होकर उदासीन भी कर देती है, किन्तु सौन्दर्य की अवस्थिति सदा आनन्दमय है। प्रत्येक कण उसकी ज्योति का प्रकाश है।”<sup>2</sup> सौन्दर्य विश्व का आधारभूत तत्त्व है, इसके अभाव में सृष्टि की अपनी कोई सार्थकता नहीं। सौन्दर्य सृष्टि है, आदि और अन्त है, जिधर भी दृष्टिपात किया जाये, उधर अतुलित सौन्दर्य ही दृष्टिगत है। इस प्रकार जो वस्तु

हमें रुचिकर जान पड़ती है, आकर्षक लगती है, वही आकर्षण सौन्दर्य बन जाता है। मानव स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रेमी है, मन को अच्छी लगने वाली प्रत्येक वस्तु को हम सुन्दर कहते हैं—चाहे वह प्राकृतिक दृश्य हो अथवा मानव रचना। वस्तु का गुण, विशेष रूप से जब मानव मन को सींचता है, मुग्ध करता है, आकर्षित करता है, तब वह सुन्दर कहलाता है। सौन्दर्य मूलतः आकर्षण प्रधान है, जिससे मानव मन को आनन्द की अनुभूति होती है। “जो वस्तु सहृदय को आकर्षित कर मन को आनंदित करती है, वही सुन्दर है।”<sup>3</sup>

सौन्दर्य मानव हृदय की अनिर्वचनीय अनुभूति है। वह प्रत्येक वस्तु सुन्दर है, जिसमें अवर्णनीय सौन्दर्य है। सौन्दर्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरं का समावेश है। डॉ० अजबसिंह सौन्दर्य को सत्य, शिव, सुन्दर के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं—“सर्वसत्ये समीहितम्” से अभिप्राय यह है कि सत्य सृष्टि का आदितत्त्व है, यही सौन्दर्य का आधार स्तम्भ है। सौन्दर्य का द्वितीय आधार स्तम्भ तत्त्वात्मक रूप में, जिस पर प्रतिष्ठित है, शिवम् है, इसी दृष्टिकोण से महान दार्शनिक नागार्जुन ने ‘सर्व प्रपञ्चोसमंशिवम्’ की घोषणा की। सृष्टि का प्रथम तत्त्व यदि सत्य है, तो ‘शिवम्’ उसका विकसित द्वितीय रूप। सौन्दर्य की द्वितीय शृंखला यही है, जिसमें समस्त जगत कल्याणमय प्रतीत होता है, इसलिए मानव को सुन्दरता के प्रति आकर्षण होता है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ये तीनों तत्त्व सृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास परम्परा में सहयोग प्रदान करते हैं।<sup>4</sup> सौन्दर्य में ‘आत्मना काव्य’ तथा ‘स्वकल्याण’ की भावना भी निहित है। ‘स्वकल्याण’ की भावना जब अपनी चरमसीमा पर पहुँचती है, तो सौन्दर्य अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त करता है और ‘सर्वेभवन्तु सुखिनः’ द्वारा सौन्दर्य का चरमोत्कर्ष होता है। वह प्रत्येक वस्तु सुन्दर है, जो समाज के हित की ओर अग्रसर होती है, इसलिए सौन्दर्य कालगत, स्थानगत और क्षेत्रगत न होकर सार्वभौमिक है।

मानव की जिज्ञासा प्रवृत्ति बड़ी प्रबल व गहन है, वह वस्तु के मूल रहस्यों को जाने बिना तृप्त नहीं होती। ‘सौन्दर्य’ शब्द अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है, इसको किसी सीमा विशेष में बांधा नहीं जा सकता है। साहित्य में सौन्दर्य शब्द की व्युत्पत्ति विविध रूपों में मानी गयी है। सौन्दर्य शब्द की व्युत्पत्ति मूल रूप में ‘सुन्दर’

शब्द से हुई है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के सुन्दर (विशेषण) शब्द के भाव अर्थ में 'ष्यज्' प्रत्यय से जुड़कर हुई है। वाचस्पत्यम् कोश में सौन्दर्य शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कहा गया है—'सुन्दरस्य भावः' ष्यज्। चारुतायां अङ्ग प्रत्यङ्गकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।।<sup>6</sup> सौन्दर्य शब्द की एक और व्युत्पत्ति 'सुन्दं राति इति सुन्दरम्, तस्य भावः सौन्दर्यम्' द्वारा भी हुई है, अर्थात् सुन्द को जो लाता हो, वह सुन्दर और उसका भाव जहाँ हो, वह सौन्दर्य कहलाता है। अतः सुन्द पूर्वक 'रा' धातु अर्थात् आदाने (लाना) धातु से औणादिक 'अच' प्रत्यय से 'सुन्दर' शब्द बना है।<sup>6</sup>

सुन्दर शब्द को 'उन्द' धातु में 'सु' उपसर्ग का योग करके तथा 'अरन्' प्रत्यय जोड़कर भी सिद्ध किया गया है। 'सु' उपसर्ग का अर्थ भली प्रकार एवं सुष्ठ होना है तथा 'उन्द' शब्द का अर्थ 'सरस व आर्द्र' करना है व 'अरन्' प्रत्यय कर्त्तावाचक है। इस प्रकार पूरे सुन्दर शब्द का अर्थ हुआ, जो दर्शक को भली प्रकार सरस अथवा प्रसन्नचित्त कर दे। शब्दकल्पद्रुम कोश के अनुसार—“सु+उन्द+ अरः” सुष्ठ अन्ति आदि करोति चित्तमिति।<sup>7</sup> जो चित्त को भली प्रकार आर्द्र करता है, वही सौन्दर्य है। अतः दर्शक के चित्त को भली प्रकार आर्द्र करने वाली वस्तु, सुन्दर है।

सौन्दर्य काव्य का एक महान व आवश्यक तत्त्व है। यह काव्य का आधार भी है। इसलिए सौन्दर्य विहीन काव्य, काव्य नहीं है। काव्य में सौन्दर्य शब्द के विविध पर्याय मिलते हैं, जिनमें चारु, रुचिर, शोभन, रमणीय, साधु मुख्य हैं। अमरकोष में 'सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्'<sup>8</sup> कहकर सौन्दर्य शब्द को स्पष्ट किया गया है। सौन्दर्य के इन्हीं पर्यायों द्वारा काव्य में इसकी उत्कृष्ट व विस्तृत व्याख्या हुई है। अतः वस्तु विशेष के जिस गुण से मानव मन में प्रसन्नता की अनुभूति होती है, वही सुन्दर है।

सौन्दर्य रूपाश्रित है, सौन्दर्य की अनुभूति रूपगत सौन्दर्य पर भी निर्भर है, जो प्रत्यक्ष दर्शन से ही संभव है। रीतिमुक्त कवि घनानंद का सौन्दर्य रूपाश्रित है। अतीव सुन्दरी सुजान के रूप, सौन्दर्य पर पूर्णतया आकर्षित होने के कारण वे जीवनभर आकर्षण की डोर में बंधे रहे। नारी के प्रति आकर्षणपरक आसक्ति उनके काव्य को प्रेरणा प्रदान करती है, यही प्रेरणा उनकी आत्मा में निहित है। वस्तुतः



सौन्दर्य की सार्थकता प्रेम द्वारा ही सिद्ध होती है। प्रेम का स्थायीभाव रति है, जो पूर्णतः सौन्दर्याश्रित है, इसलिए प्रेम से ही सौन्दर्य उत्पन्न होता है। यदि यह कहा जाय कि किसी व्यक्ति विशेष अथवा वस्तु विशेष की सुन्दरता की ओर आकृष्ट होना ही सौन्दर्य है, तो यह भ्रामक नहीं होगा।

यह सत्य है कि सौन्दर्यानुभूति की दशा आनंदात्मक या रसात्मक भी है। सहृदय या रसिक मन ही इसकी अनुभूति कर सकता है। घनानंद सहृदय व्यक्ति थे। उनकी सौन्दर्यानुभूति रूपी वधू जब हृदय रूपी भवन में मौन का घूँघट डालकर बैठती है, उस समय उस अनुभूति को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना प्रायः कठिन हो जाता है—‘उर-भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात-बनी।’<sup>9</sup> सौन्दर्य की अनुभूति सहृदय मन पर पड़ी सुन्दर वस्तु के प्रभाव की अनुभूति है, जो आनंदात्मक होती है। यह अनुभूति व्यक्ति विशेष के बाह्य सौन्दर्य अथवा आन्तरिक सौन्दर्य किसी की भी हो सकती है।

सौन्दर्य एक सहज स्वाभाविक अनुभूति है, जो संवेदनशील प्राणी को प्रभावित करती है। कोई भी वस्तु सुन्दर लगती है, इसका कोई न कोई आधार अवश्य होता है, क्योंकि एक वस्तु जहाँ किसी एक को सुन्दर प्रतीत होती है, वहीं दूसरे को असुन्दर। वस्तु का सुन्दर या असुन्दर होना, मानव मन की रुचि पर निर्भर होता है। यदि एक ओर कांटों से घिरे हुए गुलाब के फूल की सुन्दरता व आकर्षण के कारण मानव मन आकृष्ट होता है, तो दूसरी ओर कांटों से सुशोभित कैक्टस की सुन्दरता की ओर भी सौन्दर्य प्रेमी आकृष्ट होता है। किसी वस्तु के रूप, रंग, आकृति को देखने पर हमारे विचार, भाव और कल्पना तत्त्व एक विशिष्ट प्रकार के रस को उदीप्त करते हैं, इसी रस के द्वारा हमें साधारण वस्तुएँ भी आनन्द प्रदान करने वाली प्रतीत होने लगती हैं। आनन्द का दूसरा नाम ही सौन्दर्य है, अतः वह प्रत्येक वस्तु सुन्दर है, जो किसी आनन्द की अनुभूति कराती है। जगदीश गुप्त (सं०) हिन्दुस्तानी पत्रिका में संकलित लेख ‘रसानुभूति की सौन्दर्यशास्त्रीय समीक्षा’ में लक्ष्मणप्रसाद शर्मा जी का कहना है—“सौन्दर्य वस्तु का गुण है और इसके कारण हृदय को जो आनन्द की अनुभूति होती है, वह सौन्दर्यानुभूति है।”<sup>10</sup> सुन्दर वस्तुओं के सौन्दर्य से एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति होती है, जिसके द्वारा हृदय

आह्लादित हो उठता है, मन में एक विशेष प्रकार का संचार होकर आनन्द की अनुभूति होने लगती है। वास्तव में यही सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। इस सम्बन्ध में डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा जी ने कहा है—“अपनी अनुभूति, स्मृति और कल्पना आदि के द्वारा आनन्द उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को ‘सौन्दर्य’ और उस वस्तु को ‘सुन्दर’ कहते हैं।”<sup>11</sup>

सौन्दर्य का स्वरूप अनुभूतिजन्य भी है। अनुभूति के द्वारा सौन्दर्य का स्वरूप विस्तृत होता है। अनुभूति मनुष्य के आसपास के वातावरण, संस्कार एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती है, जो मनुष्य के हृदय को प्रभावित करती हैं, व्यक्ति के मन में नित्यप्रति नवीन कल्पनायें और भावनायें जाग्रत होती हैं। भावनायुक्त हृदय वाला सरस व्यक्ति ही सौन्दर्य को समझ सकता है। जिसके पास भावना ही नहीं, वह सौन्दर्य की अनुभूति नहीं कर सकता। एक नीरस प्राणी के लिए न तो चाँदनी के प्रति आकर्षण है, न ही सावन की फुहार के प्रति, वह न तो पवन की शीतलता को स्पर्श कर पाता है, न ही खिलती कलियों की मुस्कान देख सकता, ऐसे में सौन्दर्य रूप में होने पर भी प्रभावहीन है।

सौन्दर्य में भावों का सामंजस्य आवश्यक है। रामविलास शर्मा का यह वक्तव्य—“प्रायः हम कुरूप स्त्री के प्रति सुन्दर पुरुष का अगाढ़ प्रेम और कुरूप पुरुष के प्रति सुन्दर स्त्री का अनन्य अनुराग देखते हैं। यहाँ आकर वस्तुगत सौन्दर्य का सत्य धुंधला जाता है। सौन्दर्य, आत्मा और भावों, विचारों से जुड़कर एक नयी परिभाषा प्रस्तुत करता है।”<sup>12</sup> भावना के आधार पर सौन्दर्य का मूल्यांकन संभव है। नित्यप्रति नवीन, मधुर एवं सुखद भावनाओं के जाग्रत होने से मानव मन में सौन्दर्य की अनुभूति होती है। इसके विपरीत जब दृष्टा के मन में मधुर भावनायें अथवा कल्पनायें जीवन्त न रहकर मृतप्राय हो जाती हैं, तब सौन्दर्य, दृष्टा को उपेक्ष्य प्रतीत होता है। अनुभव की गहराई सौन्दर्य के स्वरूप को और अधिक निखार देती है। सौन्दर्य से प्राप्त होने वाले सुखद रस का अनुभव कर मानव मन असीम आनन्द की प्राप्ति करता है। सौन्दर्य का अनुभव व्यापक है, इससे हृदय सरस होता है, बुद्धि को नवीनता और कल्पना को सजीवता प्राप्त होती है, अतः सौन्दर्य अनुभूतिगत है।

भावों से जुड़कर ही सौन्दर्य की परख एवं अभिव्यक्ति संभव है, इसकी पूर्ण स्थिति तो मानव मन की कल्पना में रहती है। "सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी।"<sup>13</sup> वास्तव में सौन्दर्य का जन्म वस्तु के बाह्य रूप से होता है, जिसकी अनुभूति हृदय में होती है। सौन्दर्य, वस्तु से उत्पन्न आन्तरिक आल्हाद की स्थिति है। अतः सौन्दर्य बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों में होता है "सौन्दर्य को हम वस्तुगत रूपों व गुणों का ऐसा सामंजस्य कहते हैं, जो हमारे भावों में साम्य उत्पन्न कर हमको प्रसन्नता प्रदान करे तथा हमको तन्मय कर ले।"<sup>14</sup>

सुन्दर वस्तु वह है, जो किसी उच्चस्तरीय भाव को जागृत करती है। यदि साधारण वस्तु भी आनन्ददायक होती है तो वह सुन्दर कहलाती है। सौन्दर्य आनन्द का हेतु है, उसी के द्वारा मानव हृदय सरस व जीवन सार्थक है तथा मस्तिष्क को एक नवीन चेतना और कल्पना को सजीवता प्राप्त होती है। "सौन्दर्य वस्तु का वह गुण है, जो दृष्टा के मन में अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करके उसे प्रभावित करता हुआ आनन्द प्रदान करता है। सौन्दर्यानुभूति निष्काम-भाव से प्राप्त आनन्दानुभूति है अर्थात् उसमें व्यक्तिगत हानि-लाभ का विचार नहीं रहता। सुन्दर वस्तुओं के ध्यान में दृष्टा लवलीन होकर तादात्म्य स्थापित करता है।"<sup>15</sup>

भारतीय साहित्य की आत्मा ही सौन्दर्य है। भारतीय विद्वानों ने साहित्य का मूलाधार सौन्दर्य माना है। संस्कृत विद्वान् बाल्मीकि, वेदव्यास, महाकवि कालिदास, महाकवि माघ, महाकवि भारवि, आचार्य भामह, दण्डी, विश्वनाथ आदि विद्वानों ने सौन्दर्य तत्त्व के आधार पर ही भारतीय साहित्य को समुज्ज्वल बनाया है। हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मतिराम, बिहारी, घनानंद आदि प्रसिद्ध महाकवियों ने भी अपने काव्य में सौन्दर्य तत्त्व को प्रमुखता प्रदान की है और उसके आधार पर लौकिक व अलौकिक धरातल का स्पर्श किया है। सौन्दर्य के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की अपनी भिन्न-भिन्न धारणायें रही हैं। सौन्दर्य को किसी परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता। इसलिए उन्होंने विभिन्न रूपों में सौन्दर्य को व्याख्यायित किया है। भारतीय दृष्टि विशेष रूप से 'रस' पर बल देती है, रस का अर्थ मन का आद्रीकरण करना है और सौन्दर्य का अर्थ भी मन को आर्द्र करना है, इसलिए दोनों का अर्थ एक ही है।

भारतीय साहित्य का जनक सौन्दर्य है। भारतीय विचारक एवं कवि सौन्दर्य के दर्शन जितना स्थूल तत्वों में करते हैं, उससे भी कहीं ज्यादा वे आन्तरिक सौन्दर्य पर मोहित होते हैं। भक्ति साहित्य में सौन्दर्य तत्व स्थूल न होकर ईश्वरीय आराधना के रूप में रहा, जिसमें आध्यात्मिकता के दर्शन किये गये हैं। संत कबीर ने जीवन को सौन्दर्यपरक दृष्टि से देखा है, वह सौन्दर्य के सम्बन्ध में सीधी-सीधी बात तो नहीं करते, परन्तु समाज को कुत्सित स्थिति से उठाने की चेष्टा अवश्य करते हैं। यही चेष्टा उनके जीवन की एक सौन्दर्यपरक दृष्टि रही है। संत कबीर मनुष्य को उसकी परिस्थिति से लड़ना सिखाते हैं, वे केवल उसी व्यक्ति को अपने साथ मानते हैं, जो दुख की स्थिति से उबरने के लिए प्रयत्नरत है, यही उनके मानसिक सौन्दर्य का रूप है।

कृष्णभक्त कवि सूरदास ने अपने इष्ट कृष्ण के असीम सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की है, जो उनकी इष्ट प्राप्ति का मूलाधार है। सूर के कृष्ण लोकरंजनकारी हैं, उनमें माधुर्य एवं सौन्दर्य का प्राधान्य है, यही माधुर्य और सौन्दर्य उनकी भक्ति का माध्यम है। सूर ने राधा-कृष्ण के जिस रूप सौन्दर्य की कल्पना की है, वह अलौकिक होकर भी लौकिक सीमा का स्पर्श करती है, इसलिए उनके काव्य में गोपियाँ कृष्ण के सौन्दर्य दर्शन के बिना अपने को निःसहाय महसूस करती हैं, उन्हें सम्पूर्ण संसार सूना प्रतीत होता है। एक बार जब वे कृष्ण सौन्दर्य के दर्शन कर लेती हैं, तब वे उस असीम सौन्दर्य में इतना अधिक डूब जाती हैं कि उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि ही कृष्णमय प्रतीत होने लगती है। कृष्ण के असीम सौन्दर्य को देखते ही उनके मन में अनुराग पैदा हो जाता है—

“तुम हौ जग जीवनि प्रतिपालक, निदुराई नहिं कीजै।

ग्वालऽरु बाल बच्छ गो बिलखत, सूर सुदरसन दीजै।।”<sup>16</sup>

रामभक्त कवि तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर प्रभु श्री राम के रूप का दिव्य चित्रण कर रूप को ही प्रेम भावना का मूल आधार माना है। राम शील, शक्ति और सौन्दर्य से सम्पन्न दिव्य, अलौकिक पुरुष हैं। उन्होंने राम के शील, शक्ति और सौन्दर्यमय रूप की वन्दना कर उन्हें कोटि मनोज लजावन हारे कहकर अनन्त सौन्दर्य सम्पन्न माना है—

“कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।

सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी।।”<sup>17</sup>

सूफी कवि जायसी का सम्पूर्ण काव्य रूप, सौन्दर्य से आप्लावित है। जायसी का सौन्दर्य वर्णन लौकिक से अलौकिक की ओर उन्मुख हुआ है। वे पदमावती को कभी एक राजकुमारी, तो कभी ईश्वर के रूप में देखते हैं। पदमावती के रूप, सौन्दर्य की लोकोत्तर कल्पना करते हुए वे सौन्दर्य का विश्वव्यापी प्रभाव मानते हैं। सौन्दर्य के इस विश्वव्यापी प्रभाव में जायसी चिरन्तन ब्रह्म के असीम सौन्दर्य की झांकी प्रस्तुत करते हैं—

“कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।

भा निरमल तिन्ह पायँन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे।

पावा रूप रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होइ रहा।।”<sup>18</sup>

रीतिकालीन साहित्य सृजन का मूल केंद्र सौन्दर्य तत्त्व है। रीतिकवियों का सौन्दर्य बोध वस्तुतः सामंती है, इनमें कहीं—कहीं भोगपरकता और रुढ़िवादिता के तत्त्व समाहित हैं। नारी इनके सौन्दर्य का केन्द्र बिन्दु है, नारी के नख—शिख वर्णन में ही इन्होंने सौन्दर्य की अनुपम झांकी प्रस्तुत की है। रीतिकवियों के काव्य में वर्णित प्रेम और सौन्दर्य स्थूल व शारीरिक होते हुए भी भावात्मक है। रीतिकवि मतिराम सौन्दर्य के विशिष्ट पारखी हैं, उनकी सौन्दर्य परखने की पद्धति अन्य कवियों से अलग है। बाहरी चमक—दमक में सौन्दर्य का अवलोकन करने के साथ—साथ सौन्दर्य निकट आने पर और भी निरखता है। उनकी सौन्दर्यपरक दृष्टि की कसौटी अनुपम है—

‘ज्यों—ज्यों निहारि नेरे ह्वै नैननि, त्यों—त्यों खरी निकरै—सी निकाई।’<sup>19</sup>

बिहारी के काव्य में सौन्दर्य के प्रति एक अद्भुत ललक है। मानव को संसार की समस्त वस्तुएँ समय—समय पर अपनी रुचि के अनुसार अच्छी लगती हैं। बिहारी सौन्दर्य को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं—

‘समै समै सुन्दर सबै, रूपु कुरुपु न कोइ।

मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ।।’<sup>20</sup>

रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण अन्य रीतिकालीन कवियों से थोड़ा भिन्न है। इनकी दृष्टि में रूप और गुण का समन्वित रूप ही सौन्दर्य का जनक है। इनका रूपात्मक और गुणात्मक समन्वित सौन्दर्य इनकी आन्तरिकता का परिचायक है, जिसके द्वारा इनका सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण अत्यन्त सूक्ष्म, मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही हो गया है। घनानन्द को सहज सौन्दर्य रुचिकर है। अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ही उन्होंने प्रेम किया और उसके रमणीय और सहज सौन्दर्य का चित्रण किया—

“सहज—उज्यारी रूप—जगमगी जान प्यारी,

रति पै रतीक आभा है न रोम—रीस की।

मानौ घनआनँद सिँगार—रस सौँ सँवारी,

चिक मैं बिलोकति बहनि रजनीस की।।”<sup>21</sup>

अतः भारतीय विचारधारा यह स्पष्ट कर देती है कि सौन्दर्य बाहरी भी है और आन्तरिक भी। सौन्दर्य का प्रारम्भ बाह्य वस्तुओं से होता है, जो अन्तःकरण से ही परिलक्षित होता है, इसलिए आन्तरिक सौन्दर्य ही सच्चे सौन्दर्य का परिचायक है। इस सम्बन्ध में डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा का कथन है—“सौन्दर्य द्वारा हृदय सरस और जीवन उर्वर होता है। सौन्दर्य से ही बुद्धि को नवीन चेतना और कल्पना को सजीवता प्राप्त होती है।”<sup>22</sup> यह मानव जीवन का अत्यन्त आवश्यक तत्व है। मानवीय चेतना की केन्द्रीय भावना सौन्दर्य पर आधारित होने के कारण सौन्दर्य भावना, चेतना को रसानुभूति के धरातल पर प्रतिष्ठित करती है।

सौन्दर्य प्रकृति का ऐसा महत्वपूर्ण तत्व है, जिसका विवेचन पाश्चात्य विद्वानों ने भी किया है। पाश्चात्य देशों में सौन्दर्य की परम्परा अति प्राचीन रही है, पाश्चात्य विद्वान सौन्दर्य की व्याख्या विविध रूपों में करते हैं। सौन्दर्य शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द ‘Beauty’ शब्द का पर्याय है। ‘Beauty’ शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। Beauty = Beau + ty. Beau शब्द का अर्थ ऐसे व्यक्ति से लिया जाता है, जो सरस भावना से आप्लावित हो तथा ‘ty’ अंग्रेजी भाषा का प्रत्यय है। इसलिए पूरी ‘Beauty’ शब्द का अर्थ हुआ ऐसा सरस व्यक्ति, जिसके अन्तः में रति भावना की प्रबल स्रोतधारा निरन्तर रूप से प्रवाहित होती रहती हो।

सामान्यतः 'ब्यूटी' शब्द का अर्थ मानवीय सुख, वस्तुओं की आकृति, रूप-रंग तथा गुणों आदि से लिया गया है, जिसके द्वारा नेत्रों को आनन्द की प्राप्ति होती है। शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी ऑन हिस्टॉरिकल प्रिंसीपल्स में Beauty से तात्पर्य है—“A beautiful feature, a charm, an embellishment; a particular point giving pleasure or satisfaction.”<sup>23</sup> हिन्दी में सौन्दर्य शब्द के व्यापक प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'Beauty' के रूपान्तर हैं। अंग्रेजी में ब्यूटी शब्द से सम्बद्ध अन्य शब्द प्रिटी (Pretty) सामान्य आकर्षण, ग्रेसफुल, (Graceful) सुसंस्कृत व्यवहार, लवलीनेस (Loveliness) प्रशंसनीय व आनंदमयी आदि हैं। ब्यूटी शब्द से सम्बन्धित ये शब्द रूप व आकर्षण को प्रस्तुत करते हैं।

मनुष्य सृष्टि के अनादिकाल से ही सौन्दर्य प्रेमी रहा है। सौन्दर्य के द्वारा ही वह रूप की कल्पना करता है। पाश्चात्य विद्वान वड्सवर्थ, प्लेटो, कीट्स, टॉल्स्टॉय, शेक्सपीयर आदि ने सौन्दर्य के बाह्य व आन्तरिक दोनों ही रूपों का मूल्यांकन किया है। सौन्दर्य के इन विद्वानों ने अपनी पृथक-पृथक अवधारणाओं के आधार पर सौन्दर्य को व्याख्यायित किया है।

कवि शैली ने आदर्श रूप सौन्दर्य की कल्पना मानवीय प्रतिभा में की है। उनका सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण अत्यन्त सूक्ष्म व अतीन्द्रिय है। उन्होंने उस सूक्ष्म और विशिष्ट सौन्दर्य को नारी के परिप्रेक्ष्य में देखा और उसी सौन्दर्य का चरमोत्कर्ष रूप प्राप्त किया है। शैली ने नारी सौन्दर्य को एक ऐसा मानवीय रूप प्रदान किया है, जो सौन्दर्य से अवेष्टित है और वह विश्व के कण-कण में बसकर उसका नियंत्रण करते हुए उसे सौन्दर्यमय बनाये रहती है। शैली ने सौन्दर्य का अत्यन्त लोकोत्तर व आध्यात्मिक रूप ग्रहण किया है।

“As a being in beauty furlled.

Which penetrates and clasps and fills the world.”<sup>24</sup>

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने सौन्दर्य को सृष्टि का मूल तत्त्व माना है और इस मूल तत्त्व की परिकल्पना इन्होंने सत्यं शिवं सुन्दरं में की है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि जो सत्य है, वही कल्याणकारी है और वही वास्तव में सुन्दर है। “सुन्दर, शिव और सत्य एक हैं। सुन्दर ‘परम’ है, और पूर्ण है तथा सुन्दर के लिए

नैतिक होना आवश्यक है।<sup>25</sup> अतः सौन्दर्य के साथ शिव का होना भी आवश्यक है। प्लेटो के गुरु सुकरात ने भी "सत्य एवं शिव से संपृक्त सौन्दर्य की कल्पना की है।"<sup>26</sup>

कीट्स के सम्पूर्ण काव्य में उनकी सौन्दर्य चेतना, सौन्दर्यानुराग अपनी चरम सीमा पर रहा। उनके सौन्दर्य की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वे प्रारम्भ में सब वस्तुओं में सौन्दर्य के दर्शन करते थे।<sup>27</sup> जिस प्रकार एक प्रेमी को जो आनन्द प्रेमिका के दर्शन से होता है वही आनन्द कीट्स को सुन्दर वस्तु के प्राप्त होने से होता है। सौन्दर्य के विषय में कीट्स की यह धारणा है कि सौन्दर्य चाहे किसी भी रूप में हो, एक झलक मात्र ही कवि को आह्लादित करने के लिए पर्याप्त है। कीट्स का यह भी मानना था कि सौन्दर्य ऐन्द्रिय धरातल पर मन को व्युत्कल कर देता है और अनुभूति की चरम स्थिति पर यह आनन्दमयी हो जाता है। आनन्द की इसी अनुभूति के साथ रमणीयता भी बढ़ती है। कवि कीट्स प्लेटो से प्रभावित हैं, उन्होंने प्लेटो के समान सौन्दर्य और सत्य का सम्बन्ध स्थापित किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है—“सत्य ही सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही सत्य है। यही लोगों को ज्ञात है और यही सौन्दर्य का चरम श्रेय है।”<sup>28</sup>

महान कवि कीट्स सौन्दर्य के उपासक हैं। उन्होंने सौन्दर्य को शाश्वत और अविनाशी स्वीकार कर सृष्टि में परम सत्ता की अनुभूति की है और सौन्दर्य का अर्थ उस शक्ति से लिया है, जिसे हम ईश्वर कहते हैं। सौन्दर्य की उसी शक्ति की आराधना करना कवि कीट्स के जीवन का चरम लक्ष्य रहा। कीट्स ने अपनी सौन्दर्य विषयी धारणा में सत्य और शिव का सम्बन्ध स्थापित किया है। प्रारम्भ में कीट्स की सौन्दर्य विषयक धारणा वस्तु परक रही, परन्तु आगे चलकर वह सत्य, शिव के साथ मिलकर एकाकार हो गई है।

शेक्सपियर भी सौन्दर्य के विषय में वही कल्पना करते हैं, जो प्लेटो ने की है। उन्होंने भी सौन्दर्य की परिकल्पना 'सत्यं शिवं सुन्दरं' में की है। ऐसा सौन्दर्य जो सत्य व शिव से परे हो, वे उसे वास्तविक सौन्दर्य नहीं मानते। अतः शेक्सपियर के अनुसार—सौन्दर्य में सच्चाई व कल्याणकारी भाव निहित होना चाहिए। इसी कारण वे "गुलाब के सौन्दर्य को वास्तविक सौन्दर्य मानते हैं, क्योंकि गुलाब में सत्य



रूप गन्ध एवं कल्याणकारी भाव निहित होते हैं। “The rose looks fair, but fairer we it deem For that sweet odour which doth in it live.”<sup>29</sup> पाश्चात्य विद्वान हीगल के अनुसार—‘आइडियल की अभिव्यक्ति का प्रयास सौन्दर्य सृजन है और इसका माध्यम अथवा अनुकरण ही सुन्दर है।’<sup>30</sup>

अतः पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्रियों का सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण भले ही आध्यात्मिक रहा हो अथवा लौकिक, लेकिन ये विद्वान वस्तुओं के आन्तरिक पक्ष को अधिक महत्व देते हैं। इनकी मान्यता है कि प्रत्येक सुन्दर वस्तु अपनी आन्तरिक सुन्दरता के कारण सुन्दर प्रतीत होती है। यहाँ तक कि ये विद्वान आन्तरिक सौन्दर्य में ही जगत का सौन्दर्य मानते हैं। उस आन्तरिक सौन्दर्य को पाने के लिए हमारे हृदय को प्रशान्त और गम्भीर होना चाहिए क्योंकि उसके अभाव में वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन सम्भव नहीं हो सकता। वास्तव में संसार के वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन तो वही व्यक्ति कर सकता है, जिसके मानस में सौन्दर्य हो तथा जिसके हृदय में प्रेम और सौन्दर्य की अजस्र स्रोतवाहिनी प्रवाहमान होती हो, वही व्यक्ति जीवन और जगत में सौन्दर्य की प्रभुता प्राप्त कर सकता है।

सौन्दर्य की व्युत्पत्ति और उसका स्वरूप हमें यह संकेत देता है कि सौन्दर्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण देन है, जिसे कोई भी सहृदय स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता। भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विद्वान सौन्दर्य के उपासक हैं। सौन्दर्य सम्बन्धी इनकी धारणायें अत्यन्त दिव्य और उच्च हैं। सौन्दर्य ईश्वरीय विभूति है, जो व्यक्ति को उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। इन्होंने सत्यं शिवं सुन्दरं के द्वारा सौन्दर्य का वास्तविक स्वरूप स्वीकार किया है।

## 4.2 मानवीय सौन्दर्य

सृष्टि में जो रूप प्रकृति और जीव का है, पुष्प में जो रूप पराग का है, सूर्य में जो रूप प्रकाश का है और चन्द्र में जो रूप शीतलता का है, वही रूप साहित्य में सौन्दर्य का है। यह सर्वमान्य है कि जिस प्रकार जीव के अभाव में सृष्टि शून्य है, पराग के अभाव में पुष्प व्यर्थ है, प्रकाश के अभाव में सूर्य का अपना कोई प्रभाव नहीं है तथा शीतलता के अभाव में चन्द्रमा निःसार है, उसी प्रकार सौन्दर्य के अभाव

में साहित्य निर्जीव सा है। अतः साहित्य में सौन्दर्य एक ऐसा गुण है, जो मानवीय विचारों और भावनाओं पर निर्भर करता है और वही मानव हृदय को विमुग्ध कर उसमें विविध भाव तरंगे उद्वेलित करता है।

सृष्टि में ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना 'मानव' है। प्राचीन समय से ही काव्य में मानवीय सौन्दर्य का उत्कृष्ट रूप देखने को मिला है। मानव सौन्दर्य, काव्य की मूल प्रेरणा रहा है जिसको आधार बनाकर कवियों ने काव्य सृजन किया है। कविवर पंत ने ईश्वर द्वारा निर्मित रचना में मानव को सबसे सुन्दर माना है—

“सुंदर हैं विहग, सुमन सुंदर,  
मानव! तुम सबसे सुंदरतरम्,  
निर्मित सबकी तिल सुषमा से,  
तुम निखिल सृष्टि से चिर निरूपम।”<sup>31</sup>

निःसन्देह मानव सृष्टि का सुन्दरतम प्राणी है, इस सृष्टि में पशु, पक्षी, पुष्प आदि सभी सुन्दर हैं, परन्तु जो विशेष रूप, आकार, शारीरिक गठन, मानव की सुन्दरता को बढ़ाते हैं, वह पशु-पक्षी, पुष्प आदि में दिखाई नहीं देते। मानव अपने बुद्धिबल और शारीरिक विशेषताओं के कारण इस सृष्टि में सर्वाधिक सुन्दर प्राणी माना गया है।

साहित्य में प्रकृति सौन्दर्य के साथ-साथ मानवीय सौन्दर्य के भी दर्शन हुए हैं। मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत मुख्य रूप से स्त्री और पुरुष के शारीरिक व मानसिक सौन्दर्य का वर्णन देखा गया है। रीतिकालीन कवि जितने अधिक नारी और पुरुष के सौन्दर्य चित्रण के प्रति सजग रहे हैं, उतने किसी अन्य काल के कवि नहीं रहे। काव्य का मानव से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए इन कवियों ने मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत नारी और पुरुष को अपने काव्य का प्रमुख आधार बनाया और उनके बाह्य व आन्तरिक दोनों रूपों में सौन्दर्य चित्रण किया। बाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत उन्होंने मन को आकर्षित करने वाले शरीर के अंगों व शारीरिक गठन का चित्रण किया है तथा आन्तरिक सौन्दर्य के अन्तर्गत नारी के विभिन्न मनोभावों, उसके व्यवहार तथा उसके आन्तरिक गुणों को उजागर किया है।

चूँकि रीतिकालीन वातावरण दरबारी था। दरबारी वातावरण के प्रभाववश ही कविगण काव्य की रचना कर रहे थे। अतः इस युग में कवियों की दृष्टि नारी और पुरुष सौन्दर्य चित्रण पर ही केन्द्रित रही। नारी सौन्दर्य चित्रण की प्रवृत्ति इन कवियों में अधिक थी। रीतिकालीन कवियों ने सौन्दर्य के बाह्य रूप का चित्रण अधिक किया, परन्तु रीतिमुक्त कवि सौन्दर्य के आन्तरिक रूप पर अधिक बल देते रहे। चूँकि रीतिमुक्त कवियों के काव्य में प्रयुक्त मानवीय सौन्दर्य अनुभूति पर आधारित है इसलिए इनके सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण में स्थूलता व मांसलता का समावेश नहीं हो पाया है। रीतिमुक्त कवियों ने नारी के आन्तरिक सौन्दर्य को जिस मौलिक प्रतिभा के आधार पर देखा व परखा है, वह किसी अन्य धारा के कवियों में नहीं देखा गया। बच्चन सिंह जी का कहना है—“रीतिबद्ध कवियों के नखशिख वर्णन तथा स्थूल संभोग व्यापारों के चित्रण बहुत कुछ फोटोग्राफी कहे जा सकते हैं। नारी की प्रत्येक बाह्याकृति उनके कैमरे के फोकस में आ गयी है। पर हृदय से जीवंत स्पंदनों को कैमरे का लेंस कैसे पकड़ सकता है, यह कार्य रीतिमुक्त कवियों ने किया है।”<sup>32</sup>

रीतिमुक्त कवियों के काव्य में नारी के दो रूप देखने को मिले हैं—“एक नारी तो वह जो इनके व्यक्तिगत प्रेम का आलम्बन बनी है, जिसमें घनानंद की सुजान, बोधा की सुभान, आलम की शेख रंगरेजिन और ठाकुर की सुनारिन आदि हैं, जिनके शारीरिक व मानसिक दोनों ही रूपों का भाव विह्वल होकर इन्होंने चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार की वे नारियाँ जिनमें गोपी, राधा तथा परप्रेम की आलम्बन काम कन्दला, लीलावती तथा रुक्मिणी हैं।”<sup>33</sup> रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानंद वास्तव में रूप, सौन्दर्य के कवि हैं। असाधारण सौन्दर्य रमणी सुजान के रूप सौन्दर्य पर घनानंद अत्यधिक मुग्ध थे, परन्तु उन्हें दरबार छोड़ वृंदावन आना पड़ा। सुजान की स्मृति उन्हें जीवन भर सताती रही और वे मर्म में धंसे काटे की तरह जीवन-भर सुजान के प्रेम में विकल रहे। इससे स्पष्ट होता है कि जिस सुजान के लिए घनानंद में इतनी तड़प, पीड़ा, कसक और मनोवेदना थी, वह सुजान कोई साधारण युवती न रही होगी। डॉ० सभापति मिश्र का कथन है—“सुजान के असीम सौन्दर्य ने न केवल घनानंद के तन-मन को प्रभावित किया, अपितु सम्पूर्ण पृथ्वी को प्रभावित कर चन्द्रज्योत्सना की भांति आकर्षण का केन्द्र बना दिया।”<sup>34</sup> घनानंद सुजान के रूप, सौन्दर्य के रस में इतना अधिक डूबे रहे कि

उन्होंने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर सुजान के अंग-प्रत्यंग की सुन्दरता और सुकुमारता के वर्णन किये हैं, जिसमें नवीनता है, स्वच्छन्दता है और ताज़गी का भाव निहित है। नारी सौन्दर्य चित्रण में उन्होंने अपनी इसी रीझ को अभिव्यक्ति प्रदान की है, वे अपनी प्रेमिका सुजान के रूप, सौन्दर्य के नये-नये बदलते स्वरूप पर आसक्त थे—

“रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।

त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिँ आन तिहारियै।

एक ही जीव हुतौ सु तौ बारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै।

रोकी रहै न, दहै घनआनंद बावरी रीझ के हाथनि हारियै।”<sup>35</sup>

सुजान का रूप क्षण, प्रतिक्षण नवीन व प्राणवान सा प्रतीत होता है। उन्होंने अपने काव्य में सुजान का सौन्दर्य वर्णन अत्यन्त भाव-विभोर होकर किया है। इसका मुख्य कारण इनका आसक्तिमूलक प्रेम रहा है, जो वासनामय न होकर अनुभूतिपूर्ण और भावुकतापूर्ण है। नारी के प्रति घनानंद की दृष्टि सौन्दर्यपरक रही “इसलिए उनके नारी सौन्दर्य की श्रेष्ठता का श्रेय तो वास्तव में उनकी आत्मनिष्ठता को दिया जाना चाहिए।”<sup>36</sup> घनानंद ने अपने काव्य में सुजान (नारी) के रूप, सौन्दर्य का चित्रण बाह्य और आन्तरिक दोनों ही रूपों में किया है क्योंकि सौन्दर्य के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों पक्षों के मिलने पर ही सौन्दर्य की पूर्णता मानी जाती है, इनमें से किसी एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि आन्तरिक सौन्दर्य महत्वपूर्ण है, किन्तु बाह्य सौन्दर्य भी सर्वथा उपेक्षणीय नहीं है।

घनानंद ने नारी सौन्दर्य के अन्तर्गत सुजान के रूप, सौन्दर्य का क्रमबद्ध रीति से शिख से नख तक का वर्णन नहीं किया है, अपितु सुजान की समस्त छवि पर रीझकर जिस अंग विशेष का आकर्षण उनके मन को अधिक आकर्षित करता रहा अथवा जिन अंगों का प्रभाव मन पर अधिक पड़ा, उसी अंग विशेष का चित्रण करने में वे लीन हो गये। “नारी सौन्दर्य के अन्तर्गत इन्होंने नारी के अंग-प्रत्यंगों का पृथक् रूप में वर्णन, वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रूप का वर्णन, उसके रूप द्वारा दूसरों पर पड़ने वाले प्रभाव आदि का वर्णन किया है। अतः इनके काव्य में तथाकथित दृष्टि से नारी का ‘नखशिख’ वर्णन नहीं हुआ है।”<sup>37</sup> चूंकि घनानंद रीतिकाल के ही कवि रहे हैं, अतः उन पर युगीन वातावरण का प्रभाव पड़ना

स्वाभाविक था परन्तु उस प्रभाव को उन्होंने एक नवीन स्वरूप के साथ अपनाया था। यही कारण है कि सुजान सौन्दर्य वर्णन का प्रत्येक छन्द एक नयी छवि लेकर सामने आया है। यह छवि नित्यप्रति उन्हें नवीनता प्रदान करती रही। घनानंद को उस छवि में नवीनता तीन कारणों से दिखाई दी—एक तो दृष्टिकोण बदलने के कारण, दूसरा शोभा की अतिशयता के कारण और तीसरा हृदयगत प्रेम के आधिक्य के कारण। सुजान के साक्षात्कृत सौन्दर्य चित्रण करने का घनानंद में स्वानुभूतपूर्ण सौन्दर्य का भाव मिलता है।

कोमल, चिकने, काले और लम्बे बाल भारतीय नारियों के आदर्श माने गये हैं। पुरुष आदिकाल से ही नारियों के ऐसे केशों के प्रति अत्यधिक आकर्षित रहा है। लम्बी लटकती हुई वेणियाँ सौन्दर्य पारखियों की प्रशंसापात्र रही हैं। बंधी हुई वेणियों के अतिरिक्त बिखरे बालों का सौन्दर्य कहीं अधिक मादक होता है। इसलिए घनानंद ने बिखरे हुए केशों के वर्णन में अधिक रुचि प्रदर्शित की है—

“चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,

कहा कहीं सोभा भाग—भरे भाल सीस की।”<sup>38</sup>

सुजान के केश सहज ही चमकीले और चिकने हैं। उन्हें चिकना और चमकीला बनाने के लिए किसी कृत्रिम उपादान की आवश्यकता नहीं है। यही केश जब बिखर कर इधर उधर उड़ते हैं, तब कुछ लटें उनके मुख पर बिखर जाती हैं, जिससे उनके (सुजान) मुख की शोभा अत्यधिक बढ़ जाती है। ऐसे बिखरे हुए बालों की सुन्दरता को देखकर घनानंद मोहित हो जाते हैं और अन्ततः वे अपनी प्रेयसी के काले, चिकने, चमकीले और कोमल केशों की सुन्दरता का बखान कर बैठते हैं।

नेत्रों की सुन्दरता का वर्णन करना कवियों का प्रिय विषय रहा है। साहित्य में नेत्रों की सुन्दरता का चित्रण विस्तृत रूप से हुआ है। प्रेम को मादक बनाने के लिए नेत्रों का बड़ा और तीक्ष्ण होना महत्वपूर्ण माना गया है। कटाक्ष करना, आँखों का संकेत व्यापार है, कटाक्ष द्वारा हृदय प्रेम भावना की सूचना प्रेमी तक प्रेषित की जाती है। आँखों का यह सांकेतिक व्यापार स्वयं में तो प्रभावोत्पादक है, साथ ही सौन्दर्य की आदर्श कल्पना में नेत्रों का विशाल होना आवश्यक माना गया है। घनानंद ने नारी सौन्दर्य चित्रण में उसके नेत्रों की विशालता और तीक्ष्णता का हृदयग्राही चित्रण किया है। सुजान के नेत्र विशाल, तीक्ष्ण और चंचल हैं, नेत्रों की

चंचलता कवि के मन को घायल कर देती है। जब से कवि ने सुजान के विशाल नेत्रों को देखा है, तब से उनके नेत्र अपने बस में नहीं रह गये हैं। सुजान के नेत्रों को देखकर उनकी प्यास और अधिक बढ़ गयी है। वे हर समय उसके नेत्रों को निहारते हैं, तब भी वे थकित नहीं होते—

“बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछ—कलानि मैं पंडित।

बेधि कै प्रान करैँ फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित।”<sup>39</sup>

सुजान के चंचल नेत्र बड़े विशाल हैं, मतवाले हैं, रसीले हैं और बांकपन लिये हुए हैं, ये नेत्र घनानंद को अपने कटाक्ष से बेसुध करने वाले हैं। प्रेमव्यापार में कटाक्ष का महत्व परम्परा से स्वीकृत है। बड़ी-बड़ी आँखें प्रेमोत्पादन में वह स्थान नहीं रखती, जो विलक्षण चितवन वाली आँखें रखती हैं। इस अनुभूति को व्यक्त करते हुए घनानंद ने लिखा है—

“रूप—मतवारी घनआनंद सुजान प्यारी,

घूमरे कटाछि घूम करैँ कौन पै घिर।”<sup>40</sup>

सुजान एक नर्तकी थी। नृत्य करते समय जब वह कटाक्ष फेंकती थी, तो घनानंद उसे देखते ही अपनी सुध—बुध खो बैठते थे, ऐसा प्रतीत होता है, मानो घनानंद की गति उसके अभिनय को देखकर बिक गई हो।

साहित्य में भौहों की वक्रता का चित्रण सांकेतिक भाषा का सूचक है। भौहों का वक्र होना सौन्दर्य का एक विशेष गुण माना गया है। इस दृष्टि से सुजान की भौहों में जो बांकपन और वक्रता है, घनानंद उस पर मोहित हुए बिना नहीं रहते—

“राजि रही भृकुटी जुटौँहीं बंक तनि है।”<sup>41</sup>

घनानंद सौन्दर्य के पारखी थे, सुजान के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते समय उनकी दृष्टि सुजान के प्रत्येक अंग पर गई है। सुजान की नासिका अत्यन्त प्रशंसनीय है, ‘नाक चढ़ी रहना’ एक मुहावरा है, जो स्वभाव के मूल में रूप का अभिमान कराता है। रूप के कारण जिस सुन्दरी को आदर मिलता है, उसका औरों की अवहेलना करना स्वभाव हो जाता है, निष्ठुर सुजान की प्रकृति ऐसी ही थी। चूंकि सुजान अत्यन्त रूपवती थी, उसको अपनी सुन्दरता पर अभिमान भी था। सुजान के विशाल नेत्रों के बीच में चढ़ी हुई या ऊँची उठी हुई नाक घनानंद के मन को मोह लेती है—

“अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न,  
 मन—मग मुँदै जाको बेह सब ओर तैं।  
 बड़े मैन—मतवारे नैनन के बीच परी,  
 खरियै निडर ऊँची रहै रूप—जोर तैं।  
 सहज बनी है घनआनंद नवेली नाक।”<sup>42</sup>

नारी स्वयं सौन्दर्य की खान है, फिर यदि उसके अंग—प्रत्यंगों के सौन्दर्य का वर्णन किया जाय, तो उस सौन्दर्य में और अधिक वृद्धि हो जाती है। नारी सौन्दर्य का वर्णन करने में घनानंद ने अपने हृदय और भावों का योग देकर उसे और भी सजीव बना दिया है। इस दृष्टि से घनानंद की सुजान जब मुस्कराती है, तो उसकी उज्ज्वल दंतपंक्ति मोतीमाल के समान प्रतीत होती है, जब वह हंसती है, तब कपूर और गुलाल जैसी सुगन्धि बिखेरती है—

“सहज हँसौंहीं छबि फबति रंगीले मुख,  
 दसननि जोतिमाल मोतीमाल सी रुरै।”<sup>43</sup>

× × ×

दसन—बसन ओली भरियै रहै गुलाल,  
 हँसनि—लसनि त्यों कपूर सरस्यौ करै।”<sup>44</sup>

मुख का वर्णन करते समय घनानंद की दृष्टि सुजान की ग्रीवा की ओर भी जाती है। घनानंद ने सुजान की ग्रीवा को गर्वीली बताया है और उसे मान के समय एक विशेष मुद्रा में मुड़ जाने वाली कहा है। घनानंद के प्राण ऐसी ही मुद्रा पर भीग (न्यौछावर) जाते हैं—

“सरस सुजान घनआनंद भिजावै प्रान,  
 गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पैर दुरै।”<sup>45</sup>

सुजान के अंग—प्रत्यंग के सौन्दर्य रस में घनानंद ऐसे डूबे हुए थे कि उन्हें सुजान के अतिरिक्त और कोई दिखाई नहीं देता था। सुजान की पीठ, कटि, उदर और पैर आदि की सुन्दरता भी कम नहीं है। उसके अंगों की सुन्दरता व आकर्षण घनानंद को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। सुजान की पीठ की सुन्दरता घनानंद को अपनी ओर बरबस ही आकर्षित कर लेती है—

“सोभा-सुमेरु की संधितटी किधौँ मान-मवास गढ़ास की घाटी।

जान की पीठि लखँ घनआनँद आनन आन तँ होति उचाटी।”<sup>46</sup>

×

×

×

तो कटि-भेदहिँ किंकिनि जानति, तेरो सौँ ऐरी सुजान हौँ जानौ।”<sup>47</sup>

नारी सौन्दर्य का वर्णन करते समय घनानंद की दृष्टि सुजान के पांव की सुन्दरता की ओर भी गई है। सुजान के मेंहदी रचे पैर घनानंद को बड़े ही शोभायमान प्रतीत होते हैं। मेंहदी चाहे हाथ में रचे अथवा पैर में, उससे अंग की सुन्दरता और अधिक बढ़ जाती है क्योंकि मेंहदी के रंग देने के पश्चात् वह अंग और अधिक निखर उठता है। अतः घनानंद सुजान के मेंहदी रचे पैरों की सुन्दरता को देखकर कह उठते हैं—

“मिहँदी लगि पायनि रंग लहै सुठि सौँधो सु अंगनि संग बसै।”<sup>48</sup>

घनानंद प्रतिपल-प्रतिक्षण सुजान के इसी सौन्दर्य के पान के लिए आतुर रहते थे। “उसका सौन्दर्य सागर की तरह था, जिसमें सुन्दरता की लहरें हर क्षण उठती रहती थीं। प्रेमी घनानंद उस सागर की लहरों रूपी प्रेम को पी जाने को आतुर रहते थे।”<sup>49</sup>

वस्तुतः अनुभूति के बिना कल्पना निरर्थक और निराधार है। कवि अपनी अनुभूति को कल्पना द्वारा सजीव बनाकर दूसरों तक पहुँचाता है। घनानंद भी अपनी अनुभूति को साकार कर सुजान तक पहुँचाना चाहते थे। दरबार में रहने वाली सुजान को घनानंद नित-प्रति देखते रहते थे। सुजान के मुख की कांति को देखते हुए घनानंद के नेत्र थकित नहीं होते थे। उसका (सुजान) मुख मण्डल कांति से दमकता रहता था, जिसके आगे करोड़ों चन्द्रमा का सौन्दर्य भी फीका पड़ गया था। घनानंद सुजान की मधुर मुस्कान, मीठी प्रेम पगी बातें और उसकी मनोहर छवि को देखकर हतप्रद रह जाते हैं—

“लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,

लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं।

छबि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,

रस निचुरत मीठी मृद मुसक्यानि मैं।”<sup>50</sup>

घनानंद सुजान की रसयुक्त बातें, मधुर मुस्कान पर पूर्णतया मुग्ध हैं। सुजान की रूप राशि देखने के पश्चात् से ही घनानंद के नेत्रों की टकटकी बंध कर रह



गयी है, उनकी दृष्टि सुजान (उन) पर से हटती ही नहीं है। घनानंद के नेत्र अनिमेष उसकी ही रूप, राशि पर केन्द्रित रहना चाहते हैं—

“वह रूप की राशि लखी तब तैं सखी आँखिन कैं हटतार भई।”<sup>51</sup>

अपने प्रिय के रूप दर्शन से घनानंद ने स्वयं को धन्य समझा है। विषादग्रस्त घनानंद बीते दिनों की स्मृति कर सुजान की मुस्कान, स्वभाव और मीठी बातों का स्मरण कर भाव-विभोर हो उठते हैं। सुजान की मतवाली चाल, मधुर वंशी की ध्वनि, उसका खिलखिलाकर हंस पड़ना आदि ऐसे क्षण रहे हैं, जिससे घनानंद के मानसिक पटल पर सुजान की छवि इस प्रकार अंकित हो गई है, कि हटाने पर भी नहीं हटती। सुजान का वही चतुराई के साथ चित्त का हरण करना, वही छैल छबीला अंदाज, वही हाव-भाव, क्षण-भर के लिए भी नहीं भुलाया जा सकता। बिडम्बना यह है कि सुजान की वही स्मृति घनानंद को विस्मृति की अवस्था में डाल देती है। चूंकि सुजान का यही सौन्दर्य घनानंद की आँखों में बस गया है, जिसके स्मरण मात्र से ही घनानंद बेसुध हो जाते हैं—

“वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै

लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।

वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,

वहै हँसि दैन हियरा तैं न टरति है।

वहै चतुराई सौँ चिताई चाहिबे की छबि,

वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।

आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,

सुधि सब भाँतिन सौँ बेसुधि करति है।”<sup>52</sup>

सुजान का रूप, सौन्दर्य असीम है, अनन्त है। उसके रूप, सौन्दर्य पर जब कामदेव भी न्यौछावर हो जाते हैं, तो घनानंद जैसे प्रेमी कवि का क्या कहना? घनानंद का काव्य अन्तर्मुखी है। उन्होंने सुजान के रूप सौन्दर्य का, उसके यौवन की मस्ती का और उसके अभिमान को बड़ी चतुराई के साथ साकार किया है। घनानंद ने सुजान के शरीर की समस्त शोभा को, चाल-ढाल को शब्दमय चिह्नों द्वारा प्रस्तुत किया है। सुजान के अंगों की कांति देखकर घनानंद को ऐसा प्रतीत

होता है, मानो उसके अंगों की आभा ही स्रवित होकर संसार के नाना रंगों के रूप में अवतरित हुई हो। सुन्दर सलोने अंगों की ऐसी आभा देखकर घनानंद मुग्ध हो जाते हैं—

“अंग-अंग-आभा संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,  
रचि सचि लीनी सौँज रंगनि घनेरे की।  
लिखि राख्यौ चित्र यौँ प्रबाहरूपी नैननि पै,  
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी।”<sup>53</sup>

इस प्रकार सुजान के असीम सौन्दर्य का वर्णन करते-करते घनानंद ने अपने काव्य में नारी सौन्दर्य को मूर्त रूप प्रदान किया है। उन्होंने नारी सौन्दर्य को उस असीम शक्ति का रूप दिया है, जिसके मूर्त रूप के समक्ष कवि की वाणी और विचार दोनों ही शक्ति खो बैठते हैं। वास्तव में नारी सौन्दर्य का इतना सजीव रूप और क्या हो सकता है, कि घनानंद उनका साक्षात् सौन्दर्य देखकर भी तृप्त नहीं होते और अतृप्त ही रह जाते हैं, उनकी दृष्टि चकित हो जाती है और मति थकित हो जाती है—

“रूप की उझिल आछे आनन पै नई नई,  
तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है।  
उपटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,  
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है।  
महारस-भीर परैँ लोचन अधीर तरैँ,  
ओछी ओक धरैँ प्यास-पीर-सरसई है।  
कैसेँ घनआनंद सुजान प्यारी छबि कहौँ,  
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है।”<sup>54</sup>

सुजान के रूप, सौन्दर्य का विश्लेषण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्द मनोवृत्ति के कारण घनानंद ने सुजान के रूप, सौन्दर्य की जो छटा प्रस्तुत की है, वह अनुपम है और अद्वितीय है। सुजान के स्थूल अंगों के सौन्दर्य का वर्णन करने के साथ ही साथ उनकी दृष्टि सुजान के अंगों की कान्ति, सहजता, उज्ज्वलता और सुकुमारता की ओर भी गई है, जिससे सुजान का नैसर्गिक रूप

मुखरित हो उठा है। इस प्रकार घनानंद ने अपनी प्रेयसी सुजान के समूचे शारीरिक अंगों के सौन्दर्य का वर्णन किया है, जिस पर प्रेमी हृदय जी जान से न्यौछावर है। वास्तव में रूप सौन्दर्य का यह वर्णन किसी कल्पित सौन्दर्य का वर्णन नहीं है, वरन् उस सुजान का है, जिसे वे नित्य देखते थे। उनकी इसी व्यक्तिनिष्ठता के कारण उसका रूप, सौन्दर्य हिन्दी काव्य जगत में अद्वितीय बन पड़ा है। सुजान का रूप, सौन्दर्य इतना प्रभावशाली था कि प्रेमी का समूचा अन्तर्बाह्य अस्तित्व उस सुजान पर अर्पित हो गया था। घनानंद के रूप, सौन्दर्य वर्णन की एक सर्वोत्कृष्ट विशेषता यह रही है कि उनकी आन्तरिकता और स्वाभाविकता के द्वारा सुजान का रूप, सौन्दर्य और अधिक दीप्तिमान हो उठा है।

घनानंद ने पुरुष सौन्दर्य के अन्तर्गत कृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा प्रदर्शित की है। सुजान के द्वारा विश्वासघात किये जाने पर घनानंद का सुजान प्रेम कृष्ण प्रेम में परिवर्तित हो गया था। घनानंद अनन्त सौन्दर्य के पुजारी थे। सुजान से अनन्य प्रेम करने के कारण वे सुजान को आजीवन भुला न सके। उनका सुजान सौन्दर्य, कृष्ण सौन्दर्य में परिवर्तित हो गया। पुरुष सौन्दर्य के अन्तर्गत कृष्ण के बाह्य और आन्तरिक दोनों ही रूपों का चित्रण हुआ है। पुरुष के बाह्य सौन्दर्य से तात्पर्य उसके शारीरिक सौन्दर्य व दृष्ट-पुष्ट शरीर से है तथा आन्तरिक सौन्दर्य से तात्पर्य उसके मानसिक सौन्दर्य व आन्तरिक भावोद्गारों से है। यद्यपि घनानंद के पुरुष सौन्दर्य चित्रण में कहीं-कहीं परम्परा के दर्शन होते हैं, परन्तु फिर भी उनका सौन्दर्य वर्णन सूक्ष्मता और स्वतन्त्रता से युक्त है। "पुरुष सौन्दर्य का विविध रूपों में चित्रण कर उन्होंने श्री कृष्ण के रूप वर्णन में अपनी सूक्ष्मता, मौलिक सूझबूझ और सौन्दर्यबोध का परिचय दिया है।"<sup>55</sup>

घनानंद के साँवरे सलोने कृष्ण सौन्दर्य की खान हैं। उन्होंने श्री कृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में अपना तन, मन अर्पित कर दिया है। कृष्ण के रूप का वर्णन करते हुए उन्होंने उनकी वेश सज्जा, अंग-कान्ति, शारीरिक बनावट, तिरछी चितवन आदि का सजीव वर्णन किया है—

“इंदीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,  
 सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै।  
 पीरियै पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखै,  
 केसर बिचित्र अंग भाव रंग सौँ सनै।  
 मुरली मैँ गौरी धुनि ढौरी घनआनंद तैँ।”<sup>56</sup>

× × ×

मोहन मधुर किसोर पै, मदन वारियै लाख।”<sup>57</sup>

श्री कृष्ण के सौन्दर्य के समक्ष करोड़ों कामदेवों का सौन्दर्य भी फीका पड़ गया है। श्रीकृष्ण ने जूही की माला से अपना शृंगार कर रखा है। पत्तों की छतरी सिर पर धारण कर रखी है। पीली पछौरी धारण किये हुए कृष्ण अपनी मुरली की ध्वनि से समस्त जन को मुग्ध कर देते हैं। घनानंद श्री कृष्ण के साँवले सलोने रूप, उनके वस्त्र परिधान तथा रसिक स्वभाव पर पूर्णतया मोहित थे। श्री कृष्ण के यौवन की कांति, नेत्रों की चपलता, अधरों की अरुणिमा, तीक्ष्ण-नासिका, धवल दंत-पंक्तियों के सौन्दर्य को सभी ब्रजवासी अपने-अपने अनुसार अनुभव करते रहते हैं—

“मोहन मादक रूप लखि, छके रहत ब्रज लोग।  
 अपने अपने भाव सौँ, चहत भावतो भोग।”<sup>58</sup>

घनानंद सुजान के सौन्दर्य से आकर्षित थे, उसके प्रति आसक्त थे, ठीक वही भाव कृष्ण के रूप सौन्दर्य में भी दिखाई देता है। कृष्ण का शरीर नव वनमाल धारण किये हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहा है, जिसे देखकर घनानंद मंत्र मुग्ध होते दिखाई देते हैं—

“अति सुगंध अभिराम तन, पहिरैँ नव बनमाल।”<sup>59</sup>

माथे पर लगा कुंकुम का टीका और अधरों पर रखी वंशी कृष्ण के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ा देती है। उनके इस सौन्दर्य पर हजारों-करोड़ों कामदेव भी न्यौछावर हैं—

“भाल-भाग बड़भाग-निधि, रुचिर सु कुंकुम खौरि।”<sup>60</sup>  
 × × ×  
 मुरली फबि अधरानि मैँ, अति मादक धुनि पूरि।”<sup>61</sup>

कृष्ण अपनी मुरली से मादक तान छेड़ देते हैं, जिस पर घनानंद मुग्ध हो उठते हैं। वह कृष्ण के सौन्दर्य को टकटकी लगाये देखते रहते हैं, क्योंकि वह सौन्दर्य सुख देने वाला है, ऐसा सुख जिसको बिना वाणी के ही समझ लिया जाता है—

“स्रवन-सुभगता हेरि कै, तरत न लोभी नैन।

कहत लगी सुखदै न सौँ, बिन बानी हित-बैन ॥”<sup>62</sup>

पुरुष सौन्दर्य के अन्तर्गत कृष्ण के चपल नेत्र, भृकुटी, चितवन, नासिका, लाल अधर, दंतपंक्ति आदि ने घनानंद के हृदय को हर लिया है। वे कृष्ण के इस सौन्दर्य पर पूर्णतया रीझ गये हैं। इसीलिए वे कृष्ण के सभी अंग-प्रत्यंगों का वर्णन करते हुए कहते हैं—

“सुंदर सरल लोनो ललित रँगीलो मुख,

जोबन-झलक क्यों हूँ कही न परति है।

लोचन चपल चितवनि चाय-चोज-भरी,

भृकुटी सुठौन भेद-भायनि ढरति है।

नसिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,

हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।

नख-सिख आनँद उमंग की तरंग बढ़ि,

अंग अंग आली छबि छलक्यौ करति है ॥”<sup>63</sup>

हालांकि घनानंद के काव्य में पुरुष सौन्दर्य का चित्रण कम ही हुआ है, पर जितना भी हुआ है, वह अत्यन्त सजीव है। पुरुष सौन्दर्य चित्रण में घनानंद की अपनी मौलिक दृष्टि एवं सूझबूझ का परिचय मिलता है—

“लाल पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे,

मैन-सर साँधे सो करन चित्त-छाय को।

जोबन झलक अंग रंग तकि रंक, छूटी

कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।

गरे गुंजमाल उर राजत बिसाल नख—

सिख लौँ रसाल अति लोनो स्याम काय को ॥”<sup>64</sup>

घनानंद का पुरुष सौन्दर्य अत्यन्त नवीन तथा अनुभूतिपूर्ण है। डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा का कथन है—“कृष्ण के रूप सौन्दर्य की एकदम निजी भावना ही घनानंद के काव्य में मिलती है। जैसा बाँकपन उनकी प्रेम व्यंजना में देखा जाता है, वैसा ही बाँकपन उनके रूप चित्रों में भी है। सौन्दर्य के साथ-साथ उसके प्रभाव और प्रीति के उद्रेक का भी मर्मस्पर्शी चित्र मिलता है।”<sup>65</sup> घनानंद की पुरुष विषयक सौन्दर्य धारणा भी अत्यन्त स्वच्छन्द है। कृष्ण घनानंद को अत्यन्त प्रिय हैं, उनके कृष्ण आनंद की वर्षा करने वाले हैं, घनानंद उनके चंद्रमुख के दर्शन की लालसा रखते हैं। वे कृष्ण के नेत्रों की चपलता, उनकी मधुर मुस्कान व मीठी बातों पर मुग्ध हैं। विरह में पीड़ित घनानंद अपने घनश्याम को उनका कर्तव्य याद दिलाते हुए कहते हैं—

“छबि को सदन, मोद-मंडित बदन-चंद,  
तृषित चखनिलाल! कब धौँ दिखायहौ।  
चटकीलो भेष करेँ, मटकीली भाँति साँ ही,  
मुरली अधर धरेँ, लटकत आयहौ।  
लोचन दुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह—  
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।  
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,  
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ।”<sup>66</sup>

घनानंद न केवल सुजान के सौन्दर्य के प्रति ही आकृष्ट रहे हैं, अपितु कृष्ण के रूप, सौन्दर्य ने भी उन्हें व्याकुल कर रखा है। अपनी प्रेयसी सुजान के रूप सौन्दर्य वर्णन में वे स्वयं प्रत्यक्ष रूप में आ जाते हैं, परन्तु कृष्ण सौन्दर्य के प्रति उनका आकर्षण गोपियों के माध्यम से सजीवता प्राप्त करता है। कृष्ण की छवि को गोपियाँ हृदय में बसा लेती हैं, वह स्वयं को भी भूल गयी हैं क्योंकि श्रीकृष्ण ने उनका चैन छीन लिया है। गोपियों को श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई अच्छा नहीं लगता। वे अपने अन्तर में केवल कृष्ण को ही बसाना चाहती हैं—

“जाके उर बसी रसमयी छबि साँवरे की,  
ताहि और बात नीकी कैसँ करि लागिहै।”<sup>67</sup>

अतः सुजान के सौन्दर्य के समान ही श्रीकृष्ण का सौन्दर्य भी घनानंद के मन को घायल कर देता है। उनके लिए सुजान और श्रीकृष्ण के सौन्दर्य में कोई भेद नहीं रहता। यही कारण है कि सुजान से दूर होने के कारण घनानंद के मन में जो सुजान की छवि बसी हुई थी, उसी छवि में अन्ततः वह कृष्ण के रूप, सौन्दर्य के दर्शन करने लगते हैं। इस रूप सौन्दर्य में उन्हें आन्तरिक सुख की प्राप्ति होती थी। घनानंद के भावुक मन में जो सौन्दर्य वृत्ति जाग्रत हुई, उसी सौन्दर्य वृत्ति का बड़ी भावुकता के साथ उन्होंने सौन्दर्य चित्रण किया है। यही कारण है कि रीतिकाव्य में घनानंद के सौन्दर्य चित्रण की कोई समता नहीं कर सका है। घनानंद का पुरुष सौन्दर्य चित्रण मौलिक और स्वतन्त्र है। उन्होंने परम्परागत रूप में सौन्दर्य चित्रण तो अवश्य किया, परन्तु नवीन दृष्टि के साथ। आन्तरिकता से युक्त इनका सौन्दर्य चित्रण अपने आप में अनूठा है, मांसलता और अश्लीलता जिसे छू भी नहीं पायी है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि घनानंद का सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण भावप्रधान है। उनके काव्य में मानवीय सौन्दर्य को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के कारण और व्यक्तिगत रूप से प्रेम करने के कारण उन्होंने सौन्दर्य की जो छटा प्रस्तुत की है, वह वास्तव में अत्यन्त सहज और प्रभावी है।

### 4.3 प्रकृति सौन्दर्य

प्रकृति आरम्भ से ही मानव की चिर सहचरी रही है। सृष्टि के आरम्भ से ही मानव और प्रकृति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव ने सर्वप्रथम प्रकृति की गोद में ही अपनी आँखें खोलीं। मानव आरम्भ से ही प्रकृति की ओर आकर्षित होता रहा है। प्रकृति स्वभाव से ही सुन्दर है और मनुष्य इसका उपभोक्ता है। सौन्दर्य की खोज मानव की आदि पिपासा है, वह ऐसी वस्तु की खोज करता है, जो चिर सौन्दर्यमयी हो तथा सुख-दुख की सहचरी हो। प्रकृति इन सब उपादानों से पूर्ण दिखाई देती है। मानव, प्रकृति के कठोर रूपों पर चकित होकर हमेशा उसके सम्पर्क में रहता है। “मानव की चिर सहचरी प्रकृति मानव के जीवन की बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती हुई आन्तरिक अनुभूतियों को अपने सौन्दर्य से प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता रखती है।”<sup>68</sup>

“व्युत्पत्ति के आधार पर ‘प्रकृति’ शब्द अधिक अर्थ के बोधक ‘प्र’ उपसर्ग पूर्वक ‘कृ’ (करना) धातु में ‘क्तिन’ प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ है, ‘अधिक रचना’ अथवा मानव के अतिरिक्त किसी अन्य (शक्ति या सत्ता) के द्वारा की गयी विशेष रचना।”<sup>69</sup> अतः “प्रकृति से अभिप्राय मनुष्येतर जगत से है, जिसमें नदी, पर्वत, वन, चंद्र ज्योत्सना, प्रातः कालीन एवं सान्ध्य-गगन की रंग-बिरंगी छटायें और वन में मृगों की उछलकूद आदि आते हैं—वायु का व्यंजन करना, निर्झरों का कल-कल संगीत सुनाना, चन्द्रिका का खिलखिलाकर हंस देना, सूर्य का अपनी ज्योति विकीर्ण कर देना और शीतल मंद-सुगंधित-समीर नवस्फूर्ति का संचार कर देता है।”<sup>70</sup>

प्रकृति का अर्थ है—स्वाभाविक, अतः प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुएँ आती हैं, जिन्हें मानव ने अपने हाथों से सजाया या संभाला नहीं है, जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती हैं। प्रकृति अपने सौन्दर्य से मानव मन को सदैव से ही अत्यन्त प्रभावित करती आयी है। प्रकृति के रूपों से प्रभावित होकर ही मनुष्य (कवि) काव्य का सृजन करता है, वह प्रकृति के सौन्दर्य को अपनी कल्पना और अनुभूति का विषय बनाता है और यही अनुभूति अभिव्यक्ति प्राप्त कर कविता बन जाती है। प्रकृति स्वयं तो मूक और जड़ है, कवि या कलाकार जब तक उसे वाणी नहीं देता, तब तक उसका सौन्दर्य उभर कर नहीं आता है। कवि प्रकृति के साथ अपने हृदय के भावों से तादात्म्य स्थापित करता है और उसके सौन्दर्य को काव्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। “वनस्पति-जगत का हलके-गहरे रंगों का छायातप, पक्षियों का स्वर-लय तरंगित संगीत, आकाश में फैला पर्वत का महान् विस्तार, सरिता का निरन्तर गतिशील प्रवाह, गगन में फैली उषा की अरुणिमा आभा और रजनी का तारों से युक्त नीला आकाश—यह समस्त प्रकृति का शृंगार मानव के मन के भावों की सौन्दर्य-स्थिति प्रदान करता है।”<sup>71</sup> स्पष्ट है कि सृष्टि के विस्तार में प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रकृति न केवल मानव जीवन को प्रभावित करती है, बल्कि वह मानव जीवन को प्रेरित भी करती है। विज्ञान की प्रगति ने मानव को प्रकृति के वास्तविक सौन्दर्य से चाहे कितना भी दूर कर दिया हो, परन्तु मनुष्य को वास्तविक आनन्द की



अनुभूति प्रकृति के सुन्दर, स्वच्छ वातावरण में ही होती है। प्रकृति मानव के सुख-दुख में साथ रहती है। "सुख की सहृदय सखी, दुख की करुण प्रतिमूर्ति, मुस्कान सी मधुर, रोदन सी करुण और कसक सी कटु, सभी भावों का एक साथ समन्वय लिए वह सदा से ही मानव की अनुगता बनी रही है।"<sup>72</sup> यही कारण है कि मानव मन प्रकृति के बाह्य रूप के साथ ही अपने अन्तःकरण का सामंजस्य बनाये रहता है। इसलिए जो व्यक्ति जितना अधिक भावुक होता है, वह उतना ही अधिक प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध होता है और जो व्यक्ति जितना अधिक जिज्ञासु मन रखता है, वह उतना ही अधिक प्रकृति से एक नवीन प्रेरणा ग्रहण कर जीवन सफल बनाता है।

मानव और प्रकृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में अशोक शुक्ल का कहना है—“मानव का मन जब प्रकृति में पूर्णतया रम जाता है, तभी उसके जीवन की सार्थकता है, अन्यथा उसका जीवन खोखला है।”<sup>73</sup> प्रकृति का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। कवि भी मानव होने के नाते प्रकृति के सौन्दर्य से बच नहीं पाता है। क्योंकि इससे उसकी भावनाओं का उन्नयन और परिष्कार होता है तथा वह अपने अहंभाव से ऊपर उठ जाता है। वह प्रकृति के प्रति अनुरागमय हो जाता है, मानव मन की यही दशा रसानुभूति कहलाती है। प्राकृतिक सौन्दर्य का आस्वादन कर मानव इसी दशा को प्राप्त करता है। प्रकृति निरपेक्ष, मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारतीय कवियों को प्रकृति की सुरम्य गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे हरे-भरे उपवनों में तथा सुन्दर जलाशयों के तटों पर विचरण करते हुए प्रकृति के नाना मनोहारी रूप से परिचित हुए हैं। अतः “भारतीय कवि प्रकृति के संश्लिष्ट तथा सजीव चित्र जितनी मार्मिकता तथा उत्तमता से अंकित कर सकते हैं एवं उपमा-उत्प्रेक्षाओं के लिए जैसी सुन्दर वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं, वैसा रूखे-सूखे देशों के निवासी कवि नहीं कर सकते। यह भारत-भूमि की ही विशेषता है कि यहाँ के कवियों का प्रकृति वर्णन तथा तत्संभव सौन्दर्य ज्ञान उच्चकोटि का होता है।”<sup>74</sup>

हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति के सुरम्य वर्णन देखने को मिलते हैं। आदिकाल से ही कवियों ने प्रकृति के साथ रागात्मक

सम्बन्ध स्थापित कर काव्य में उसके सौन्दर्य का वर्णन किया है, फिर चाहे चंदवरदाई हों, विद्यापति अथवा जायसी हों या रीतिकाल का शृंगारपरक काव्य हो, सभी ने जीवन के साथ प्रकृति का सम्बन्ध स्थापित किया है। कवि विद्यापति ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। भक्तिकाल में प्रकृति का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में है। सूफी कवि जायसी के काव्य में प्रकृति अपने विविध रूपों में उजागर हुई है। 'पदमावत' में बारहमासा और षड्ऋतुवर्णन जायसी का प्रकृति के प्रति प्रेम और सौन्दर्यपरक दृष्टि दिखलाता है।

रीतिकाल चूंकि शृंगार काल रहा है, इसलिए इस युग में शृंगारपरक काव्य की प्रधानता है। शृंगार की संयोग और वियोग परक स्थितियों का चित्रण करने में प्रकृति ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अतः रीतिकालीन कवियों की दृष्टि न केवल नारी और पुरुष सौन्दर्य की ओर ही रमी है, बल्कि प्रकृति सौन्दर्य की अनुपम छटा की ओर भी उनकी दृष्टि गयी है। प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण इन कवियों ने अधिकांशतः नायक-नायिका के भावों को उद्दीप्त करने के लिए किया है। दुर्गाशंकर मिश्र जी का इस सम्बन्ध में कहना है—“भक्तिकालीन कवियों का ध्यान जहाँ पीतांबरधारी कृष्ण को देख कर नीले-नीले वारिद खंडों की ओर जाता रहा, वहीं आगे चलकर कवियों की दृष्टि में कोकिला यदि बोलती थी, तो नायिका को प्रियतम का स्मरण कराने के लिए, विकसित पलाश के पुष्प अंगारों के सदृश प्रतीत होते थे और शीतल समीर, चंद्र, ज्योत्सना, मेघ तथा चित्रित ऋतुओं के स्थूल स्वरूपों का ही चित्रण होता रहा, वह भी नायक-नायिका के मनोभावों को उद्दीप्त करने के लिए।”<sup>75</sup> रीतिकाल में मूलतः प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण करने की परम्परा संस्कृत काव्य से आई है।

रीतिकालीन कवि राज्याश्रित थे, प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में इनका मन नहीं रमता था। राज्य के विलासी वातावरण में ही व्यस्त रहने के कारण प्रकृति सौन्दर्य देखने का समय इनके पास कम ही था। कतिपय कवियों ने प्रकृति के प्रति प्रेम और सौन्दर्य परक दृष्टिकोण के साथ अपनी सहृदयता का परिचय दिया है और प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है। रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति की बदलती हुई ऋतुओं के साथ ही नायक-नायिका के भावों को उद्दीप्त किया है। ये स्वयं प्रेम

के उन्मुक्त गायक थे, इसी प्रेम के वशीभूत होकर इन्होंने राधा एवं कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का चित्रण भी उद्दीपन रूप में किया है। रीतिमुक्त कवियों के हृदय ने प्रकृति को अपने अनुकूल ही देखा है। “इसलिए इन रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण आत्मपरक ही रहा है।”<sup>76</sup> रीतिमुक्त कवियों के जीवन में प्रेम को उद्दीप्त करने का कार्य प्रकृति ने किया था, इसलिए प्रकृति के प्रति इनके मन में सहज आकर्षण पैदा हो गया और उसी आकर्षण द्वारा ही इनके मन में प्रेम ही ज्योति प्रज्वलित हुई।

कवि घनानंद प्रकृति के सच्चे प्रेमी थे और वृंदावन में प्राकृतिक सुषमा के समीप रहने के कारण ही इन्होंने प्रकृति सौन्दर्य के दर्शन किये और वहीं से इन्हें प्रकृति सौन्दर्य वर्णन करने की प्रेरणा मिली। घनानंद ने प्रकृति के उद्दीपन रूप पर अधिक बल दिया है और अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का सहारा लिया है। “घनानंद के काव्य में प्रकृति का चित्रण वैसा ही आया है, जैसे आभूषणों में नगीने, नयनों में काजल।”<sup>77</sup> वस्तुतः कवि प्रकृति को जिस रूप में देखता है, उसी रूप में उसको अभिव्यक्ति प्रदान कर देता है, यही प्रकृति का आलम्बन रूप कहलाता है। इसे प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण भी कहा जाता है, जिसमें प्राकृतिक सौन्दर्य का यथातथ्य चित्रण होता है। ब्रज, वृंदावन की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए घनानंद के काव्य में प्रकृति का आलम्बन रूप दिखाई देता है। वसंत ऋतु अत्यन्त मनोहारी होती है, जिसमें हर तरफ हरियाली ही दिखाई देती है और इस वातावरण से मन प्रफुल्लित हो उठता है। पक्षियों की चहचहाहट सुनाई देती है, पुष्पों की सुगन्ध फैली होती है, पशु-पक्षी जिसके वशीभूत होकर खिंचे चले जाते हैं, वसंत ऋतु की ऐसी मनोहारी छटा का वर्णन करते समय घनानंद ने प्रकृति का स्वतन्त्र रूप प्रस्तुत किया है—

“घमड़ि पराग लता—तरु भोए। मधुरितु—सौरभ—सौँज समोए।

बन बसंत बरनत मन फूल्यौ। लता लता झूलनि सँग झूल्यौ।

खगनि—चुहक पिक—कुहक सुहाई। बन मनमथ की फिरी दुहाई।”<sup>78</sup>

वसंत ऋतु में मन मादकता से भर उठता है, ऐसे वातावरण में कोयल की कुहुक मन को भाने लगती है। मन को हर्षित करने वाली इस ऋतु से घनानंद का

मन भी प्रभावित हो उठता है। उनका वृंदावन और यमुना तट का वर्णन सदैव सुखद, सुन्दर व सब ऋतुओं के अनुकूल बना रहता है, प्रकृति के इसी सौन्दर्य ने घनानंद के मन को लुभा लिया था—

‘वृंदावन आनंदघन, राजत जमुना—कूल।

सदा सुखद सुंदर सरस, सब रितु रुचि—अनुकूल।

×

×

×

रितु औरै मौरै नवल, वृंदावन तरुबेलि।

सहज सुहायो देखियै, आनंदघन रसकेलि।”<sup>79</sup>

मानव ने प्रकृति में आशा—निराशा के भाव देखने का प्रयत्न किया है। घनानंद ने भी प्रकृति में आशा व निराशा के दर्शन किये हैं। घनानंद के काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण दो रूपों में हुआ है—एक तो यह कि संयोग के समय में प्रकृति आल्हादक रूप को प्रकट कर प्रेमियों की प्रेम लालसा को उद्दीप्त करती है और दूसरा यह कि वियोगावस्था में प्रकृति उदासीन स्वरूप को दिखलाकर प्रेमिका के विरह व्यथित स्वरूप को व्यक्त करती है। संयोग के समय में प्रकृति प्रेमियों की भावनाओं को उद्दीप्त करने में सहायक होती है। वसन्त ऋतु जो सभी ऋतुओं की राजा कहलाती है, को घनानंद ने रतिराज के रूप में माना है—

“हौ घनआनंद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज—सहायक।”<sup>80</sup>

संयोगकालीन क्षणों के लिए शरद—ऋतु का अपना विशिष्ट महत्व है। प्रेमी—प्रेमिका को एक—दूसरे से मिलने के लिए शरद ऋतु बड़ी लुभावनी प्रतीत होती है। शरद ऋतु में शुक्ल पक्ष के अवसर पर चारों ओर चाँदनी फैली होती है, जमुना तट पुष्पित और सुगन्धित हो जाता है, लताद्रुम अपनी शोभा का विस्तार पा लेते हैं, प्रकृति का यह सौन्दर्य प्रेमी युगल की भावनाओं को उद्दीप्त करने में सहायक होता है, जिसका चित्रण घनानंद ने किया है—

‘देखि सुहाई सरद की जामिनी रंगभीनी।

पूरन ससि प्राची उदै बिहरनि रुचि कीनी।

ज्योति—जगमगे द्रुमलता अति सघन सुहाए।

त्रिबिध पवन सुखमै बहै कहियै सु कहा ए।”<sup>81</sup>

वसंत ऋतु में प्रकृति की शोभा में चार चाँद लगना तथा संयोग के समय प्रकृति का उल्लासमय एवं भावपूर्ण होना आदि ऐसे घटक हैं, जिनको देखकर घनानंद भी आल्हादित हो उठते हैं। ऐसे वातावरण में समस्त ब्रज राधा-कृष्ण के विहार का स्थल बन जाता है। कृष्ण भी गोपियों के साथ उसी ब्रज में क्रीड़ाओं का अपार आनन्द लेते हैं। क्रीड़ाओं के उस अपार आनन्द में वसन्त ऋतु अत्यन्त मधुर प्रतीत होती है—

‘ब्रजबन बिसद बिहार—बिनोद। सरस बसंत बढ़ावै मोद।

× × ×

परमानंद—भाव उर जागै। सरस बसंत रीतिरस पागै।

× × ×

महा मधुर मधुरितु—सुख लहै। सरस बसंत—माधुरी कहै।”<sup>82</sup>

घनानंद का मन राधा-कृष्ण की छवि को प्रस्तुत करने में खूब रमा है। घनानंद विरही कवियों में अद्भुत हैं। उनके काव्य में संयोग की अपेक्षा वियोग वर्णन अधिक प्रभावशाली है। प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से विरह-वेदना का जितनी सफलता के साथ चित्रण किया गया है, वह अद्भुत है और अन्यत्र दुर्लभ है। संयोग में सुखकारी लगने वाली प्रकृति घनानंद को प्रिय के उदासीन होने पर कष्टदायक लगने लगती है। अतः जिस अमृत से मानव जीवन तृप्त होता है, वह अब विष टपकाने लगा है। जिन पुष्पों से शीतलता का आभास होता है, उनसे अब काँटों का उद्रेक हो रहा है। चन्द्रमा, जो अपनी ज्योत्सना की चादर बिछाता है, वह अब अन्धकार उगल रहा है। जल जो जीवन को शान्ति देता है, वह अब जलाने लगा है। राग स्वरों को विकृत करने लगा है इतना ही नहीं जो औषधि रोग मुक्त करती है, वह अब रोग प्रकट करने लगी है—

‘सुधा तैं स्रवत विष, फूल मैं जमत सूल,

तम उगिलत चंदा, भई नई रीति है।

जल जाँरै अंग, और राग करै सुरभंग,

महागुन गहै दोषै, औषदि हू रोग पोषै।

ऐसैं जान! रस माहिँ बिरस अनीति है।”<sup>83</sup>

कोयल और चातक की ध्वनि संयोग के समय बड़ी ही मादक प्रतीत होती है, परन्तु वियोग में वही ध्वनि कलेजे को चीरने वाली बन जाती है। चातक की आवाज भी कान फोड़ने वाली बन जाती है, ऐसे समय में घनानंद कोयल, चातक और मोर को लक्ष्य कर कहते हैं—

“कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति री,  
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।  
पैड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौँ ही,  
चातक! घातक त्यों ही तू हू कान फोरि लै।  
आनंद के घन प्रान—जीवन सुजान बिना,  
जानि कै अकेली बस घेरौ दल जोरि लै।”<sup>84</sup>

घनानंद के काव्य में प्रकृति सुख व दुख को उद्दीप्त करने वाली रही है। सुन्दर व उल्लासमयी प्राकृतिक वातावरण में कोयल व चातक की मीठी ध्वनि विरह की अवस्था में अत्यन्त कष्टप्रद प्रतीत होती है। अगर प्रेमी का प्रिय दूर है तो प्रकृति का यह रूप प्रियतम को दुःखमय प्रतीत होता है। घनानंद का प्रियतम भी उनसे दूर है, विरह की पीड़ा से त्रस्त होने के कारण ही चातक की पिउ—पिउ अर्द्ध रात्रि के समय घनानंद के प्राणों को बेध देती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो चातक की ध्वनि रात—दिन घनानंद को चैन नहीं लेने देती है। सुजान के बिना घनानंद को अकेला समझकर मानो सारी प्रकृति ने भी उन्हें घेर लिया है।

प्रकृति का फाल्गुन माह मानव—मन में अतिरिक्त उत्साह भर देता है। होली, रंग—बिरंगे रंगों का पर्व माना गया है। इस पर्व में प्रेमी राग—रंग के अवसर पर रंगों से सराबोर हो झूम उठता है, परन्तु स्थिति यदि विरह की होती है तो यही पर्व प्रेमी की मस्ती का रंग और मन की उदासी को कई गुना बढ़ा देता है। चंदन की शीतलता प्राणों को पीड़ा प्रदान करती है, गुलाल नेत्रों का शत्रु हो जाता है, उड़ता हुआ अबीर हृदय के धैर्य को उड़ाता है, आनन्दपूर्ण राग वैराग्य उत्पन्न करता है। इसी कारण आनन्द को रंग से रंजित करने वाली सुज्ञानी प्रियतमा (सुजान) के बिना घनानंद को फाल्गुन का माह अत्यन्त नीरस, हृदयहीन व फीका लगने लगता है—

“सौँधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को।

रंग—रचावन जान बिना घनआनंद लागत फागुन फीको।”<sup>85</sup>

यह स्वाभाविक है कि विरहावस्था में प्रेमी को प्रकृति का प्रत्येक क्षण अत्यन्त दुखदायी प्रतीत होता है। पुरवाई पवन, घनघोर बादल, बिजली का चमकना आदि विरहावस्था में घनानंद की वियोग पीड़ा को बढ़ा देते हैं। सुजान से दूर होने पर घनानंद के हृदय में जो दर्द है, उस दर्द को जैसे मानो प्रकृति के स्वरूप ने और अधिक बढ़ा दिया है। प्रकृति के द्वारा दिया जाने वाले दर्द को घनानंद व्यक्त करते हैं—

“लहकि लहकि आवै ज्यौँ ज्यौँ पुरवाई पौन,

दहकि दहकि त्यों त्यों तन ताँवरे तचै।

बहकि बहकि जात बदरा बिलोकै हियो,

कैसेँ घनआनंद सुजान बिन ज्यौ बचै।”<sup>86</sup>

प्रकृति की पुरवाई पवन मानव हृदय को रोमांचित करती है। परन्तु घनानंद के जीवन में पुरवाई पवन हृदय को जलाती है। आकाश में फैले हुए बादल हृदय को व्याकुल करने लगते हैं। महकते हुए फूल मन को जीवित नहीं रहने देते। हृदय की व्याकुलता को शांत करने का केवल एक ही उपाय है और वह है प्रिय का मिलन। परन्तु प्रिय से मिलन न होने पर घनानंद की आँखों में कुछ विचित्र सी उलझन पैदा हो जाती है, जो विकसित कमलों को देखकर सकुचाकर मलिन पड़ जाती है—

“बिकच नलिन लखँ सकुचि मलिन होति,

ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।

सौरभ—समीर आएँ बहकि दहकि जाय,

राग—भरे हिय मैं बिराग—मुरझनि है।”<sup>87</sup>

प्रकृति के इस रूप सौन्दर्य से भी घनानंद की दशा कुछ विचित्र सी हो गई है। सुगंधित समीर के समीप आने पर हृदय दग्ध हो रहा है, उनकी स्थिति यह हो गयी है कि उनका हृदय जो सदैव अनुराग से भरा रहता था, उस हृदय में विरह की स्थिति में निराशा का प्रभुत्व स्थापित होता जा रहा है। अपनी प्राणप्रिया रजत

रूप वाली सुजान को न देख पाने के कारण घनानंद का हृदय विषादग्रस्त हो गया है। घनानंद इस कष्ट से मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, पर उन्हें इस मुक्ति को प्राप्त करने की कोई युक्ति ही नहीं सूझती।

मानव ने प्रकृति के कार्य-कलाप को आदर्श मानकर ज्ञान प्राप्त किया है। प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व मानव को उपदेश देता हुआ प्रतीत होता है। घनानंद ने भी मीन, चातक से उपदेश ग्रहण किया है, उन्होंने इन्हें प्रेम का आदर्श मानते हुए प्रेरणा ग्रहण की है। चातक स्वाँति नक्षत्र के बादल उड़ जाने पर भी अपनी आँखें बंद नहीं करता, बल्कि उसकी प्रतीक्षा में उसकी आशा और बलवती होती जाती है। चातक की अपनी प्रिय के प्रति यह निष्ठा अद्भुत है। चातक पक्षी की यह निष्ठा घनानंद के लिए आदर्श बन गयी है। प्रेम की यही एकनिष्ठता घनानंद में भी देखी गयी है—

“चातिक बिचारो घनआनँद पुकार जानै,

मूँदि क्योंँ सकत है बिदरि गएँ बादरौ।”<sup>88</sup>

यह सर्वविदित है कि प्रकृति प्रारम्भ से ही सौन्दर्य का केन्द्र रही है। प्रकृति की सौन्दर्यानुभूति से प्रभावित मानव अपनी सौन्दर्य भावना को इस प्रकार व्यक्त करना चाहता है कि पाठक केवल श्रवण मात्र से ही उस सौन्दर्य का अनुभव कर लें। अपनी इसी सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए मानव को अनेक उपकरणों की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा वह अपने रस से पूर्ण हृदय की अनुभूतियों को प्रभावशाली बनाने का प्रयास करता है। प्रियतम दूर है, नायिका अपने विरह के कष्ट को बताना चाहती है, परन्तु पत्र लिखना संभव नहीं है क्योंकि सावन में बारिश के सदृश आँखों से निरंतर अश्रु बह रहे हैं। नायिका विचित्र स्थिति में फँस गयी है क्योंकि वह अपने दिल का हाल बताना तो चाहती है, परन्तु विवश है—

“घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखौँ दर्ई कैसेँ लिखौँ पतियाँ।

नित सावन डीठि सु बैठक मैँ टपकैँ बरुनी तिहि औलतियाँ।”<sup>89</sup>

प्रियतम के स्मरण से घनानंद के हृदय में पीड़ा की लहर विद्युत सी व्याप्त हो गयी है, हृदय रूपी समुद्र से नेत्र रूपी बादल भरकर हर क्षण बरसते रहते हैं, ऐसी स्थिति में नेत्रों से हर समय अश्रु धारा बहने के कारण नायिका पत्र लिखने को



भी विवश है। प्रेयसी सुजान के सौन्दर्य के समक्ष तो प्राकृतिक उपादान भी फीके हैं। सुजान के अप्रतिम सौन्दर्य के सम्मुख चन्द्रमा की दीप्ति मन्द पड़ गयी है, उसके मुख की ताजगी के समक्ष तो कमल भी मलिन हो गये हैं, एक भी रंग ऐसा नहीं है, जो सुजान के मुख की समता कर सके—

“आनन की सुथराई कहा कहीं जैसी बिराजति है जिहि औसर।

चंद तौ मद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दीजियै जौ सर।”<sup>90</sup>

सामान्यतः प्रकृति को सन्देशवाहक बनाकर वियोग की मार्मिक दशा का चित्रण करना कवियों को प्राचीन काल से ही अत्यन्त प्रिय रहा है। मेघ, पवन, सुआ, आदि को दूत बनाकर सन्देश भेजने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। इस दृष्टि से कालिदास ने अपने मुक्तक काव्य ‘मेघदूत’ में बादल को दूत बनाकर उसके माध्यम से विरह व्यथा को वर्णित किया है। जायसी के पदमावत में हीरामन तोता पदमावती के रूप, सौन्दर्य का वर्णन करता दिखाई देता है। घनानंद ने प्रकृति को सन्देशवाहक बनाकर अपनी विरह व्यथा का वर्णन किया है। घनानंद पवन से विनम्र निवेदन करते हुए कहते हैं कि हे पवन! तू तो सर्वत्र आती जाती रहती है। अतः तू निर्मोही सुजान की गली जाकर उसकी पग धूलि ले आओ। घनानंद उसकी पगधूलि को आँखों में अंजन की तरह लगाना चाहते हैं, जिससे उन्हें विरह की पीड़ा से मुक्ति मिल जाये क्योंकि उसमें प्रिय के स्पर्श का सुख सन्निहित है—

“जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,

धूरि तिनि पायनि की हाहा! नेकु आनि दै।”<sup>91</sup>

घनानंद प्रकृति (बादलों) के माध्यम से अपने हृदय की वेदना को सुजान तक संप्रेषित करना चाहते हैं। इसलिए वे बादल से निवेदन करते हैं कि सुजान के आँगन में जाकर उनके आँसुओं को बरसा दें, जिससे सुजान उनके (घनानंद के) हृदय की पीड़ा को समझ सके—

“घनआनंद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियँ परसौ।

कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ।”<sup>92</sup>

घनानंद का मेघ के प्रति यह निवेदन अनुभूतिजन्य है। मानव के साथ प्रकृति की पूर्ण सहानुभूति रही है। प्रकृति मानव हृदय की भावनाओं का दर्पण है। मानव

प्रकृति में अपने अन्तर भावों के अक्स (छाया) भी देखता है। इसलिए जो प्रातः कालीन ओस कण मोती के सदृश सुन्दर प्रतीत होते हैं, वही विरह में आंसू की बूंदे प्रतीत होती हैं। पवन घनानंद के हृदय की अस्थिरता को देखकर चंचल बनकर वियोगी की भांति भटकता रहता है। घन का बरसना भी विरह ताप का ही फल है, यह प्रकृति के आँसू हैं, घनानंद प्रकृति को विरह में अपने भावों के अनुकूल सम दुख भोगी समझते हैं—

“अथिर उदेग—गति देखि कै अनंदघन,

पौन बिडरयौ सो बन—बीथिनि ररयौ करै।

बूँदैं न परतिँ मेरे जान जान प्यारी! तेरे,

बिरही कोँ हेरि मेघ आँसुनि झरयौ करै।”<sup>93</sup>

घनानंद ने प्रकृति के माध्यम से आध्यात्मिक भावनाओं का भी स्पर्श किया है। वे ब्रज के कण-कण में ईश्वर के दर्शन करते हैं। ब्रज, कृष्ण, यमुना नदी का किनारा, उसका जल, उन्हें स्पर्श कर बहता हुआ पवन आदि सभी उनके हृदय में बस गये हैं। समस्त ब्रज प्रदेश राधा व कृष्णमय है, यहाँ तक कि सम्पूर्ण ब्रजमण्डल आनन्द की निधि बन गया है—

“ब्रज बृंदावन गिरि गोधन जमुन—तीर,

सुबस सुदेस पुर बन सुख साधा को।

जाकी भूमि भागहि सिहात हैं गिरीस ईस,

धूरि रसमूरि हरै दुख सब बाधा को।

स्याम के सरूप को कछुक निरधार होइ,

तौ कछु कह्यौ परै अगाध प्रेम राधा को।”<sup>94</sup>

घनानंद को ब्रज की प्रकृति से अटूट लगाव व अनुराग था। इसी अनुराग के वशीभूत होकर उन्होंने अपनी भक्तिपरक रचनाओं में ब्रजभूमि के सौन्दर्य के साथ-साथ वहाँ के जीवन और दृश्यों का वर्णन किया है। ये वर्णन जहाँ एक ओर भक्ति से प्रेरित हैं, वहीं उस स्थान से परिचय, मोह एवं अनुभव का भी आधार लिये हुए हैं। स्पष्टतः घनानंद ने अपने हृदय के रंगों को प्रकृति के विविध रंगों से भर दिया है। घनानंद का प्रकृति चित्रण अत्यन्त सहज, स्वाभाविक, हृदयग्राही एवं

आकर्षक है। उन्होंने अपने काव्य में सर्वाधिक रूप से प्रकृति के उद्दीपन, आलम्बन, भाव साम्य तथा आलंकारिक रूप का चित्रण किया है। यह प्रकृति उनके जीवन की ही नहीं, काव्य जगत की भी अप्रतिम सहचरी रही है।

#### 4.4 प्रेम और सौन्दर्य का मिश्रित रूप

प्रेम और सौन्दर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है, जो भाव प्रेम को जाग्रत करता है, वह सौन्दर्य ही है, जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ प्रेम हो जाना स्वाभाविक है। प्रेम हृदय की वस्तु है, अनुभूति की प्रक्रिया है और उदात्त भावना की परिचायक है। किसी भी व्यक्ति या वस्तु के प्रति उत्पन्न प्रेम उसके सौन्दर्य में निहित होता है और सौन्दर्य में आकर्षण निहित है। भले ही प्रेम की व्युत्पत्ति शारीरिक आकर्षण से होती हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस भावना का उदात्तीकरण हो जाने पर छल, कपट आदि कलुषित वृत्तियाँ स्वतः लुप्त हो जाती हैं। अतः प्रेम और सौन्दर्य केवल बाह्य कारक ही नहीं हैं, वरन् इनका सम्बन्ध अन्तर्मन से भी है। "सौन्दर्य प्रेम की आत्मा है, उसी पर प्रेम की सत्ता भी संभव है।"<sup>95</sup> अतः सौन्दर्य की सफलता प्रेम में ही है। प्रेम और सौन्दर्य मानव जीवन के आधारभूत तत्त्व हैं। ये तत्त्व काव्य के भी ऐसे प्रधान तत्त्व हैं, जिनके माध्यम से काव्य रचना उत्कृष्ट होती है। साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य का विशेष महत्व है। इनके द्वारा काव्य में जीवंतता आती है, जीवन को अंकुरित करने के लिए तथा उसे विकास और गति देने के लिए प्रेम और सौन्दर्य अनिवार्य तत्त्व हैं।

प्रायः प्रेम और सौन्दर्य साथ-साथ ही रहते हैं, जहाँ प्रेम है, वहीं सौन्दर्य है, जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ प्रेम का अंकुर फूटना स्वाभाविक है। रामकुमार शर्मा जी ने प्रेम और सौन्दर्य के घनिष्ठ सम्बन्ध के विषय में लिखा है—“जीवन का प्रसून प्रेम की डाली पर ही खिलता है और प्रेम की डाली का अंकुर फूटता है सौन्दर्य की भूमि में।”<sup>96</sup> प्रेम एक भाव है, जो विषयीगत है और सौन्दर्य वस्तु का गुण होने के कारण उसकी सत्ता विषयगत है। काव्य में जब केवल बाह्य सौन्दर्य ही प्रेमानुभूति का आधार होता है, तब उसमें सौन्दर्यानुभूति की प्रधानता होती है। वास्तविक प्रेम की अनुभूति गुणोद्भूत होती है और सौन्दर्य की अनुभूति वस्तुगत सौन्दर्य की अनुभूति है, जबकि प्रेमानुभूति का सौन्दर्य आलम्बन की अनुपस्थिति में, विरह के क्षणों में और अधिक परिष्कृत एवं उदात्त रूप में उभर कर आता है।

हिन्दी साहित्य में प्रेम और सौन्दर्य की धारा आदिकाल से ही अगाध गति से प्रवाहित होती रही है। रीतिकाल में तो प्रेम और सौन्दर्य का उत्कर्ष रूप देखने को मिलता है। रीतिकालीन कवियों ने काव्य रचना का जो वातावरण निर्मित किया था, उसमें प्रेम और सौन्दर्य मुख्य तत्व थे। रीतिकाल में प्रेम और सौन्दर्य का रूप आरोपित भी था परन्तु घनानंद का प्रेम और सौन्दर्य स्वानुभूतिमय जीवन से प्रेरित था। स्वानुभूतिपूर्ण जीवन से ही इनके काव्य में प्रेम और सौन्दर्य का उद्रेक हुआ। प्रेम और सौन्दर्य परस्पर आश्रित हैं। इस सम्बन्ध में श्याममनोहर पाण्डेय जी का मत है—“प्रेम और रूप का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। संसार में जहाँ कहीं भी रूप है, वहीं प्रेम का आकर्षण है। रूप में परमात्मा की ज्योति प्रकट होती है। यही प्रेम की ओर अग्रसर होने का माध्यम बनती है।”<sup>97</sup> प्रेम और सौन्दर्य इनके काव्य को सार्थकता प्रदान करते हैं। प्रेम और सौन्दर्य का स्वरूप, उसका आधार, प्रभाव, घनानंद के काव्य का मूल प्रतिपाद्य है इसलिए प्रेम और सौन्दर्य का जो स्वरूप इनके काव्य में उभरा है, उसका दावेदार सम्भवतः अन्य कोई रीतिकालीन कवि नहीं हो सका है।

घनानंद के काव्य में प्रेम यदि कार्य है, तो सौन्दर्य उसका कारण है। प्रेम रहित सौन्दर्य निरर्थक है। घनानंद ने सौन्दर्य को प्रेम का जनक माना है, प्रेम और सौन्दर्य का यही स्वरूप उनके मन, मस्तिष्क में सदैव विद्यमान रहा है। डॉ० कृष्णमुरारी मिश्र का कथन है—“संसार के वास्तविक सौन्दर्य का वर्णन वही कवि कर सकता है, जिसके मानस में सौन्दर्य व प्रेम की अजस्र स्रोतवाहिनी प्रवाहमान है।”<sup>98</sup> प्रेम और सौन्दर्य के प्रति इनका आवेग पर्वत श्रेणी के मध्य से झरने की तरह फूट निकला है। जिस प्रकार झरने से पानी की धारा अबाध रूप से प्रस्फुटित होती है, उसी प्रकार इनके हृदय से प्रेम और सौन्दर्य की अनुभूति व उसकी सच्चाई अबाध रूप से प्रस्फुटित हुई है। यही कारण है कि उनके काव्य में सुन्दर भावाभिव्यक्ति, वियोगजन्य स्थिति, भावों की तीव्रता, अनुभूतिपरक गहनता, प्रेम साधना में गति, सौन्दर्य, आत्मविश्वास, स्वच्छन्दता और सरलता जैसे गुणों का प्राधान्य देखा जाता है।

इनके काव्य का मूल प्रेम और सौन्दर्य है। घनानंद का प्रेम नितान्त निर्बन्ध व एकनिष्ठ है, उनकी भावनायें अत्यन्त मौलिक हैं, जो इनके शुद्ध हृदय की भावधारा

से प्रवाहित होती हैं। इन्होंने काव्य सृजन में कल्पित तथा आरोपित अनुभूतियों के स्थान पर प्रत्यक्षानुभूति को अधिक महत्व दिया है। इन्होंने काव्य में प्रेम में भोगे हुए यथार्थ तथा सौन्दर्य की प्रत्यक्षानुभूति को वाणी प्रदान की है। प्रेम पीर की प्रचुरता और सौन्दर्य के प्रति तीव्र अनुराग इनके काव्य का प्रधान स्वर रहा है। घनानंद तो ऐसे कवि हैं, जिन्होंने राजभय से अपनी दिशा नहीं बदली, अपितु निर्भय होकर स्वतन्त्र रूप से प्रेम का निर्वाह किया। यही कारण है कि इनमें हृदय तत्व की बड़ी गहराई है, जीवन की सार्थकता को वाणी देकर हिन्दी काव्य की सौन्दर्य वृद्धि में इन्होंने अभूतपूर्व योगदान दिया है।

जीवन और जगत में सर्वत्र प्रेम और सौन्दर्य की मिश्रित सत्ता विद्यमान है क्योंकि प्रेम और सौन्दर्य के बिना जीवन निःसार है। घनानंद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य के मिश्रित रूप के प्रति अगाध विश्वास है, जो उनके जीवन का आदर्श है। सौन्दर्य मानव-चेतना का प्रकाश है और यही परम दिव्य शक्ति का प्रकाशित रूप है, जिस पर मानव मन सदैव से आकर्षित रहा है। इसलिए सौन्दर्य वह माध्यम है, जिसके द्वारा ईश्वरीय प्रेम तत्व को प्राप्त किया जाता है, इस पक्ष का घनानंद ने पूर्णतः निर्वाह किया। घनानंद का व्यक्तिगत उद्गार उनके काव्य सृजन का मूल बना—“इन्होंने अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य पर रीझकर और उसके गुणों से प्रभावित होकर उनको अपने प्रेम का आलम्बन बनाया और अपने उस आलम्बन के प्रति इतने अधिक ईमानदार रहे कि सांसारिक सुख, सुविधा और साधनों का त्याग करके अपने प्रेम का निर्वाह किया।”<sup>99</sup> इसलिए घनानंद के काव्य की मूल प्रेरणा प्रेम और सौन्दर्य के प्रति आकर्षणपरक दृष्टि ही रही है।

मनुष्य का मन अत्यन्त चंचल है और चंचल मन के आवेग मनुष्य को समतल भाव-भूमि पर टिकने नहीं देते हैं क्योंकि ये चंचल मनोवेग मनुष्य के हृदय में उथल-पुथल मचाते रहते हैं, जिससे मानव जीवन किसी न किसी रूप में प्रेरित होता है। कवि घनानंद इन चंचल मनोवेगों की प्रेरणा से प्रेरित हुए और प्रेम पात्र सुजान का चयन किया। वेश्या और विजातीय स्त्रियों को अपनाने में रीतिमुक्त कवियों ने संकोच नहीं किया, व्यक्तिगत प्रेमानुभूति इनके जीवन की सबसे प्रियतम अनुभूति रही है “आलम शेख के लिए लिए धर्म त्याग करते हैं, घनानंद सुजान के

लिए मर्यादाओं का अतिक्रमण करते हैं, बोधा विजातीय सुभान से परिणय (विवाह) रचाते हैं तथा ठाकुर सुजान नाम की सुनारिन के पीछे लोक-निन्दा, यश-अपयश की चिन्ता नहीं करते हैं।<sup>100</sup> अतः इनका प्रेम और सौन्दर्य इनके जीवन से अनुप्राणित होता रहा। प्रेम और सौन्दर्य के तन्तु में बंधकर प्रेमी को धर्म व जाति का कोई एहसास नहीं रह जाता है। इस पथ पर या तो सच्चे प्रेमी ही चल सकते हैं या वे जिन्होंने स्वयं सौन्दर्यानुभूति और प्रेमानुभूति की है। रूप और सौन्दर्य पर रीझने वाले घनानंद उच्चकोटि के प्रेमी कवि थे। घनानंद बेचारे स्वतः प्रेम और सौन्दर्य पर रीझ कर अपने हाथों हार जाते हैं—‘रोकी रहै न दहै घनआनंद बावरी रीझ के हाथनि हारिये।’ यही रीझ उनके काव्य में पटरानी बनी हुई सची अथवा इंद्राणी (सची) बनकर प्रतिष्ठित हुई है, उसके आगे बुद्धि तो दासी बनकर खड़ी रहती है—‘रीझि सुजान सची पटरानी बची बुद्धि बावरी हवै करि दासी।’ घनानंद रूप, सौन्दर्य के प्रति अभिलाषी थे—‘सौन्दर्य संबंधी इनका दृष्टिकोण रूप के प्रभाव के प्रति जितना सचेत है, उतना स्थूल अंगों के प्रति नहीं।’<sup>101</sup> उनके मन में रूप सौन्दर्य के प्रति अनन्त पिपासा थी इसी कारण उन्होंने नारी सौन्दर्य को उस असीम शक्ति का रूप दे दिया है, जिसके समक्ष कवि की वाणी और विचार दोनों ही असमर्थ हो जाते हैं—

“सहज सुछबि देखै दबि जाहिँ सबै बाम,

बिन ही सिंगार औरै बानिक बिराजै बनि।

×

×

×

कैसेँ घनआनंद सुजान प्यारी छबि कहौँ,

दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है।’<sup>102</sup>

सुजान की अनुपम व अद्भुत छवि से घनानंद अत्यन्त आश्चर्यचकित थे, इस आश्चर्यमयी छवि (सौन्दर्य) में डूबकर घनानंद के प्रेम की परिणति ईश्वरीय प्रेम में हुई थी। त्याग, आत्मसमर्पण और बलिदान जैसे भाव प्रेम और सौन्दर्य को उत्कृष्टता प्रदान करते हैं। ये मानव जीवन के वे गुण हैं, जिनके द्वारा वह लौकिक धरातल से ऊपर उठने लगता है और उसका परिष्कार होने लगता है। घनानंद के काव्य में ये गुण पूर्णतः विद्यमान रहे। जिस प्रकार प्रेमी पतंग, दीपक की लौ के सौन्दर्य पर

आकृष्ट होकर स्वयं को पूर्णतया मिटा देता है, समाप्त कर देता है, उसी प्रकार घनानंद भी अपने प्रिय के प्रेम और सौन्दर्य पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। प्रेम और सौन्दर्य को शाश्वत रूप प्रदान करना इनकी प्रमुख विशेषता है। स्वच्छन्द काव्य आत्मा को आनन्दित करने की क्षमता रखता है, जो अन्य कवियों में नहीं थी। घनानंद ने प्रेम और सौन्दर्य के स्वच्छन्द मार्ग को अपनाया, अन्तर की आवाज को न केवल सुना, बल्कि ईमानदारी से काव्य में अभिव्यक्त भी किया, रीतियुग को यह उनकी महान देन थी।

वास्तव में प्रेम और सौन्दर्य काव्य के दो प्रतिमान हैं, जिनके द्वारा मानवीय प्रेम और मानवीय सौन्दर्य का मूल्यांकन किया जाता है। घनानंद ने मुक्त रूप से, मुक्त हृदय से अपने प्रेम और सौन्दर्य को व्यक्त किया और उसका निर्वाह किया। “प्रेम एक चिनगारी है, जो नेत्रों की चकमक से पैदा होती है और रूप रूपी रुड़ को पकड़ते ही, गुण रूपी लकड़ी का सहारा पाकर प्रज्वलित हो उठती है।”<sup>103</sup> कवि घनानंद का प्रेम और सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण यह स्पष्ट कर देता है कि अपने अप्रतिम सौन्दर्य की प्राप्ति में निष्फल रहने के बाद ये अपनी प्रेमिका में ही आत्मा की छाया ढूँढने लगे थे। उनकी प्रेमिका उस असीम व सूक्ष्म सौन्दर्य की प्रतीक बन गई जिसके मात्र सौन्दर्य दर्शन से ही वे अपनी इच्छा की तृप्ति कर लेते हैं। संसार के वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन वही कवि कर सकता है, जिसके हृदय में प्रेम की धारा निरंतर रूप से प्रवाहित होती हो। प्रेम का आधार सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही वह माध्यम है जिसके द्वारा प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है। अतः प्रेमानुभूति में ही सौन्दर्यानुभूति की प्रधानता अभिव्यक्त होती है।

#### 4.5 प्रेम और सौन्दर्य का लौकिक व अलौकिक स्वरूप

प्रेम और सौन्दर्य मानव मन की चिरन्तन भावना है, ये मानव मन में ही नहीं, अपितु चर, अचर, जड़, चेतन सभी में व्याप्त है। सामान्यतया प्रेम और सौन्दर्य के दो रूप देखे जाते हैं—लौकिक एवं अलौकिक। लौकिक पक्ष के अन्तर्गत शारीरिक अथवा स्थूल पक्ष को प्रमुखता दी जाती है, जबकि अलौकिक पक्ष के अन्तर्गत अनन्त सत्ता के प्रति तन्मयता की प्रबल अभिव्यक्ति। लौकिक स्वरूप से तात्पर्य बाह्य सौन्दर्य

चित्रण से है और अलौकिक स्वरूप से तात्पर्य आन्तरिक सौन्दर्य चित्रण से है। अलौकिक स्वरूप असीम सत्ता के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, जिसमें प्रेमी प्रिय के प्रेम में इस प्रकार लीन हो जाता है कि प्रिय के अतिरिक्त कुछ और दिखाई नहीं देता। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में प्रेम और सौन्दर्य दोनों ही अपने उत्कर्षमय रूप में दिखाई दिये, दोनों की ही प्रभुसत्ता समान रूप से विद्यमान रही। रीतिकाल शृंगारिक काल है और शृंगारिक काल होने के कारण रीतिकवियों की दृष्टि शारीरिक पक्ष (अंग-प्रत्यंगों) की ओर अधिक रही, इसलिए प्रेम और सौन्दर्य का स्वरूप लौकिक ही बना रहा। घनानंद पर इसका पूर्णतः प्रभाव देखा गया, अन्तर केवल यह रहा है कि उनका प्रेम और सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण लौकिक (शारीरिक) होते हुए भी अलौकिक की ओर उन्मुख हुआ, जो इन्हें उच्चता, दिव्यता व सात्विकता का स्थान प्रदान करती है।

वस्तुतः लौकिक प्रेम के लिए लौकिक आधार की आवश्यकता होती है, घनानंद के लौकिक प्रेम का आधार मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की नर्तकी सुजान थी—“सुजान वेश्या, जिससे घनानंद को असीम प्यार था। सुजान के रूप पर मुग्ध होकर इन्होंने न जाने कितने कवित्त रच डाले, उसके एक-एक अंग, गति की दीप्ति को छंदों में बाँध दिया। सुजान के प्रति तीव्र अनुराग ही घनानंद के लौकिक प्रेम का चातक बना।”<sup>104</sup> प्रेम को जीवन का सार मानना, उसकी विलक्षण अभिव्यक्ति करना, प्रेम के प्रणय प्रसंगों का चित्रण करना, प्रिय का रीझना, प्रफुल्लित होना, रोमांचित होना आदि भावों का तीव्र आवेग जैसा घनानंद में है, वैसा अन्यत्र नहीं—

“ललित उमंग-बेलि आलबाल-अंतर तैं,

आनँद के घन सीँची रोम रोम ह्वै चढ़ी।

आगम-उमाह-चाह छायौ सु उछाह- रंग,

अंग-अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।”<sup>105</sup>

घनानंद के जीवन का सर्वस्व प्रेम और सौन्दर्य था, यह प्रेम और सौन्दर्य सांसारिक भी था और ईश्वरोन्मुख भी। जीवन में निराशा मिलने के कारण उनके प्रेम में एक नया मोड़ आया था, फलतः वे अपने अन्तिम समय में भगवदोन्मुख हो



गये थे। प्रेमी और प्रेमिका के प्रेम और सौन्दर्य की उत्कृष्टता जब असीम सीमा तक पहुँचती है, तब उनमें अभेद की स्थिति आ जाती है, 'मैं' को छोड़कर प्रेमी में जब तू ही रह जाता है, तब वह सारे संसार में प्रियतम के दर्शन करता है। घनानंद के काव्य में यही प्रेम की दिव्यानुभूति है और यही प्रेम का उदात्तीकरण। "जब किसी व्यक्ति का हृदय प्रेम की लौकिक सीमा का उल्लंघन करके अलौकिक सीमा में प्रवेश कर जाता है, जगत् के सांसारिक बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके आध्यात्मिक भाव में लीन हो जाता है, पार्थिव प्रतिमाओं के अनुराग का परित्याग करके अपार्थिव प्रेम में आनन्द-विभोर हो उठता है, भौतिक प्रेम की दीवारों को तोड़कर आध्यात्मिक भावनाओं के अनन्त आकाश में विचरण करने लगता है तथा वैयक्तिक प्रेम की शृंखलाओं में आबद्ध न रहकर अगोचर एवं अरूप सत्ता के पवित्र प्रेम में तन्मय हो जाता है, तब प्रेमी की प्रेमास्थिति अलौकिक क्षेत्र का स्पर्श करने लगती है।"<sup>106</sup>

प्रेम के अलौकिक रूप में प्रेमी अथवा भक्त का अपने इष्ट के प्रति अनन्यता का भाव बना रहता है, जिससे वह अन्य वस्तुओं के प्रति उदासीन हो जाता है। डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी का कथन है—“लौकिक प्रेम जब अलौकिक प्रेम में ढल जाता है, तब सारा संसार ही उसे दुखप्रद प्रतीत होने लगता है और विश्व की प्रत्येक वस्तु मार्ग का रोड़ा बनकर दिखाई देने लगती है।”<sup>107</sup> प्रेम की इस दशा में प्रेमी को कोई भी सांसारिक प्रलोभन अपने प्रेममार्ग से विचलित नहीं करते। घनानंद का प्रेम भी कुछ इसी प्रकार का था। प्रेम के पथ पर ये इतना अधिक अडिग थे कि संसार की कोई भी शक्ति इन्हें इस पथ से विचलित न कर सकती थी। घनानंद ने अपने जीवन में प्रेम को भगवान का रूप माना है और भगवान को प्रेम स्वरूप। उनका यह विचार सिद्ध करता है कि प्रेम और भगवान एक ही हैं, भगवान प्रेम स्वरूप हैं और प्रेम उन्हीं में समाहित है। इस सम्बन्ध में मुंशीराम शर्मा का मत है—“जैसे समुद्र का जल वाष्प बनकर मेघ के रूप में परिणत होता है, फिर वर्षा के रूप में झरने नदी आदि का रूप धारण कर, पुनः समुद्र में मिल जाता है, उसी प्रकार प्रेम स्रोत भगवान से प्रेम की धारायें निकल कर भक्तों की हृदय भूमि को सिंचित करती हैं और पुनः प्रेम स्रोत प्रभु की ओर प्रवणायित होकर उसी में समा जाती हैं।”<sup>108</sup> प्रेम का यही स्वरूप घनानंद में देखा गया है। उन्हीं संसार के प्रत्येक कण में सुज्ञान ही दिखाई देती रही, प्रेम की इसी अनन्यता के द्वारा उनका प्रेम

पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ, उसी प्रेम की चरम सीमा पर पहुँचकर वह समस्त संसार को प्रियतममय देखने लगे। प्रेम की इसी अनन्यता में उन्होंने अपना अस्तित्व मिटा दिया, स्वयं प्रियतममय हो गये, प्रिय के लिए समर्पण की भावना मुख्य हो गयी और सब कुछ उस प्रियतम के लिए समर्पित हो गया।

प्रेम का यह स्वरूप ही मानव जीवन की दिव्यतम विभूति है, जो अपने इष्ट से सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम है। घनानंद के मन में अपने प्रिय के प्रति असीम आस्था और विश्वास था, जिसकी प्राप्ति के लिए वे उसका नाम रटते रहते थे। प्रेम की एकनिष्ठा ने उन्हें उस स्थान पर पहुँचा दिया था, जहाँ प्रेम केवल प्रिय को चाहने वाला ही रह जाता है। घनानंद के प्रेम में वही उदात्तता, उच्चता व तीव्रता पायी जाती है, जो चातक पक्षी के प्रेम में पायी गयी है—

“एक आस एकै बिसवास प्रान गहँ बास,

और पहिचानि इन्हँ रही काहूँ सौँ न है।

चातिक लौँ चाहै घनआनँद तिहारी ओर,

आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है।”<sup>109</sup>

घनानंद के प्रेम में अनुभूति की मार्मिक चोट, उदात्तता, अनन्यता, सर्वत्र एकनिष्ठता, आत्मसमर्पण, त्याग व मिलन की स्थिति व विरह की व्यापकता का पूर्ण परिपाक है। इनकी प्रेमानुभूति अन्तर का स्पर्श करती हुई अलौकिक प्रेम के परमधाम तक पहुँच जाती है, जिसमें जीवनगत सत्य अन्तर्निहित है। इनका मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम का एक कण मात्र है। इश्कमजाज़ी (मानवीय प्रेम) के द्वारा ही इश्कहकीकी (ईश्वरीय प्रेम) की उपलब्धि करना इनका ध्येय रहा—

“प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै विचार,

बापुरो हहरि वार ही तैं फिरि आयौ है।

ताकी कोऊ तरल तरंग—संग छूटयौ कन,

पूरी लोकलोकनि उमंडि उफनायौ है।

सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,

ऐसेँ मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।

ताही एकरस ह्वै बिबस अवगाहँ दोऊ,

नेही हरि—राधा जिन्हँ हेरँ सरसायौ है।”<sup>110</sup>

प्रेमी की इसी पराकष्टा की ओर संकेत करते हुए डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मत है—“इनके प्रेम में अश्लीलता एवं काम-वासना नहीं है, अपितु दिव्यता एवं पवित्रता है। घनानंद ने सर्वत्र शारीरिक अंगों की अपेक्षा भावना द्वारा प्रिय सानिध्य प्राप्ति की कामना की है। इसी कारण इनकी प्रेमानुभूति वास्तव में मूक की पुकार है।”<sup>111</sup> बाह्य सौन्दर्य के आधार पर ही घनानंद के काव्य में अलौकिक, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। काव्य में बाह्य पक्ष की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है और बाह्य पक्ष ही सर्वप्रथम प्रेमी को अपनी ओर आकर्षित करता है। अलौकिक प्रेम व सौन्दर्य के क्षेत्र में पदार्पण करते हुए कवि लौकिक प्रेम, सौन्दर्य से दूर होने लगता है, उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी होने लगती है जीवन के बाह्य रूपों से उसको कोई लगाव नहीं रहता और आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति के द्वारा अपने प्रेम तत्व को पाने का प्रयास करता है। इस सम्बन्ध में शकुन्तला शर्मा का कहना है—“सौन्दर्य बाह्य जगत में स्थित आत्मा का दिव्य संकेत है। सौन्दर्य उस परम व असीम ब्रह्मानन्द का नाम है, जिनका अंश मात्र भी जिन-जिन पदार्थों में, जितनी मात्रा में तथा जितनी सूक्ष्मता से अनुभूति का विषय बन जाता है, वह वस्तु उतनी ही सुन्दर प्रतीत होती है। स्पष्ट है आत्मा-परमात्मा तथा सौन्दर्य में केवल दृष्टि भेद है, तात्त्विक अन्तर नहीं।”<sup>112</sup> इसलिए सौन्दर्य का रहस्य उसके पार्थिव रूप में नहीं, अपितु उसका एक आध्यात्मिक रूप भी है, जो कवि के हृदय में विशेष अनुभूति का आविर्भाव करती है। डॉ० मुंशीराम शर्मा का वक्तव्य है—“प्रेमी व भक्त की तात्त्विक दृष्टि उसके पीछे छिपी एक अनन्त सौन्दर्य निधि में देखती है।”<sup>113</sup> इसी के द्वारा प्रेमी को आनन्द की प्राप्ति होती है।

आन्तरिक सौन्दर्य, बाह्य सौन्दर्य का विधायक होता है। क्योंकि किसी भी वस्तु की सुन्दरता या कुरूपता निरीक्षक के दृष्टिकोण पर ही निर्भर होती है। सौन्दर्य का अस्तित्व बाहर नहीं, प्रत्युत सुन्दर आत्मा में ही है, अतः सौन्दर्य का आत्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यही कारण है कि—“सौन्दर्य किसी भी वस्तु के आन्तरिक व बाह्य स्थापत्य का साक्षात्कार है।”<sup>114</sup> इसी के आधार पर घनानंद ने सौन्दर्य की अनुभूति की है। घनानंद की लौकिक सौन्दर्यपरक दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य को उभारने वाली सिद्ध हुई है। प्रत्येक छवि के पीछे इनकी स्वानुभूति और

अन्तर्दृष्टि छिपी रही है। उनके इस सौन्दर्यपरक दृष्टि को प्रत्येक सौन्दर्य प्रेमी बरबस ही स्वीकार करता है। घनानंद के सौन्दर्य निरूपण की इतनी अधिक उदात्त भावना और क्या हो सकती है, कि वह स्वयं को अपने आराध्य के प्रति समर्पित कर देते हैं। सुजान का लौकिक सौन्दर्यमय रूप बाद में कृष्ण और राधा के सौन्दर्य में व्यक्त हुआ है। कृष्ण की जो छवि उनके हृदय में बसी हुई थी, उसका चित्र खींचते हुए घनानंद कहते हैं—

“रसमूरति स्याम सुजान लखें जिय जो गति होति सु कासौं कहौं।

चित चुंबक—लोह लौं चायनि चै चुहटै उहटै नहिं जेतो गहौं।

×

×

×

उर आवत यौं छबि—छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं।”<sup>115</sup>

हावभाव व मुद्राओं से प्रकट होने वाले सौन्दर्य का इनके हृदय पर जो प्रभाव पड़ा, उसी प्रभाव का इन्होंने आन्तरिक रूप से चित्रण किया है। सूक्ष्म सौन्दर्य भावनात्मक अनुभूति से सम्बन्धित है, मन, कर्म, वचन का सम्बन्ध भावना से है, जिसके आधार पर कवि अपनी भावनात्मक अनुभूति को व्यक्त करता है। घनानंद की मान्यता थी कि जो प्रेमी मन से पवित्र, वचन से मधुर और कर्म से महान होते हैं, वे ही वास्तव में प्रेम और सौन्दर्य के सच्चे हकदार होते हैं। क्योंकि प्रेम और सौन्दर्य का मार्ग ऐसा पवित्र व दिव्य है, जिस पर सभी पथिक सरलता से नहीं चल सकते हैं। इस मार्ग पर तो वही प्रेमी पैर रख सकते हैं, जिन्होंने स्वयं प्रेमानुभूति और सौन्दर्यानुभूति की। घनानंद मन, वचन और कर्म से सच्चे सौन्दर्य के पारखी रहे हैं, इसी कारण वे सौन्दर्य के आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर सके हैं। प्रेमी घनानंद में मन की पवित्रता, कर्म की महानता और वचन की मधुरता कूट-कूट कर पायी गई है। प्रेम एवं सौन्दर्य के प्रति ये इतने अधिक पवित्र, मधुर और महान रहे कि उसी प्रेम एवं सौन्दर्य के अलौकिक स्वरूप पर स्वयं को न्यौछावर कर दिया। उनकी सुजान उस असीम, सूक्ष्म सौन्दर्य व प्रेम सम्बन्धी मान्यता की प्रतीक रही है, जिसके सौन्दर्य दर्शन से ही वे अपनी इच्छा की तृप्ति कर लेते थे। डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा का कहना है—“बुद्धि विश्लेषण के द्वारा सुन्दर वस्तु की थाह नहीं

लगा पाती; मन अपने आनन्द की तोल नहीं कर पाता। बुद्धि चकित होती है, उलझ जाती है और सौन्दर्य को देखकर उसके आँकड़े व्यर्थ हो जाते हैं किन्तु चकित होकर भी उसे आनन्द का आलोक मिलता है। उलझ जाने पर भी उसमें नवीन रहस्यों का उदघाटन होता है। अतः आनन्द की अनुभूति रहस्यमयी, अखण्ड तथा अनन्त है।<sup>116</sup> घनानंद का मानना है कि प्रिय के प्रति समर्पित भाव उस असीम आनन्द की अनुभूति करा सकने में सफल होता है।

प्रेम और सौन्दर्य में विश्वास करना घनानंद का धर्म रहा। इसी विश्वास के द्वारा इन्होंने प्रेम तत्व को प्राप्त किया, जो इनके जीवन की सिद्धि थी। अतः प्रेम ही धर्म है, वही कर्म है और वही सब कुछ है। प्रेम एक ऐसी पवित्र भावभूमि है, जहाँ पहुँचने पर मनुष्य में जाँति-पाँति का भेद-भाव पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। प्रेम मानव जीवन की एक ऐसी साधना है, जिसके द्वारा प्रेमी साधक लौकिक धरातल से ऊपर उठकर अलौकिक धरातल तक पहुँच जाता है। घनानंद के प्रेम का सम्बन्ध मन के सूक्ष्मतर भावों से अधिक है। आत्मानुभूति के द्वारा प्रेम का सच्चा स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है। घनानंद जैसे विरही कवि का हृदय सदैव उसी तरह प्यासा बना रहा है, जिस प्रकार बादलों के छाये रहने पर भी चातक प्यासा बना रहता है। इनके विरह में परमात्मा की व्यापक सत्ता का आभास दिखाई पड़ता है। वियोग की चरमावस्था द्वारा ही घनानंद का लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम की भाव-भूमि का स्पर्श कर सका है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि घनानंद के प्रेम व सौन्दर्य निरूपण में उनकी स्वानुभूति और अन्तर्दृष्टि पूर्ण रूप से देखी गयी है। सौन्दर्य और प्रेम का जितना परिष्कृत और परिमार्जित रूप घनानंद के काव्य में पाया गया है, उतना अन्य किसी के काव्य में नहीं। प्रेम और सौन्दर्य का लौकिक रूप इनके प्रेम का आधार रहा है परन्तु उनका अलौकिक स्वरूप इनके जीवन का। इन्हीं विशेषताओं के कारण घनानंद अन्य समकालीन कवियों से भिन्न रहे, वे प्रेम और सौन्दर्य के सच्चे कवि व पारखी हैं।

## सन्दर्भ

1. सं०-देवेन्द्रनाथ शर्मा, समीक्षा, भारतीय साहित्य में शृंगार रस, गणपतिचन्द्र गुप्त, यूनिवर्सिटी कॉलोनी, सैदपुर पटना, 1973, अंक 4, पृ०सं०, 11
2. कु० शकुन्तला शर्मा, आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना, सरस्वती मन्दिर, जतनबर, बनारस, 1952, पृ०सं०, 26
3. डॉ० लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, सौन्दर्यशास्त्र: स्वरूप और समस्याएँ, ग्रन्थायन, सासनी गेट, अलीगढ़, 1991, पृ०सं०, 35
4. डॉ० अजब सिंह, आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1975, पृ०सं०, 23
5. श्री तारानाथ, वाचस्पत्यम् (षष्ठ भाग), चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1962, पृ०सं०, 5338
6. डॉ० रामेश्वर खण्डेलवाल, जयशंकर प्रसाद (वस्तु और कला), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1968, पृ०सं०, 288
7. राधाकान्तदेव बहादुरेण, शब्दकल्पद्रुम, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, पृ०सं०, 373, सं०
8. श्री मदमर सिंह, अमरकोष (तृतीय काण्ड), नवल किशोर प्रेस बुक, डिपो, लखनऊ, सं० 1975 वि०, पृ०सं०, 378
9. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (सुजानहित), वाणी वितान बनारस, 2009, छ०सं०, 192
10. सं० जगदीश गुप्त, हिन्दुस्तानी (त्रैमासिक), रसानुभूति की सौन्दर्यशास्त्रीय समीक्षा-लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, अंक 1 हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, जनवरी-मार्च, 1981, पृ०सं०, 51
11. डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, सौन्दर्यशास्त्र, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृ०सं०, 10
12. डॉ० रामविलास शर्मा, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984, पृ०सं०, 265

13. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रसमीमांसा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, सं० 2017, पृ०सं०, 24
14. बाबू गुलाबराय, सिद्धान्त और अध्ययन, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1985, पृ०सं०, 98
15. डॉ० चन्द्रकला, सौन्दर्यशास्त्र स्वरूप और विकास, साधना प्रकाशन, चण्डीगढ़, 1989, पृ०सं०, 32
16. सं० धीरेंद्र वर्मा, सूरसागर (उद्धव सन्देश) छं०सं०—163, पृ०सं०—189
17. कैलाश भूषण जिन्दल, रामचरितमानस (अयोध्याकांड), किताब महल प्रा०लि० इलाहाबाद, 1991, पृ०सं०, 503, प०सं०, 116
18. सं०रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली (मानसरोवर खण्ड), पृ०सं०—23, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 2048 वि०, प०सं०, 8
19. रामजी मिश्र, रसरज, प०सं०, 6, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1960, पृ०सं०, 3
20. सं० जगन्नाथदास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, दो०सं०, 432, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, 1998, पृ०सं०, 129
21. सुजानहित, छं०सं०, 166
22. डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, सौन्दर्यशास्त्र, पृ०सं०, 10
23. C.T. Onions/William Little, Shorter Oxford English Dictionary on Historical Principles, Oxford University Press, Great Claendon Street, NewYork, 2007. P-207.
24. Epipsychidion-P.B. Shelley Page-105, C And J Ollivere Street Bond Street London, 1821
25. उद्धत, कुमार विमल, सौन्दर्यशास्त्र के तत्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ०सं०, 91
26. सं० श्री नारायणलाल चतुर्वेदी, सरस्वती, सौन्दर्य तत्व, श्री श्यामाकान्त द्विवेदी इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, अप्रैल 1965, पृ०सं०, 299

27. John Keats, Endymion, (The Poetical Work of John Keats 1-3 Poems (Vol01) G.Bell, 1971.  
"A thing of beauty is a joy fore ever."
28. John Keats, Ode On a Grecian Urn, Poet's Region, England, 1820, Para-50  
"Beauty is truth, truth beauty,-that is all  
Ye know on earth, and all ye need to know."
29. www.shakespeares.sonnets.com (54)
30. उद्धत, कुमार विमल, सौन्दर्यशास्त्र के तत्व, पृ0सं0, 92
31. सुमित्रानंदन पंत, पल्लविनी (मानव शीर्षक कविता), भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 2004, पृ0सं0, 322
32. डॉ0 बच्चन सिंह, रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं0 2015 वि0, पृ0सं0, 226
33. डॉ0 लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ0सं0-18
34. डॉ0 सभापति मिश्र, घनआनंद की काव्य साधना, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989, पृ0सं0, 66
35. सुजानहित, छं0सं0-41
36. डॉ0 कृष्णचंद्र वर्मा, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, कैलाश पुस्तक सदन, आगरा, 1967, पृ0सं0, 153
37. डॉ0 लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ0सं0, 16
38. सुजानहित, छं0सं0, 166
39. वही, छ0सं0, 18
40. वही, छ0सं0, 127
41. वही, छ0सं0, 167
42. वही, छ0सं0, 30
43. वही, छ0सं0, 98

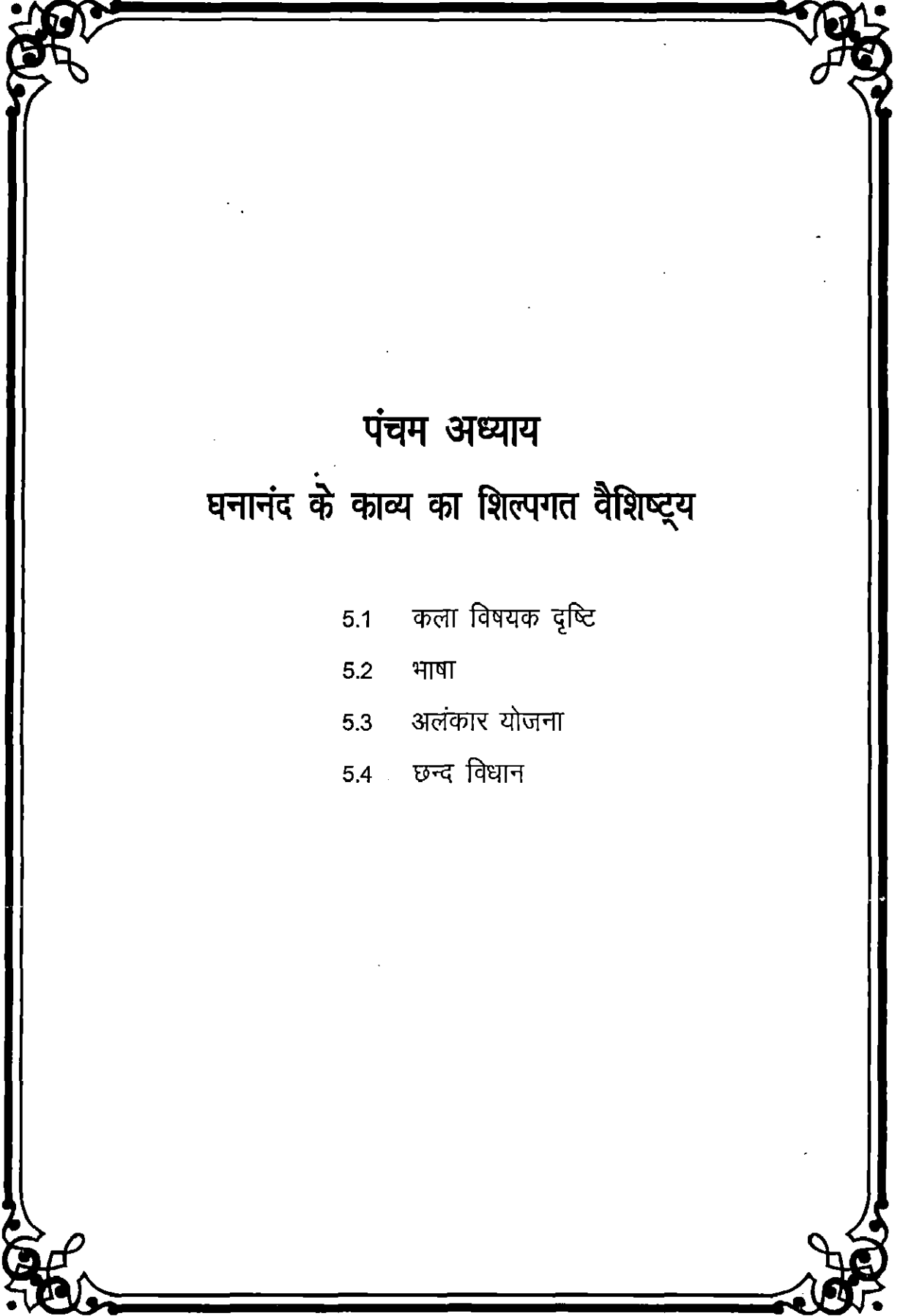


44. वही, छं०सं०, 216
45. वही, छं०सं०, 98
46. वही, छं०सं०, 103
47. वही, छं०सं०, 20
48. वही, छं०सं०, 88
49. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2009, पृ०सं०, 41
50. प्रकीर्णक, छं०सं०, 1
51. सुजानहित, छं०सं०, 153
52. प्रकीर्णक, छं०सं०, 4
53. सुजानहित, छं०सं०, 211
54. वही, छं०सं०, 97
55. डॉ० लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ०सं०, 37
56. सुजानहित, छं०सं०, 407
57. कृष्ण कौमुदी, छं०सं०, 70
58. वही, छं०सं०, 61
59. वही, छं०सं०, 27
60. वही, छं०सं०, 29
61. वही, छं०सं०, 34
62. वही, छं०सं०, 37
63. प्रकीर्णक, छं०सं०, 14
64. वही, छं०सं०, 40
65. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०, 168
66. प्रकीर्णक, छं०सं०, 3
67. वही, छं०सं०, 8

68. डॉ० सुरेंद्रचंद्र त्यागी, छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन, अनुराधा प्रकाशन, मेरठ, 1976, पृ०सं०, 227
69. डॉ० रामेश्वर खण्डेलवाल, जयशंकर प्रसाद (वस्तु और कला), पृ०सं०, 228
70. किरण कुमारी गुप्ता, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 2006, पृ०सं०, 10, 11
71. रघुवंश, प्रकृति और हिन्दी काव्य, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, 2005, पृ०सं०, 72
72. शकुन्तला शर्मा, आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना, पृ०सं०, 118
73. सं० अशोक शुक्ल, घनानंद कवित्त, पदम बुक कम्पनी, जयपुर, 1968, पृ०सं०, 74
74. डॉ० श्यामसुन्दरदास, हिन्दी साहित्य, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, सं० 2006, पृ०सं०, 14
75. दुर्गाशंकर मिश्र, सेनापति और उनका काव्य, नवयुग ग्रन्थागार, लखनऊ 1963, पृ०सं०, 115
76. डॉ० लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ०सं०-46
77. डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, पृ०सं०, 138
78. सरस बसंत, छं०सं०, 7, 8, 9
79. वही, छं०सं०, 1, 4
80. सुजानहित, छं०सं०, 371
81. पदावली, छं०सं०, 532
82. सरस बसंत, छं०सं०, 62, 63, 64
83. सुजान हित, छं०सं०, 224
84. वही, छं०सं०, 269
85. वही, छं०सं०, 263
86. वही, छं०सं०, 76
87. वही, छं०सं०, 182

88. वही, छं0सं0, 138
89. वही, छं0सं0, 274
90. वही, छं0सं0, 173
91. वही, छं0सं0, 259
92. वही, छं0सं0, 339
93. वही, छं0सं0, 226
94. प्रेम पत्रिका, छं0सं0, 62
95. डॉ0 अजब सिंह, आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ0सं0, 26
96. डॉ0 रामकुमार शर्मा, तरुण काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, उन्मेष प्रकाशन, हरिद्वार, 1993, पृ0सं0, 5
97. श्याममनोहर पाण्डेय, मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983, पृ0सं0, 160, 161
98. डॉ0 कृष्णमुरारी मिश्र, छायावादी काव्य में सौन्दर्य चेतना, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1979, पृ0सं0, 26
99. भगीरथ मिश्र, हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (भाग-7), नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी 2029 वि०, पृ0सं0, 40
100. उद्धृत, डॉ0 लक्ष्मणप्रसाद शर्मा, रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृ0सं0, 66
101. डॉ0 बच्चन सिंह, रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ0सं0, 235
102. सुजानहित, छं0सं0, 28, 97
103. रघुनाथ भट्ट, हिन्दी सतसई परम्परा में दयाराम सतसई, गिरनार प्रकाशन, महेसाना, गुजरात, 1984, पृ0सं0, 78
104. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1980, पृ0सं0, 48
105. सुजान हित, छं0सं0, 77
106. डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सैना, हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1979, पृ0सं0, 401

107. डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, 1969, पृ०सं०, 55
108. मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, पृ०सं०, 102
109. सुजानहित, छं०सं०, 260
110. वही, छं०सं०, 116
111. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सैना, हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ०सं०, 455
112. शकुन्तला शर्मा, आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना, पृ०सं०, 2
113. मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ०सं०, 76
114. शिवबालक राय, काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व, वसुमती जीरो रोड, इलाहाबाद, 1968, पृ०सं०, 208
115. सुजानहित, छं०सं०, 10
116. डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, सौन्दर्यशास्त्र, पृ०सं०, 94, 95



## पंचम अध्याय

### घनानंद के काव्य का शिल्पगत वैशिष्ट्य

- 5.1 कला विषयक दृष्टि
- 5.2 भाषा
- 5.3 अलंकार योजना
- 5.4 छन्द विधान

# घनानंद के काव्य का शिल्पगत वैशिष्ट्य

## 5.1 कला विषयक दृष्टि

काव्य के दो पक्ष हैं—भावपक्ष और कलापक्ष। भावपक्ष के अन्तर्गत कवि की अनुभूति के विविध रूप और कलापक्ष के अन्तर्गत उसका सम्पूर्ण बुद्धि कौशल देखा जाता है। साहित्य में जीवन की व्याख्या, जीवन का सार, जीवन की गति मुख्यतः भाव पर आधारित होते हैं। एक सफल कलाकार अथवा साहित्यकार जीवन और जगत से प्रभावों को ग्रहण कर उन्हें भाव की भाषा में बदल देता है। तदुपरान्त उसे कला के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि सम्पर्क में आने वाले हृदय में वे भाव भाषा में प्रतिध्वनित होकर प्रेषणीय हो जाते हैं। भावों को एक हृदय से दूसरे हृदय तक सहजता से पहुँचाने के लिए कलात्मक उपकरणों की आवश्यकता होती है। वस्तुतः कला का जन्म यहीं से होता है, यह कार्य कला के द्वारा ही सहजता से सम्भव है।

समस्त वाङ्मय में काव्य या कला की अपनी एक विशिष्ट भूमिका है। जिस प्रकार मानव के प्राणों की सुरक्षा के लिए शरीर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार काव्य में भावों को सुरक्षित रखने के लिए उसके शरीर रूपी शिल्प की आवश्यकता होती है। भाव और शिल्प का सम्बन्ध काव्य की रचना—प्रक्रिया से सीधा जुड़ा है। काव्य के इसी भाव व कला पक्ष को काव्य का अंतरंग व बहिरंग पक्ष भी कहा जाता है। जहाँ भाव पक्ष के अन्तर्गत अनुभूति या संवेदना मुख्य रहती है, वहीं कला पक्ष के अन्तर्गत अभिव्यक्ति या शिल्प मुख्य होता है। भाव और कला का पारस्परिक सम्बन्ध हमारे साहित्य का विशिष्ट पक्ष है। भारतीय साहित्य में कला का समृद्ध रूप देखा गया है।

काव्य और कला एक दूसरे के पूरक हैं। इनमें से किसी एक के अभाव में दूसरे की कल्पना निरर्थक है। कला के अभाव में काव्य आकर्षणहीन दिखाई देता है। कला काव्य का बाह्य पक्ष है, जिसे कृति का शरीर भी कहा जा सकता है।

कला काव्य को चारुता एवं सौन्दर्य प्रदान करता है, अतः जहाँ काव्य है, वहाँ कला का होना अनिवार्य है। कला का कार्य यह है कि वह भावों को भाषा का स्वरूप प्रदान कर अलंकार, माधुर्य, ओज आदि गुणों से सुसज्जित कर उसे सहृदय एवं चित्ताकर्षक बना देती है। गुलाबराय सं० साहित्य सन्देश में द्वारिकाप्रसाद सक्सैना ने अपने लेख 'क्या साहित्य एक कला है' में आचार्य शुक्ल के वक्तव्य को इस प्रकार कहा है—“कला शब्द के कारण काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में शिल्प वाला बेल-बूट और नक्काशी वाली धारणा आई है।”<sup>1</sup>

काव्य में अभिव्यंजना शैली (कला) का बड़ा उत्कृष्ट स्थान है। मानव में अभिव्यक्ति की सहज अभिलाषा होती है, भावना और कल्पना उसके आधार होते हैं। इस दृष्टि से कला के विविध रूपों का मूल्यांकन सम्भव होता है। मानव ने जब पत्थर को छैनी से काटकर उस पर अपने भावों का प्रकाशन किया, तभी वह मूर्ति कला कही गयी, जब उसने इन्हीं भावों को कागज या पर्दे पर तूलिका द्वारा रंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया, तो वह चित्रकला मानी गयी, जब उसने नाद, लय, गान, पद, गति और नर्तन आदि के माध्यम से भावों को साकार किया, तो संगीत कला का सृजन हुआ, इसी प्रकार जब मानव ने अपने भावों का व्यक्तीकरण शब्दों और छन्दों में किया, तो वह कविता कहलायी। “कला, काव्य का पोषक है, उसका एक अंग मात्र है।”<sup>2</sup> यदि लोकव्यवहार में देखें तो एक साधारण से घर को देखकर उसे कोई भी कलात्मक भवन नहीं कहता, जबकि एक सुन्दर बेल-बूटे कढ़े हुए रंग-बिरंगे पत्थर से बने हुए ताजमहल को देखकर उसे कलात्मक कृति कहकर पुकारता है। इस प्रकार कला में नैपुण्य का भाव स्पष्ट दिखाई देता है।

काव्य में कलापक्षीय दृष्टिकोण अधिक विस्तार पाता है क्योंकि इसमें कल्पना और भावना की प्रधानता विद्यमान होती है। कला पक्ष के अन्तर्गत रस, छन्द, अलंकार, शब्द शक्ति, गुण, प्रतीक, मुहावरे व लोकोक्ति आदि तत्त्वों का समावेश होता है। ये वे तत्व हैं, जिनके उपयोग से काव्य में सहजता, सजीवता व सरलता आती है। सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को कम से कम शब्दों में अभिव्यक्त करने में ये तत्व पूर्णतः सहायक होते हैं। “कला केवल वर्ण, शब्द, छंद, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता नहीं, किन्तु इन सभी से सम्बद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है। जैसे

केवल बीज से पुष्प की पूरी कला विकसित नहीं होती न अंकुर से, न डाल से, न पौधे से, जल से लेकर तना, डाल, पल्लव और फूल के रंग, रेणु, गन्ध तक फूल की पूरी कला के लिए जरूरी है, वैसे ही काव्य की कला के लिए काव्य के सभी लक्षण भी।<sup>3</sup>

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में कला विषयक दृष्टिकोण अधिक विस्तार पाता है। इसका एक कारण यह है कि रीतिकाल में कला की प्रवृत्ति मुख्य रूप से देखी गई। इस काल में भावपक्ष की अपेक्षा कला विषयक दृष्टि उत्कर्ष रूप में है, रीतिकाल को 'कलाकाल' की संज्ञा भी प्रदान की गई है। रीतिमुक्त कवि घनानंद के काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों समान रूप से देखे गये हैं। काव्य में भाव और कला का समन्वय होता है। दोनों के अस्तित्व के बिना काव्य पूर्ण नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में रामफेर त्रिपाठी जी का कहना है—“घनानंद भाव और कला के धनी थे। इसी कारण उनके काव्य में भाव और कला की ऐसी समन्वयात्मकता मिलती है, जो हमें हिन्दी के सूर, तुलसी आदि महाकवियों को छोड़कर अन्य में नहीं दिखाई देती। इस दृष्टि से किसी कवि के भाव की चादर में सिकुड़न है, तो किसी के कला की चादर में।”<sup>4</sup>

रीतिकाल काव्य, कला के विकास के लिए प्रसिद्ध है। वह काव्य कला, जो अन्य रीतिकालीन कवियों के हाथों निर्जीव हो चली थी और प्रदर्शन की वस्तु बन चली थी, घनानंद के हाथों उसे सहजता, सरलता, सजीवता, प्रांजलता और भावों की अभिव्यक्ति की सक्षमता प्राप्त हुई। वास्तव में घनानंद ने काव्य-कला का निखार कर उसे सुष्ठता प्रदान की थी। घनानंद ने निर्जीव लक्षणबद्ध कविता की धारा से अपने को पृथक् करते हुए स्वयं लिखा है—

यौं घनआनंद छाबत भावत,

जान-सजीवन-ओर तँ आवत।<sup>5</sup>

घनानंद कविता करने में कितने तल्लीन रहते थे, उनका हृदय कविता में कितना डूब गया था यह तो 'मोहि तो मेरे कबित्त बनावत' से स्पष्ट हो जाता है। कविता इनके लिए पाण्डित्य प्रदर्शन की वस्तु नहीं थी, वरन् उनके हृदय में उठने वाली भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति थी। इसलिए इनके काव्य की विशेषता



है—हृदयगत भावों की संवेदनीय, सरल, सहज रूप में अभिव्यक्ति। इनकी कविता में भाव और कला एक दूसरे पर हावी नहीं वरन् एक दूसरे के सहायक हैं, तभी इनकी कविता में सहजता, मधुरिमा, सरलता और प्रवाहशीलता तथा हृदय की संवेदनशील पकड़ है। अन्य लक्षणबद्ध कवियों की भांति अलंकार आदि कला प्रसाधन इनकी कविता को अपने भार से दबा नहीं देते वरन् उसके सहज सौन्दर्यवर्धक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अतः इनका काव्य निर्जीव लक्षणबद्धता से मुक्त कला के उत्कृष्ट रूप का काव्य है।

वस्तुतः किसी वस्तु को रमणीय रूप में प्रस्तुत करना कला का मुख्य क्षेत्र है। घनानंद के सन्दर्भ में यह मान्यता खरी उतरती है। घनानंद के काव्य में कला के मुख्य तत्वों ने (रस, छन्द, अलंकार, भाषा, गुण, शब्दशक्ति, प्रतीक, मुहावरे व लोकोक्ति) अपनी अद्भुत छटा बिखेरकर काव्य को उत्कृष्ट बनाया है। कम से कम शब्दों के माध्यम से भावों की परतों को खोलना और पाठकों पर उसकी अमिट छाप छोड़ देना, घनानंद के कला विषयक दृष्टिकोण की विशेषता है। उनके काव्य में भावों का जितना गाम्भीर्य रूप है, उतना ही कला का उत्कर्ष रूप भी। कला के विविध रूप उनके काव्य में सौन्दर्य वृद्धि करते हैं। लोकोक्ति और मुहावरे उनके काव्य में जीवन का एक नया रंग भर देते हैं।

घनानंद की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। उन्होंने ब्रजभाषा को परिष्कृत किया और रमणीय बनाया है। आचार्य विश्वनाथ ने उन्हें 'ब्रजभाषा प्रवीन' कहा है—

“नेही महा ब्रजभाषा—प्रबीन

औ सुन्दरतानि के भेद कोँ जानै।

जोग—बियोग की रीति में कोबिद,

भावना—भेद—स्वरूप कोँ ठानै।

चाह के रंग में भीज्यौ हियो,

बिछुरै मिलै प्रीतम सांति न मानै।

भाषा—प्रबीन, सुछंद सदा रहै,

सो घन जी के कबित बखानै॥<sup>6</sup>

घनानंद की भाषा में लाक्षणिकता की प्रधानता है, जिससे इनके भावों में तीव्रता और व्यापकता आ गई है। उनकी भाषा में माधुर्य गुण का समावेश मुख्य रूप से रहा है। घनानंद का काव्य विरह प्रधान है। विरह की मार्मिक उक्तियों से घनानंद की भाषा में माधुर्य आ गया है। इसी कारण शृंगार रस को राजस्व स्थान प्राप्त हुआ है। शृंगार की अभिव्यक्ति में वे अनेक प्रतीकों का सहारा लेते हैं, जिसमें मीन, चातक, चकोर आदि मुख्य हैं। प्रतीकों का प्रयोग उनके कवित्त और सवैयाओं में अधिक मुखरित हुआ है। घनानंद के जीवन में विषमता अधिक थी, विषम परिस्थितियों में उनका जीवन अधिक गुज़रा, इसलिए शृंगार के साथ-साथ विरोधाभास उनके जीवन में अधिक आ गया। उनके काव्य में अलंकारों के विविध रूप अपनी छटा बिखेरते प्रतीत होते हैं, परन्तु विरोधाभास उनके जीवन का सार अभिव्यक्त करता प्रतीत होता है।

घनानंद का कला पक्ष काव्य के बाह्य रूप की सजावट नहीं है, अपितु रचना का मूलभूत कलेवर है। उनके काव्य की पहचान उनकी शैली से स्वतः हो जाती है। अतः इनकी शैली अनूठी है। जिस प्रकार सूर, तुलसी, मीरा, कबीर, बिहारी, आदि की शैली सहज ज्ञात हो जाती है, उसी प्रकार घनानंद की शैली स्वतः उभर कर प्रेमी मन को मंत्र मुग्ध कर देती है। घनानंद के कलापक्षीय दृष्टिकोण में सादगी है, भावुकता है। उन्होंने विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है, परन्तु इससे उनकी भाषा कहीं भी दुरुह नहीं हुई है, अपितु ये शब्द घनानंद के भावों को और स्पष्ट कर देते हैं। घनानंद की अभिव्यंजना शैली में कहीं भी कोरी भावुकता एवं अतिशयोक्ति नहीं है, वे सदैव इससे दूर रहे हैं। डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा का इस सम्बन्ध में कहना है—“परिणाम की दृष्टि से नहीं, आग्रह में बद्ध रहने की दृष्टि से नहीं अपितु भावुकता की दृष्टि से और निर्बंध शैली में काव्य रचना करने की दृष्टि से इनका (घनानंद) स्थान रीतिकारों में निश्चय ही श्रेष्ठतर है।”<sup>7</sup>

## 5.2 भाषा

रीति स्वच्छन्द काव्य धारा के अग्रगण्य कवि घनानंद के काव्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति की परम्परा समान रूप से दिखाई देती है। लीक से हटकर चलने की परम्परा और अनुभूति प्रधान काव्य लिखने की परम्परा उनके सम्पूर्ण काव्य में

देखी गई है। कविता हृदय की स्वाभाविक भावनाओं की अभिव्यक्ति है और उसे कलात्मक रूप प्रदान करने में कला की आवश्यकता होती है। इस कलात्मक रूप की अभिव्यक्ति जितनी अधिक एक स्वानुभूति प्रेरित कलाकार कर सकता है उतना अन्य कोई नहीं। घनानंद के काव्य में अभिव्यक्ति की यह कलात्मकता पूर्ण रूप से दृष्टिगत हुई है। घनानंद ने जैसा देखा, अनुभव किया, उसे उसी रूप में अभिव्यक्त किया है। यह उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। इस दृष्टि से घनानंद के काव्य का आंकलन करते समय हमारी दृष्टि स्वतः ही भाषा की ओर जाती है।

भाषा भाव, विचार, संवेग, अनुभूति आदि की अभिव्यक्ति का सशक्त व सर्वोत्तम माध्यम है। यह भावों के आदान-प्रदान का भी साधन है। भाषा के बिना भावों का अस्तित्व ही नहीं रहता। भाषा स्वयं ही भाव की मूर्ति है। स्पष्टतः भावाभिव्यक्ति ही भाषा का महत्वपूर्ण साधन है, जिसके लिए कवि अथवा लेखक उपयुक्त शब्दों का चयन करता है। कवि अथवा लेखक पुष्ट, परिमार्जित एवं प्रांजल भाषा के माध्यम से श्रोता अथवा पाठक के सम्मुख अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। भाषा विचाराभिव्यक्ति का वास्तविक माध्यम है। भाषा के अभाव में काव्यानुभूतियाँ गूंगे का गुड़ बनकर रह जाती हैं। डॉ० श्यामसुंदर दास जी का इस सम्बन्ध में कहना है—“यद्यपि भावों की प्रधानता सबको मान्य है किन्तु भाषा के बिना तो भावों का अस्तित्व ही नहीं रहता है। बिना भाषा के भाव नहीं रह सकता। भाषा स्वयं ही भाव की मूर्ति है। इस तथ्य पर विचार करने से कविता के भावपक्ष और कलापक्ष में अभेद की स्थापना हो जाती है। भावों की साधना, भाषा की साधना के साथ-साथ चल सकती है।”<sup>8</sup> इस प्रकार भाव यदि कविता का प्राण है, तो भाषा उसका शरीर। भाव और भाषा का अटूट सम्बन्ध है। भाषा के माध्यम से ही भावों को जीवंत रूप और शाश्वत रूप प्राप्त होता है। कल्पना के क्षेत्र में विचरण करने के लिए और अपनी भाषा को रमणीय बनाने के लिए कवि को अधिक सशक्त भाषा की आवश्यकता होती है। एक साधारण वक्ता की अपेक्षा कवि की भाषा अधिक प्रांजल व समृद्ध होती है। कवि भावों के सागर में डुबकियाँ लगाता है और उन भावों को वह समृद्धशाली भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। घनानंद एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपने भावों और अनुभूतियों पर भाषा का ऐसा आवरण डाला है, जिसे खोलते ही (पढ़ते ही) एक अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होती है।

भाषा 'भाष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है प्रकट करना। अनुभूति की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही सम्भव है। 'अनुभूत भावों की स्पष्टता और मिठास के साथ प्रकट करने के प्रयत्न में भाव अपने आप ही अनुकूल हो जाते हैं।'<sup>9</sup> कविवर पंत ने भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है—“भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व के हतंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।”<sup>10</sup> अतः कविता के लिए भाषा रूपी शरीर का सौन्दर्य उतना ही आवश्यक है, जितना उसके भाव रूपी प्राण-प्रतिष्ठा का। यों तो भाषा के विविध रूप होते हैं—सामान्य भाषा, साहित्यिक भाषा, काव्य-भाषा, गद्य की भाषा, देशी भाषा, विदेशी भाषा और प्रशासकीय भाषा आदि, परन्तु विचारों की अभिव्यक्ति सामान्य भाषा की अपेक्षा काव्य-भाषा में अधिक प्रभावशाली होती है। काव्य-भाषा ही हृदयस्थ भावों का सहज उद्रेक कर, उन्हें सहृदय संवेद्य बनाती है। सामान्य भाषा का अर्थ वर्ण, शब्द और वाक्यों के समुच्चय से है, किन्तु काव्य भाषा भाषायी उपकरणों (वर्ण, शब्द और वाक्य) का ऐसा व्यवस्थित विधान है, जिसमें भाव, सौन्दर्य तथा अर्थ आदि के सम्प्रेषण की पूर्ण क्षमता रहती है। चित्रात्मकता, सहजता, मधुरता, व्यंजकता, प्रतीकात्मकता, भावानुरूपता, रागात्मकता तथा व्याकरणगत उपयुक्तता आदि गुणों के कारण काव्य भाषा सामान्य भाषा से पृथक् अस्तित्व रखती है। काव्य में भाषा का सौन्दर्य तब और भी बढ़ जाता है, जब भाषा भावानुरूप होने के साथ भावों की अनुगामिनी भी हो।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में परिमार्जित भाषा का अभाव था, परन्तु शनैःशनैः आवश्यकतानुसार हिन्दी भाषा में शब्दों का आगमन होता गया और मध्यकाल तक हिन्दी भाषा का शब्द भण्डार सम्पन्न हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि भक्तिकाल के अन्तिम चरण में तथा रीतिकाल के प्रारम्भ में ब्रज और अवधी दोनों भाषाएँ अपनी चरमसीमा पर थीं। जहाँ अवधी भाषा में रचित 'पदमावत' और 'रामचरितमानस' जैसे उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी, वहीं ब्रजभाषा में रचित 'सूरसागर' तथा 'भ्रमरगीत' जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थों का सृजन भी हो चुका था। भाषा की दृष्टि से रीतिकाल हिन्दी साहित्य का सबसे समृद्धशाली काल है। “भाषा में कोमल शब्दावली, मुहावरे, कहावतें आदि जितने सुन्दर रूप में इस

काल में प्रयुक्त हुए हैं, उतने पहले कभी नहीं हुए। बेनीप्रवीन, घनानंद, बिहारी, देव, पदमाकर, मतिराम आदि कवियों ने भाषा का जो मनोरम तथा संगठित रूप उपस्थित किया, वह आधुनिक युग में भी दुर्लभ है।<sup>11</sup> रीतिकाल की भाषा मुख्य रूप से ब्रजभाषा है। “रीतियुग ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा और इस समय ब्रजभाषा की कलात्मकता अपेक्षाकृत अधिक हो गयी थी। उसमें जो मार्मिकता, लाक्षणिकता और भावप्रवणता है, वह अपने युग की विशेष देन मानी जानी चाहिए।”<sup>12</sup> ब्रज शब्द की व्युत्पत्ति ‘ब्रज धातु’ से हुई है, जिसका अर्थ चलना, पशुशाला अथवा गोष्ठ है। आचार्य भिखारीदास ने अपने ग्रन्थ ‘काव्य निर्णय’ में ब्रजभाषा को अत्यन्त रुचिकर बताया है—

“भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोइ।”<sup>13</sup>

मधुरता, मृसणता, प्रवाह, सुगमता, लचक, सरसता आदि ब्रजभाषा की प्रमुख विशेषतायें हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा के अधिकांशतः कवियों ने ब्रजभाषा के उक्त गुणों का निर्वाह अपने काव्य में किया है। रीतिमुक्त कवि घनानंद ब्रजभाषा के ही कवि हैं। घनानंद से पूर्व ब्रजभाषा का पूर्णतः विकास हो चुका था। उन्होंने पूर्ण विकसित स्वरूप में ही ब्रजभाषा का स्पर्श किया। इसीलिए ब्रजभाषा घनानंद को विरासत में मिली थी। उन्होंने पूर्ण साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया। ब्रजभाषी घनानंद के सम्बन्ध में शशि सहगल ने कहा है कि “यदि सूर को ब्रजभाषा का बाल्मीकि कहा जाता है, तो घनानंद सहज ही इसके कालिदास या माघ कहे जा सकते हैं।”<sup>14</sup>

रीतिकाल में ब्रजभाषा सर्वस्वीकृत काव्य-भाषा थी। घनानंद ने अपने काव्य में विशुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग इस प्रकार किया है, कि वह अपने समस्त उत्कर्षों के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत हो गई है। घनानंद ब्रजभाषा के ही कवि रहे हैं। घनानंद ने जिस अंचल की धरती पर जन्म लिया, उसका मान बनाये रखा। उन्होंने बचपन से ही जिस बोली में विचार विनिमय करने की क्षमता विकसित की थी, उस बोली में शिष्ट साहित्यिक ब्रजभाषा अपनाने की क्षमता थी। लोककवियों एवं लोकगायकों के स्थानीय शब्द सबकी समझ में नहीं आते, किन्तु उनका भाव ग्रहण हो जाने से हम बार-बार उनकी ओर झुकते हैं, उन्हें सुनने के लिए लालायित हो उठते हैं। इसी प्रकार घनानंद की भाषा सौष्ठव को जानने के लिए हम उनकी ओर झुकते हैं,

लालायित होते हैं। अवधी एक बोली रही है, फिर भी उस बोली को लोग न केवल समझते हैं, बल्कि देश, विदेश में अवधी के प्रयोक्ता कवि तुलसी का इतना आदर है कि विदेशी भाषा में 'मानस' के सर्वाधिक अनुवाद हुए हैं। घनानंद रीतिकाल के ऐसे कवि हैं, जिन्होंने साहित्यिक ब्रजभाषा को लोकभाषा से अधिकार-पूर्वक जोड़ा और सम्प्रेषण के माध्यम का नया कीर्तिमान स्थापित किया। घनानंद जैसी सुन्दर, स्वच्छ ब्रजभाषा अन्य किसी कवि के काव्य में नहीं देखी गई। उन्होंने ब्रजभाषा का जैसा परिनिष्ठित और विकसित रूप प्रयुक्त किया है, उसकी तुलना किसी अन्य ब्रजभाषी कवि से नहीं की जा सकती। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इस सम्बन्ध में कहा भी है—“इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है।”<sup>15</sup> घनानंद के प्रशंसक ब्रजनाथ ने उन्हें ब्रजभाषा में प्रवीण मानते हुए कहा है—

नेही महा ब्रजभाषा—प्रवीण औ सुंदरतानि के भेद को जानै।

जोग—बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना—भेद—स्वरूप को ठानै।

चाह के रँग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरै मिलै प्रीतम सांति न मानै।

भाषा—प्रवीण, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कबित बखानै।।”<sup>16</sup>

उनकी भाषा का पान करने वाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता, वह तो स्वच्छन्द तथा ब्रजभाषा का रसिक या ज्ञानी ही हो सकता है। अतः घनानंद की भाषा सर्वसाधारण की समझ की वस्तु नहीं है, उसे तो बुद्धिमत्ता के साथ सुजान ही समझ सकती हैं या फिर कोई ब्रजभाषा प्रवीण समझ सकता है—“घनानंद की भाषा को और उसके सौन्दर्य को वही समझ सकता है, जो भाषा—प्रवीण हो, बार—बार उनकी कविता पढ़ता हो और उसके मर्म को समझने में यत्नशील हो, बुद्धिजीवी हो, हृदयहीन न हो बल्कि सहृदय हो और हृदय की आँखों से जिसने प्रेम को देखा—समझा हो, प्रेम के रंग में स्वतः भीगा हुआ हो।”<sup>17</sup> वही व्यक्ति उनकी भाषा में डुबकी लगाकर उसके मर्म तक पहुँच सकता है। यह सच है कि घनानंद के “हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ था।”<sup>18</sup> अतः ब्रजभाषा पर जैसा अधिकार घनानंद का था, वैसा किसी अन्य कवि का नहीं। भाषा इनके हृदय से जुड़कर इनकी अनुगामिनी हो गई थी। वे भाषा को जिस भाव—भंगिमा में

अभिव्यक्ति देना चाहते थे, उसी रूप में प्रस्तुत कर देते थे। भाषा को बंधी बंधाई प्रणाली से हटाकर नई प्रणाली पर ले जाने का कार्य घनानंद ने ही किया था क्योंकि स्वच्छन्द कवि होने के नाते ये रीति की लीक पर चलने के पक्षपाती न थे। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत है—“घनानंद ने तो ऐसे-ऐसे पथों से भावना को ले जाने का प्रयास किया है, जिन पर पुराने कवि तो गये ही नहीं, नये कवि भी जाने का प्रयास कम करते हैं।”<sup>19</sup> अतः घनानंद की भाषा जिन नये-नये पंथों पर ले जायी गयी है, वे भाषा के वे पंथ हैं, जिनसे सबका परिचय नहीं होता है। इसलिए उनकी काव्य-भाषा को नितान्त निजी भाषा कहा गया है।

घनानंद की अनुभूति जितनी घनी है, अभिव्यंजना उतनी ही गम्भीर है। सूक्ष्म से सूक्ष्म व अमूर्त भावों की अभिव्यक्ति करना इनकी भाषा की पहचान रही है। अनुभूति भाषा को जीवंत रूप प्रदान करती है। इसीलिए अनुभूति प्रधान भाषा श्रेष्ठ होती है। घनानंद की भाषा में अनुभूति की ही प्रधानता है। डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने कहा है—“भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसका उत्थान अनुभूति के कारण हुआ हो।”<sup>20</sup> चूंकि घनानंद का काव्य अनुभूति प्रधान है, उनके काव्य में प्रयुक्त शब्द वक्ता के श्वास के धागों से बुने हुए वस्त्र हैं, जिस पर उसी के अनुराग का रंग चढ़ा रहता है—

“सूक्ष्म उसास गुन बुन्यौ ताहि लखै कौन,

पौन पट रँग्यौ पेखियत रंग—राग मैं ।।”<sup>21</sup>

अनुभूति के साथ भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। घनानंद ने भी अनुभूति के साथ भाषा का सम्बन्ध स्थापित किया है। उनका मानना था कि भाषा में गुणों का समावेश अपनी अनुभूति के द्वारा सम्भव है। घनानंद भाषा के प्रयोग में असाधारण थे। शब्दों में नई-नई व्यंजनायें भरना, सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहरे से गहरे भावों को शब्दों में मूर्त करना वे भली-भाँति जानते थे। आवश्यकतानुसार वे शब्दों में लोच, संकोच, विस्तार-वक्रता आदि भी पैदा कर देते थे। विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करना, उनकी भाषा प्रवीणता की ओर संकेत करता है। उनके काव्य में ब्रजभाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं जैसे—पंजाबी, अरबी, संस्कृत आदि का प्रयोग भी देखने को मिलता है, इसका कारण उनका भाषा प्रवीण होना ही है। विभिन्न

भाषाओं के शब्द समूह आ जाने से उनकी भाषा और भी अधिक समृद्ध हो गई है। “घनानंद की भाषा साहित्यिक होते हुए भी उसमें ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों में ओटपाय (उपद्रव), आवस (भाप), औंड (गहरी), सहारि (सहारे से), दुहेली (दुखपूर्णा), आवरो (व्याकुल), हेली (खेल करने वाले), औपचार्यौ (मनमानी), न्यार (चारा) सौंज (सामग्री) डेल (ढेला), सरयौ (चुक गया) भोयौ (भीगा हुआ), गुरिझन (गांठ), अगिलाई (अग्निदाह), तेह (क्रोध), भभक (ज्वाला) आदि का प्रयोग हुआ है।”<sup>22</sup> घनानंद की काव्य भाषा का लालित्य अद्वितीय है—

“अति सूधो सनेह को भारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।  
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ, झझकै कपटी से निसाँक नहीं।  
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, इत एक तँ दूसरो आँक नहीं।  
तुम कौन धौँ पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।”<sup>23</sup>

ठेठ ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग घनानंद ने अपने काव्य में किया है— सूधो—सीधा, सयानप—चतुराई, साँचे—सच्चे, झझकै—हिचकना, आँक—चिह्न, धौँ—सी, लेहु—लेना, देहु—देना आदि ऐसे ठेठ ब्रजभाषा के शब्द हैं, जिनका प्रयोग घनानंद ने बड़ी सहजता के साथ किया गया है और जिससे छन्द में कहीं भी दुरुहता नहीं आने पायी है। उनके काव्य में प्रयुक्त तत्सम व तद्भव शब्द ब्रजभाषा काव्य की प्रवृत्ति के अनुसार ही ढले हुए हैं। उनमें व्यर्थ की बनावट या तोड़ मरोड़ की करामात नहीं है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली एवं अरबी—फारसी शब्दावली का लोक प्रचलित रूप प्रयुक्त हुआ है। ब्रजभाषा में तालव्य ‘श’ को दन्त्य ‘स’ बोलने लिखने की प्रवृत्ति रही है, जो अरबी फारसी के उच्चारण में भी पाई जाती है। संस्कृत के तत्सम शब्दों में मीन, हृदय, खंजन, कंजनि, लाज, रंजन, मृग, प्राण, नेह आदि ऐसे प्रयोग हैं, जो भाषा को अलंकृत तो करते ही हैं, चमत्कारिता का भाव भी पैदा करते हैं—

“खंजन ऐसे कहा मनरंजन, भीननि लेखौ कहा रस—ढार सो।

कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रुखे, सने ये सनेह के सार सो।”<sup>24</sup>

खंजन—नेत्र, लाज—शर्म, मनरंजन—मन को अच्छा लगने वाला, मृग—हिरन आदि शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा में लालित्य पैदा होता है।



तद्भव शब्दों का प्रयोग घनानंद ने प्रचुरता से किया है। उसास, जतन, अमावस, उमस, बिसासी, निरदर्ई, विरह आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग देखा गया है—

“अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस।

ज्यौ कहलाय मसोसनि उमस, क्यों हूँ कहूँ सु धरै नहिँ थ्यावस

जीवनि मूरति जान को आनन है बिन हेरै सदाई अमावस।।”<sup>25</sup>

अन्तर-हृदय के भीतर, उसास-ठण्डी सांसें, आवस-भाप, थ्यावस-स्थिरता, अमावस-घोर अंधकार, मूरति-मूर्ति, आँच-अग्नि आदि ऐसे तद्भव शब्द हैं, जिनके प्रयोग से उनकी भाषा में लाक्षणिकता के साथ अर्थव्यंजना हुई है।

घनानंद मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में मीर मुंशी थे। मीर-मुंशी होने के नाते उन्हें अरबी-फारसी का अच्छा ज्ञान था। अरबी-फारसी के शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा में कोमलता व सरलता का समावेश हो गया है। यार, हुस्न, दिलदार, हुकम, आशिक, इश्क तथा इस्क, खुशी, तलब, कहर इश्कमजाजी, हक्क, चश्म, दिल दर्द, चमन, तकदीर आदि ऐसे शब्द हैं, जो भाषा में माधुर्य पैदा कर देते हैं—

“यारों गोकुलचंद सलोने दिया चस्म दा धक्का है।

ढोरि दिया घनआनंद जानी हुसन सराबी पक्का है।

सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारों झुक-झारी है।।”<sup>26</sup>

यारों-दोस्त, चस्म-आँख की चोट, आसिक-आशिक, जानी-प्यारा, हुसन-खूबसूरती, पक्का-पूरी तरह से, धक्का-तकलीफ आदि ऐसे ही अरबी-फारसी के शब्द हैं, जो उनकी भाषा को मधुर व मर्मस्पर्शी बनाते हैं।

पंजाबी भाषा के शब्द भी घनानंद के काव्य में दिखलाई देते हैं—

रत्त-दिहाड़े किथौई न लगदा की जानौँ क्या कीता नी।।”<sup>27</sup>

घनानंद ने यत्र-तत्र पंजाबी शब्दों का भी प्रयोग किया है, रत्त-रात, दिहाड़े-दिन, लगदा-लगना, जानौँ-जानना आदि पंजाबी शब्दों का प्रयोग उनके काव्य में दिखाई देता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का घनानंद की भाषा के विषय में कथन है “घनानंद जी उन विरले कवियों में से हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं

के अनूठे रूप रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।<sup>28</sup>

प्रायः श्रेष्ठ कवियों की भाषा में ऐसे शब्द अथवा शब्द समूह प्रयुक्त होते हैं, जो ध्वनिमात्र से ही अपना अर्थ व्यक्त कर देते हैं। भाषा में ध्वन्यात्मकता का विशेष स्थान है। जब भाषा में शब्द बोलते हुए प्रतीत हों और शब्दों में कथ्य के अनुरूप ध्वनि निष्पन्न होने लगे, तब इसे ध्वन्यात्मकता कहा जाता है। ध्वन्यात्मकता का यह स्वरूप और गुण घनानन्द के काव्य में देखा जाता है। इसीलिए ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग उनकी अभिव्यक्ति को और अधिक सुन्दर बना देता है। बादलों में आकाश के घिर आने का तथा वायु के सरसराते हुए स्वरूप का उसी के समान ध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग कर उनकी भाषा में लालित्य पैदा हो गया है—

“घूँटै घटा चहुँधा धिरि ज्यौ गहि काढ़ै करे जो कलापिन कूकै।

सीरी समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकै।”<sup>29</sup>

ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा ध्वनि के आधार पर ही उनके अर्थ की प्रतीति होने लगती है। पवन का वेग, अग्नि का तेज, घन (बादल) की उड़ान, मेघों का घनीभूत होना, चपला (बिजली) की चंचलता, कुसुमों (पुष्प) की महक आदि ऐसे ही ध्वन्यात्मक शब्द हैं, जिनके प्रयोग से उनकी भाषा में जीवन्तता का समावेश हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो चित्र आँखों के समक्ष उपस्थित हो गया हो—

“लहकि लहकि आवै ज्यौँ ज्यौँ पुरवाई पौन,

दहकि दहकि त्यों त्यों तन ताँवरे तचै।

बहकि बहकि जात बदरा बिलोकै हियौ,

गहकि गहकि गहबरनि गरै मचै।

चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहै,

कैसेँ घनआनँद सुजान बिन ज्यौ बचै।

महकि महकि मारै पावस—प्रसून बास,

त्रासनि उसास दैया कौ लौँ रहियै अचै।”<sup>30</sup>

लहकि लहकि, दहकि दहकि, गहकि गहकि, बहकि बहकि, महकि महकि आदि ध्वन्यात्मक शब्द हैं, जो भावानुकूल हैं। ध्वनि से ही शब्दों की विशेषतायें ज्ञात हो जाती हैं। भावानुकूल भाषा का प्रयोग काव्य का एक अनिवार्य गुण है। भाषा को सहज, स्वाभाविक और भावानुकूल बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि उसे क्लिष्टता से बचाया जाए। भावानुभूति की स्पष्टता और माधुर्य, भाषा को अपने अनुकूल बना लेती है। घनानंद की भाषा में भी भावानुभूति की स्पष्टता है। कहीं-कहीं उनकी भाषा में भाव के कुछ कण इतने कोमल हो गये हैं कि उनको साधारण तरीके से कहने पर ये ओस के कणों के समान बिखर जाते हैं। इसलिए इनकी अभिव्यक्ति अभिधा द्वारा न होकर व्यंजना द्वारा सम्भव होती है—

“अंतर उदेग—दाह, आँखिन प्रबाह—आँसू

देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।

सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू

खोय खोय आप ही मैं चेटक—लहनि है।

जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन,

बिरह—बिषम—दसा मूक लौँ कहनि है।

जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,

हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है।”<sup>31</sup>

हंसिबो, रोयबो, जीवन, मरन और रहनि जैसे शब्दों में अर्थ व्यंजना का परिचय मिलता है। शब्दों का भावानुकूल प्रयोग करने एवं ब्रजभाषा के शुद्ध, संयत, सरस व कोमल रूप प्रयोग करने के कारण ही इन्हें ब्रजभाषा प्रवीण कहा गया है। घनानंद की भाषा में लाक्षणिकता का समावेश, अभिधा और व्यंजना की अपेक्षा अधिक रहा है। उनकी भाषा लाक्षणिक है और लाक्षणिक होने से उनकी भाषा में चमत्कार पैदा हो गया है। लाक्षणिकता वहीं होती है, जहाँ मुख्य अर्थ के बाधित होने पर उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ का बोध होता है। लक्षणा से व्यक्त होने वाले अर्थ लक्ष्यार्थ और बोध कराने वाले शब्द को लाक्षणिक कहते हैं। इसमें तीन बातें अपेक्षित हैं—मुख्य अर्थ की प्रतीति में बाधा उपस्थित होना, मुख्य अर्थ से भिन्न और किसी अन्य अर्थ की प्रतीति होने पर भी वह अन्य अर्थ व मुख्य अर्थ से

सम्बन्धित हो। घनानंद लक्षणा के प्रयोग में बड़े कुशल हैं। उन्होंने जिस अनूठेपन से शब्दों का लाक्षणिक प्रयोग किया है, वह अद्वितीय है—

‘‘पहिलेँ घनआनंद सीँचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार—पगी।  
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास—दगानि दगी।  
अँखियाँ दुखयानि कुबानि परी न कहूँ लगैँ कौन घरी सु लगी।  
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास ठगी।।’’<sup>32</sup>

आनन्द के बादलों की वर्षा, वियोग की आग का जलना, छल एवं विश्वासघात द्वारा प्रदग्ध होना, गीत का दौड़कर भटकना तथा मोह की मिठास में ठगा जाना, ये सभी लाक्षणिक प्रयोग हैं, जो घनानंद को भाषा प्रवीण बनाते हैं। लक्षणा शब्द शक्ति के माध्यम से वे अपने हृदयगत प्रेम को प्रकट करते हुए कहते हैं—

‘‘तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे।  
हिय—पोष के तोष जु प्रान पले, बिललात सु योँ दुख—दोष—भरे।  
घनआनंद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख—साज—समाज टरे।  
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे।।’’<sup>33</sup>

यहाँ नेत्रों का जलना, प्राणों का पलना, सुख समाज का टलना आदि लाक्षणिक प्रयोग हैं जो घनानंद के विरह को और अधिक उद्दीप्त कर देते हैं। विरह में जो दूरी है, उसे लक्षणा से व्यक्त करने के लिए प्रियतम को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। संयोग में, आलिंगन में, हार बाधक बन प्रहार सा प्रतीत होता था, परन्तु प्रिय के जाने पर (वियोग) दो प्रेमियों के मध्य पहाड़ सा प्रतीत हो रहा है।

व्यंजना में कवि अपने विचारों व अनुभूतियों को व्यंग्यार्थ के माध्यम से व्यक्त करता है। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न जहाँ किसी अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, वहाँ व्यंजना शब्दशक्ति होती है। अर्थ को व्यंग्यार्थ और शब्दों को व्यंजक कहते हैं। घनानंद ने व्यंजना शब्दशक्ति का प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं अपितु अपनी भाषा को सशक्त और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए स्वाभाविक रूप से किया है—

“परकाजहि देह कोँ धारि फिरौ परजन्य जधारथ ह्वै दरसौ ।

निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ।

घनआनंद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियेँ परसौ ।

कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ ।।”<sup>34</sup>

बादल का कार्य समुद्र के खारे जल को वाष्प बनाकर उड़ाना और अन्यत्र जाकर वर्षा करना है। विरही घनानंद बादलों को दूत बनाकर अपनी आँखों के खारे जल को सुजान के आँगन में ले जाकर बरसाने का निवेदन करते हैं। ‘मों अंसुवन को लै बरसौ’ में व्यंजना है, बादलों से प्रिय के हृदय को उर्वर बना देने का निवेदन, जिससे निर्मोही सुजान के हृदय में घनानंद के प्रति प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो जाये, भाव दिखाई देता है। यद्यपि घनानंद ने लक्षणा और व्यंजना दोनों को ही अपने काव्य में अपनाया है तथापि व्यंजना की अपेक्षा लक्षणा का प्रयोग उनके काव्य में अधिक हुआ है और उसमें उच्चकोटि की सफलता भी प्राप्त की है।

घनानंद की भाषा की एक मुख्य विशेषता प्रतीकात्मकता है। प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने अपने भावों और अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है भले ही उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक परम्परागत क्यों न हों, परन्तु वे कहीं भी दुरुहता या असंगति पैदा नहीं करते हैं। उनकी प्रतीक योजना उनके भावों को जाग्रत करने में सहयोग देती है। प्रतीकों के माध्यम से कवि ने प्रेमिका के प्रति अपनी निष्ठा, लगाव, रुझान, रीझ, बेवसी और बेचैनी आदि प्रेम की विविध दशाओं को दर्शाया है। प्रतीकों का प्रयोग कवि की स्वानुभूति को अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

कवि घनानंद ने चातक, चकोर, मीन, भ्रमर, पतंग, ब्रज और वृंदावन आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है। ये प्रतीक घनानंद को अत्यन्त प्रिय रहे हैं। प्रिय के लिए मर मिटना इनके लिए जितना आसान है, उतना उसके विरह में जीवित रहना नहीं। इस दृष्टि से घनानंद के प्रतीक अधिक सशक्त हैं। प्रणयसाधना का जैसा रूप घनानंद में मिलता है, वैसा अन्य कवियों में नहीं मिलता। चातक पक्षी बादल के प्रति अनन्य प्रेम रखता है। इसे स्वांति नक्षत्र के जल का पान करना ही अभीष्ट होता है, अन्यथा मरण को ही श्रेष्ठ मानता है। काव्य में चातक पक्षी प्रेम की एकनिष्ठता, अनन्यता एवं एकाग्रता का प्रतीक रहा है। घनानंद की प्रेम व्यंजना भी चातक पक्षी

के समान है। प्रेम की यही विशेषताएँ घनानंद में अपनी प्रेयसी के प्रति दिखाई देती हैं—

“चातिक लौँ चाहै घनआनंद तिहारी ओर,  
आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है।”<sup>35</sup>

× × ×

जीवनअधार घनआनंद उदार महा,  
कैसेँ अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं।”<sup>36</sup>

× × ×

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कोँ,  
सूरे पन-पूरे जिन्हैं विष सम अमी है।”<sup>37</sup>

घनानंद ने प्रतीकों के माध्यम से क्रमशः प्रेमी की अनन्यता, प्रिय की उपेक्षा और प्रेमी की कठोर साधना को अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। चातिक द्वारा प्रेमी की दृढ़ता को घनानंद ने और भी अधिक सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया है। चकोर पक्षी विषम प्रेम की पीड़ा का व्यंजक प्रतीक रहा है। चूंकि घनानंद का प्रेम विषम था, अतः ‘चकोर’ कवि के प्रेम का सशक्त प्रतीक है। चकोर पक्षी अपने प्रिय चन्द्रमा की प्रतीक्षा ही करता रहता है, परन्तु उसका मिलन नहीं हो पाता। प्रेम की यही दशा घनानंद के काव्य में दृष्टव्य है। घनानंद और सुजान का प्रेम विषम था, जिसको कवि ने प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है—

“चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,  
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है।

मोहिँ तुम एक, तुम्हें मो सम अनेक आहिँ।

कहा कहूँ चंदहिँ चकोरन की कमी है।।”<sup>38</sup>

घनानंद ने चकोर पक्षी को प्रतीकात्मक रूप में अपनाया है और उसके द्वारा प्रेम की तीव्रता, अनन्यता, विषमता आदि अनेक दशाओं को काव्य में अभिव्यक्त किया है। मीन (मछली) प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता और आसक्ति का प्रतीक है। जल के साथ इसका प्रणय काव्य में परम्परा से प्रसिद्ध है। वियोग का अनुभव वही कर सकता है, जिसने विछोह को सहा हो। मछली जल के विरह में प्राण त्याग

देती है। हालांकि घनानंद और सुजान का प्रेम मछली और जल के समान ही है, किन्तु अन्तर इतना ही है कि जहाँ मीन प्रेमवश अपना प्राण त्याग देती है, वहीं घनानंद प्रेम में प्राण त्याग कर प्रेमी को कलंक नहीं लगाना चाहते, अतः वे कहते हैं—

“हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै ।  
नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै ।  
प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़, मीत के पानि परे कोँ प्रमानै ।  
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥”<sup>39</sup>

कवि का विरह ‘मीन’ की भांति क्षणिक नहीं है। यहाँ कवि ने ‘मीन’ की प्रतीकात्मक व्यंजना द्वारा अपने प्रेम की अधिकता और विरह जन्य पीड़ा की अतिशयता को दिखाया है। पतंग पक्षी प्रिय के प्रति प्रेमी के आत्मोत्सर्ग का प्रतीक रहा है। दीपक की लौ के प्रति आकर्षित होकर, पतंग से जलकर मरने की प्रसिद्धि परम्परागत है जिसका एक उदाहरण दृष्टव्य है—

“मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीच तज्यौ तरसै ।  
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै ।  
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै ।  
बिछुरेँ मिलेँ मीन-पतंग-दसा कहा मो-जिय की गति कोँ परसै ॥”<sup>40</sup>

इसमें घनानंद की प्रणय जन्य निराशा की सांकेतिक व्यंजना हुई है। सूर्य की रश्मि जब कमल के पुष्प पर पड़ती है, तो वह प्रफुल्लित हो खिल उठता है, उसी प्रकार घनानंद का चित्त सुजान मुख को देखकर प्रसन्न हो उठता है। घनानंद ने प्रेम की इस एकनिष्ठता को अपने काव्य में कमल के प्रतीक द्वारा व्यक्त किया है—

“प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,  
ता बिन बिचारनि ही जोति-जाल तमी है ॥”<sup>41</sup>

राधा व कृष्ण भक्तिकाल में देवी और देवता के प्रतीक रहे हैं, परन्तु रीतिकालीन कवियों ने सुमिरन के बहाने से राधा को सामान्य नायिका तथा कृष्ण को सामान्य नायक के प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया। रीतिमुक्त कवि घनानंद ने राधा शब्द का प्रयोग अपनी प्रेमिका सुजान के प्रतीकात्मक रूप में किया है—

राधे सुजान इतै चित दै, हित में कित कीजति मान-मरोर है<sup>42</sup>

सुजान के प्रति घनानंद में अतिशय निष्ठा विद्यमान थी। उनकी प्रतीकात्मक व्यंजना में स्वानुभूति का स्पर्श है। घनानंद के काव्य में नंदगांव, ब्रजभूमि और वृंदावन आदि स्थानों का प्रतीक रूप में प्रयोग मिलता है। ये स्थल राधा और कृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण घनानंद को प्रिय रहे हैं—

“बृंदावन बृंदावन रटौँ। रसना हित-चिंतामनि जटौँ।”<sup>43</sup>

×

×

×

नंदगाँव बरसानैं बसौँ। सोभा निरखौँ हरषौँ लसौँ।”<sup>44</sup>

×

×

×

आँखिन को सुख ब्रज-दरसन है। आनंदघन बरसन सरसन है।”<sup>45</sup>

इष्ट के प्रति अपनी प्रेम एवं भक्ति-भावना को प्रदर्शित करना कवि का मूल ध्येय है। इस प्रकार घनानंद के प्रतीक उनके व्यक्तित्व को उभारने में सफल हुए हैं। उनके अधिकांश प्रतीक परम्परागत हैं, तथापि उनके प्रयोग में नवीनता देखी गई है। कवि अपनी पीड़ा से इतना अधिक व्यथित है कि उसे युग के आँसू और हँसी देखने का अवकाश ही नहीं मिलता। उनकी इसी निजी अनुभूति में इतनी गहराई है कि युग उसमें पूरी तरह डूब जाता है। उनका यही दृष्टिकोण प्रतीकों के माध्यम से उनके काव्य में उभर आया है।

घनानंद की भाषा में माधुर्यता का समावेश है। इसी कारण उनकी कविता सुन्दर, सरल व रसमय हो गयी है। घनानंद का सम्पूर्ण काव्य शृंगारिक है, इसलिए उनके काव्य में प्रसाद और माधुर्य गुणों के आधार पर कोमल व मधुर शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिससे उनकी वाणी मधुर हो गयी है। घनानंद के कवित्त और सवैये दोनों में ही प्रसाद गुण पाया गया है। प्रसाद गुण की यह विशेषता है कि उससे चित्त प्रसन्न हो उठता है। यह गुण सभी रसों में समान रूप से पाया जाता है। जिस प्रकार स्वच्छ बर्तन साफ और पवित्र प्रतीत होता है, उसी प्रकार घनानंद की कविता भी साफ, सरल और स्वच्छ प्रतीत होती है। उनकी कविता को पढ़कर उनके भावों को सरलता से पहचाना जा सकता है—



“इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसेँ उराहनो दीजियै जू।  
अब तौ सब सीस चढाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।  
घनआनँद जीवन-प्राण सुजान! तिहारियै बातनि जीजियै जू।  
नित नीके रहौ तुम्हैँ चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू।।”<sup>46</sup>

इस सवैये में घनानंद के प्रेम की अत्यन्त कोमल अनुभूति हुई है। सरल और स्वाभाविक शब्दों में प्रेम की मार्मिकता परिलक्षित हुई है। प्रसाद गुण इनके भावों की सरल अभिव्यक्ति में सहायक रहा है। घनानंद का वियोग शृंगार, माधुर्य गुण से ओत-प्रोत है। माधुर्य शब्द का अर्थ ही है—मधुर होना, कोई भी कविता अथवा चित्र, जिसको पढ़कर या देखकर पाठक या श्रोता का अन्तःकरण द्रवीभूत हो जाये, ऐसा विशेष आनन्द माधुर्य गुण कहलाता है। घनानंद के वियोग शृंगार में माधुर्य गुण ही है, इसके अतिरिक्त संभोग शृंगार, करुण रस, व शान्त रसों में तो माधुर्य गुण की स्थिति और बढ़कर ही दिखाई देती है। घनानंद की काव्य भाषा का माधुर्य पढ़कर, देखकर व सुनकर चित्त द्रवीभूत हो जाता है—

“पहिलेँ घनआनँद सीँचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी।  
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास-दगानि दगी।  
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लगैँ कौन घरी सु लगी।  
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास उगी।।”<sup>47</sup>

×

×

×

तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे।  
हिय-पोष के तोष जु प्राण पले बिललात सु योँ दुख-दोष-भरे।  
घनआनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।  
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे।।”<sup>48</sup>

घनानंद का सुजान के प्रति प्रेम-माधुर्य इतना अधिक रहा है कि उनकी रुचि अन्यत्र सन्तोष नहीं पाती है। नवीन व लाक्षणिक प्रयोगों के कारण घनानंद के काव्य की मधुरता अत्यन्त हृदय स्पर्शी है। माधुर्य गुण के कारण घनानंद के काव्य में भावों की संवेदनशीलता दिखलाई देती है।

भाषा को सार्थक, व्यंजक और आकर्षक बनाने में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का अत्यधिक महत्त्व है। इनके प्रयोग से जहाँ भावों में तीव्रता आती है, वहाँ भाषा को प्रौढ़ता भी प्राप्त होती है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ प्रौढ़ भाषा के सहज गुण हैं।

मुहावरे वाक्यांश होते हैं, जबकि लोकोक्ति या कहावत अपने आप में पूर्ण होते हैं। मुहावरे का अर्थ शब्द से सीधा नहीं लिया जाता है क्योंकि मुहावरे लाक्षणिक होते हैं। इसी कारण मुहावरे भाषा को सजीवता प्रदान करने में सहायक हैं जैसे — ‘उलटी गंगा बहाना’ उलटा काम करना हो जाता है, ‘ईद का चाँद होना’ बहुत दिनों बाद नज़र आना कहलाता है, आदि।

प्रायः लोग मुहावरे और लोकोक्तियों को एक जैसा समझते हैं, किन्तु इन दोनों में अन्तर है। मुहावरा वाक्य में बिलकुल मिल जाता है, किन्तु लोकोक्ति की सत्ता अलग रहती है। इसका कारण यह है कि अर्थ की दृष्टि से लोकोक्ति अपने आप में ही पूर्ण होती है, किन्तु मुहावरे में ऐसा नहीं होता, उसे अन्य शब्दों की भी आवश्यकता होती है। इस अन्तर के बावजूद ये एक दूसरे के पर्याप्त निकट होते हैं। जीवन के प्रायः हर पहलू पर मुहावरों और कहावतों का व्यवहार होता है। “वस्तुतः दोनों एक ही वर्ग अथवा अनुभव रूपी पिता की सन्तान हैं।”<sup>49</sup> लोकोक्ति जन प्रचलित उक्ति है और मुहावरा भाषा की लाक्षणिकता के सहारे कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कहने की चेष्टा रखता है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रसंगानुकूल प्रयोग भाषा को अस्वाभाविक और कृत्रिम होने से बचाता है।

रीतिमुक्त कवि घनानंद ने भी अपने काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। उनका काव्य तो जैसे मुहावरों का सागर बन गया है। जिस प्रकार सागर की कोई सीमा नहीं होती है, वह अथाह होता है, उसी प्रकार घनानंद के काव्य में प्रयुक्त मुहावरों की भी कोई सीमा नहीं है। मुहावरों के प्रयोग से घनानंद ने भाषा को अत्यन्त समृद्ध किया है। कवि घनानंद के काव्य में प्रयुक्त प्रत्येक मुहावरा प्रकरण से लगा हुआ, सीधी पहुँच रखने वाला है। उनके काव्य के मुहावरे उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ले जाने में सक्षम हैं। उनका यह क्षेत्र चाहें शुद्ध काव्य जगत हो अथवा व्यवहार जगत, भाषा को रूचिकर बनाने में इन्होंने मुहावरों और लोकोक्तियों का सम्यक् प्रयोग किया है—

पट्टी पढ़ना —

“तुम कौन धौँ पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।”<sup>50</sup>

रंग में भीगना—

“चाह के रंग में भीज्यौ हियो।”<sup>51</sup>

आँखों का तारा होना—

“लोचननि तारे द्वै सुझावौ सब सूझै नाहिँ ,  
बूझी न परति, ऐसैं सोचनि कहा दहौ।”<sup>52</sup>

पैरों में मेंहदी लगना—

मिहँदी लगि पायनि रंग लहै सुठि सौँधो सु अंगनि संग बसै।”<sup>53</sup>

विष घोलना —

“रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यौँ विष घोरियै जू।”<sup>54</sup>

घाव पर नमक छिड़कना, आनाकानी करना—

“अनाकानी दैबौ दैया घाय कैसो लोन है।”<sup>55</sup>

दाँतों तले अँगुली दबाना—

“दंत रहैं गहैं अँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।”<sup>56</sup>

दिनों का फेर होना—

“दिनन के फेरि मोहिँ, तुम मन फेरि डारयौ”<sup>57</sup>

आँखों में बसना—

“जब तैं सुजान प्रानप्यारे पुतरीनि तारे,  
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै।”<sup>58</sup>

बिक जाना—

“रीझि बिकाई निकार्ड पै रीझि”<sup>59</sup>

कान में रूई देना—

रूई दियै रहौगे कहाँ लौ बहरायबे की।”<sup>60</sup>

छाती पर चढ़े रहना—

पैनै नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,  
घाती बड़े काती लिए छाती पै रहैं चढ़े।”<sup>61</sup>

नाक चढ़ाना—

खरियै निडर ऊँची रहै रूप—जोर तैं।  
सहज बनी है घनआनंद नवेली नाक।”<sup>62</sup>

प्राण सूखना—

मेरे प्राण सोचत ही सूखत सदा रहै घन।<sup>63</sup>

छटाँक न देना—

मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।<sup>64</sup>

कान खोलना—

कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै।<sup>65</sup>

बाट जोहना—

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,  
थाके ये बिकल नैना नपि नपि रे।<sup>66</sup>

आँखों का तारा—

रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्राण वारे,  
आँखिन के तारे न्यारे कैसेँ धौँ करौँ उनै।<sup>67</sup>

अतः घनानंद ने जिन मुहावरों का प्रयोग अपनी भाषा में किया है, वह अत्यन्त रुढ़ हैं। मुहावरे अपनी लाक्षणिक शक्ति के द्वारा कहीं न कहीं रसिक व प्रेमियों पर अपना प्रभाव डालते हुए प्रतीत होते हैं। लोकोक्ति से आशय है—लोक में प्रचलित उक्ति। अतः लोकोक्ति कान से सुनी हुई दूसरों की उक्ति या अन्य की सुनी हुई बात होती है, न कि स्वयं गढ़ी हुई। लोकोक्ति कहावत का पर्याय है, जिसे रीतिमुक्त कवि ठाकुर ने स्वयं 'कहनावत' कहा है—

“साँची भई कहनावति वा कवि ठाकुर कान सुनी हती जोऊ।”<sup>68</sup>

जिस प्रकार मुहावरे सहसा याद आकर मुँह से निकल पड़ते हैं, उसी प्रकार लोक में प्रचलित उक्तियाँ भी उदाहरण देने के लिए अचानक जिह्वा पर आ जाती हैं। लोकोक्तियाँ पूर्वजों के अनुभवों पर आधारित लम्बे समय से चली आ रही हैं, इसलिए इनका प्रभाव हमारे ऊपर तीव्र पड़ता है। घनानंद अपनी स्वानुभूति को स्वच्छन्दता से सम्प्रेषित करते हैं। उन्हें जो कहना होता है, साफ-साफ कह जाते हैं, परदे में रहकर नहीं बोलते। वे लोक व्यवहार को भली-भाँति समझते हैं। ब्रजभाषा की शृंगारी कविताएँ प्रायः स्त्री पात्रों के मुख की वाणी होती हैं। अतः स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का जो मनोहर विधान कवि ने किया है, उनसे उनकी

उक्तियों में और भी स्वाभाविकता आ गई है। लोकोक्तियों का जैसा मधुर प्रयोग घनानंद ने किया है, वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं—

“आगेँ न बिचारयौ अब पाछेँ पछताएँ कहा”<sup>69</sup>

× × ×

“सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावति जू,  
काहू कलपायहै सु कैसेँ कल पायहै।”<sup>70</sup>

× × ×

“अब तौ सब सीस चढ़ाय लई  
जु कछू मन भाई सु कीजिये जू।”<sup>71</sup>

× × ×

“जो दुख देखति हौँ घनआनँद रैन—दिना बिन जान सुतंतर”<sup>72</sup>

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग उनकी भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि प्रदान करते हैं। उनके मुहावरों और लोकोक्तियों की यह विशेषता रही है कि ये कहीं भी ऊपर से थोपे हुए प्रतीत नहीं होते, बल्कि भाव के अनुकूल ही स्वतः व स्वाभाविक रूप में समाविष्ट हुए दिखाई देते हैं। अतः हिन्दी में मुहावरे व लोकोक्ति के सबसे धनी प्रयोक्ता घनानंद हैं। घनानंद की भाषा सरस, स्वाभाविक, सुव्यवस्थित एवं माधुर्यरस से ओत-प्रोत है। उनके काव्य में निजी भाषा का प्रयोग है, इसीलिए भावों की अभिव्यक्ति के लिए उसे सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया है। भाषा भावों को साथ लेकर चलती है, इसीलिए भाव ही भाषा को पूर्ण सामर्थ्य प्रदान करते हैं। नई-नई भाव-भंगिमाओं के द्वारा उन्होंने ब्रजभाषा का रूप सजाया है। उनकी भाषा का यह रूप बड़ा ही अद्वितीय जान पड़ा है।

घनानंद का भाषा पर पूर्ण अधिकार रहा। वे भाषा को भावों व अपनी मनः स्थिति के अनुकूल जैसे मोड़ना चाहते थे, मोड़ लेते थे। भाषा को विभिन्न पहलुओं पर मोड़ने की प्रवृत्ति एक कुशल ब्रजभाषी ही कर सकता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार—“यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर

ऐसी वशवर्तिनी हो गयी थी कि उसे अपनी अनूठी भावभंगिमा के साथ जिस रूप में चाहते थे, मोड़ सकते थे।<sup>73</sup> इसलिए उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने शब्दों को नया अर्थ दिया है। भावनाओं की निश्छल व यथार्थ अभिव्यक्ति में उनकी भाषा अद्वितीय है।

घनानंद का भाषा पर अपना अटूट अधिकार देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो घनानंद ब्रजभाषा की नाड़ी को पहचानते थे। इसलिए घनानंद ने ब्रजभाषा के एक-एक शब्द की स्थापना की है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिए गति प्रदान की है। ब्रजभाषा पर घनानंद का असाधारण अधिकार है, उनकी भाषा अत्यन्त साफ सुथरी और निखरी है, उसमें भावों के निरूपण की अनन्त शक्ति भरी हुई है। निःसन्देह लाक्षणिक भाषा और भाव के धनी, भावुक और कलाकार कवि घनानंद उन समस्त मध्ययुगीन कलाकारों के मध्य अत्यन्त ऊँचे स्थान के अधिकारी ठहरते हैं।

### 5.3 अलंकार योजना

सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मानव की एक सहज प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति ने मानव मन में सौन्दर्य के नए-नए उपादान एवं प्रतिमान खड़े किये हैं। अन्य प्राणियों को आकर्षित करने के लिए मनुष्य स्वयं को, अपने परिवेश को सजाता, संवारता और निखारता है क्योंकि सौन्दर्य मानव के मन में निहित है। अपने साथ-साथ वह दूसरों को और अपने वातावरण को भी सुन्दर व आकर्षक देखना पसन्द करता है आकर्षण से मानव मन को एक असीम आनन्द की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार वनिता अपने रूप, गुण विस्तार के लिए नाना प्रकार से शृंगार करती है, आभूषणों को धारण करती है और अपने सौन्दर्य में निखार लाती है, उसी प्रकार कवि या रचनाकार भी अपनी कृति में भव्यता और चारुता लाने के लिए अलंकारों का प्रयोग करता है। अलंकार काव्य के शोभाकारक धर्म होते हैं।

अलंकार शब्द 'अलम्' उपपद है, जो 'कृ' धातु से संज्ञा में अथवा 'करण' के अर्थ में 'धञ' प्रत्यय होकर बना है। अलंकर सौन्दर्य विधान है। अलंकार शब्द 'अलम् + कार' के योग से निर्मित है। 'अलम्' का तात्पर्य है—भूषण एवं 'कार' का अर्थ

है—करने वाला अर्थात् जो अलंकृत या भूषित करे, वह अलंकार है। “अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति है—‘अलंकरोतीति अलंकार’, जो किसी को अलंकृत करे, सुशोभित करे, वह पदार्थ जो किसी की शोभा बढ़ाये, अलंकार कहलाता है।”<sup>74</sup>

काव्य में अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य में कवि कल्पना की ऊँची उड़ान अलंकारों के माध्यम से ही स्फुरित होती है। अलंकार काव्य के सौन्दर्य विधायक तत्व हैं, जो अभिव्यक्ति को रोचकता एवं प्रेषणीयता प्रदान करते हैं। काव्य में भावों के प्रदर्शन के लिए कवि की कल्पना न जाने किस-किस स्थान से सादृश्य तथा समानता का आरोप कर अलंकारों का सृजन करती है। वस्तुतः अलंकार ही कविता कामिनी के तन की शोभा हैं। “संस्कृत साहित्य में अलंकारों की एक लम्बी परम्परा मिलती है।”<sup>75</sup> संस्कृत के कतिपय आचार्यों ने अलंकारों को इतना अधिक महत्व दिया कि अलंकार को ही काव्य की आत्मा मान लिया। अलंकार रहित काव्य को उन्होंने काव्य ही नहीं माना। “उन्होंने ‘काव्यं ग्राह्यं लंकारात्’ कहकर काव्य को अलंकार के आधार पर ग्रहण किया। अतः अलंकार को ही काव्य का सौन्दर्य कहा गया है।”<sup>76</sup>

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन के अनुसार—“सौन्दर्यमलंकारः। काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः। तदतिशय हे तवो अलंकाराः।”<sup>77</sup> सौन्दर्य ही अलंकार हैं और काव्य की शोभा उत्पन्न करने वाले धर्म गुण हैं। उस शोभा को बढ़ाने का हेतु अलंकार हैं। आचार्य दण्डी का मानना है—“काव्य शोभा करान् धर्मान् लंकारान् प्रचक्षते।”<sup>78</sup> काव्य की शोभा में वृद्धि करने वाले तथा काव्य को सौन्दर्य प्रदान करने वाले उपकरण ही अलंकार कहलाते हैं। रीतिकाल में भी अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता के साथ मिलता है, क्योंकि रीतिकाल को तो ‘अलंकृत काल’ भी कहा गया है। अतः अलंकृत करने की परिपाटी रीतिकाल में अधिक थी। हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन आचार्य केशवदास भी कविता के लिए अलंकारों को आवश्यक मानते हैं—

“जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।

भूषन बिनु न बिराजही, कविता वनिता मित्त।”<sup>79</sup>

अलंकार काव्य के आवश्यक अंग हैं, किन्तु यदि अलंकार भार बनकर कविता कामिनी के तन को आक्रान्त करने लगते हैं, तो वे ही अलंकार भूषण से दूषण हो जाते हैं। अलंकारों के सन्दर्भ में यह कहा गया है—“अलंकार केवल वाणी की

सजावट के लिए नहीं होते, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।<sup>80</sup> अलंकारों द्वारा भावों को अभिव्यक्त करने की पद्धति विशेष है। अलंकार अनुभूति की तीव्रता में सहायता करते हैं। “जब कवि किसी विषय को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अप्रस्तुतों का प्रयोग करता है, तब स्वाभाविक रूप से स्वतः ही काव्य में अलंकारों का समायोजन हो जाता है। इसलिए अलंकार जहाँ भावों के साथ स्वतः ही हृदय से प्रस्फुरित होते हैं, वहाँ वे काव्य के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं।”<sup>81</sup> अतः काव्य में अलंकारों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। लगभग सभी काव्य कर्त्ताओं ने किसी न किसी रूप में काव्य में अलंकारों का प्रयोग अवश्य किया है। इसलिए भारतीय आचार्य अलंकारों को काव्य के लिए उपादेय मानते हैं। कुछ आचार्य तो अलंकारों को काव्य का प्राण स्वीकार करते हैं, तो कुछ आभूषणों को अलंकारों के समान मानते हैं।

वस्तुतः शब्द और अर्थ को चमत्कृत करने के कारण आचार्यों ने अलंकारों के मुख्य रूप से दो भेद किये हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। जब काव्य में शब्दों के कारण चमत्कार की सृष्टि होती है, तो उसे शब्दालंकार कहा जाता है। शब्दालंकारों में कुछ विशेष शब्दों के कारण काव्य में सुन्दरता आती है। यदि उनके स्थान पर उनके ही समान वाले शब्द (पर्यायवाची) रख दिये जायें तो, उनका सौन्दर्य जाता रहता है। प्रमुख शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष और वक्रोक्ति आदि का नाम विशेष है। जब चमत्कार कुछ विशेष शब्दों पर ही न रहकर उनके अर्थ में निहित हो जाता है, तब अर्थालंकार माना जाता है। अर्थालंकारों की व्युत्पत्ति मानसिक संसर्गों के कारण होती है। अतएव मानसिक एवं बौद्धिक संयोग के आधार पर प्रमुख अर्थालंकारों में, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुत आदि अलंकारों का नाम विशेष है।

इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी कवियों ने अपने युग की प्रवृत्ति के अनुसार अलंकारों को कभी सहज, कभी स्वाभाविक रूप से और कभी कविता कामिनी की शोभा बढ़ाने के रूप में ग्रहण किया है। हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन काव्य में प्रायः अलंकारों का प्रयोग बहुलता के साथ हुआ है। रीतिकालीन कवियों की अलंकार प्रियता स्वाभाविक थी, क्योंकि अधिकांश रीतिकालीन कवि राज्याश्रित



थे, जिससे एक ओर तो उनकी कवि प्रतिभा में निखार आया और दूसरी ओर वे झूठे प्रशंसक, शृंगारी और विलासी बन गये। अलंकार प्रियता उनके वातावरण का परिणाम थी। आश्रयदाताओं का प्रसन्न करने के लिए जहाँ वे झूठी चाटुकारिता करते थे, वहीं वे शब्दों व उक्ति के चमत्कार का भी खुलकर प्रदर्शन करते थे। यही कारण है कि रीतिकालीन कविता में भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष का प्राधान्य दिखाई देता है।

रीतिकालीन कवियों की कविता एक सुन्दरी के समान अत्यन्त लावण्यमयी और विविध आभूषणों से अलंकृत थी, जिसकी रमणीयता एवं कमनीयता रसिकों के हृदय को विद्ध कर देती थी। रीतिमुक्त कवियों की कविता में अलंकारों का प्रयोग साध्य रूप में नहीं, अपितु साधन रूप में हुआ है। उनके काव्य में अलंकार, भावाभिव्यक्ति को स्पष्ट, कलात्मक एवं संप्रेष्य बनाने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। अनुभूति प्रेरित होने के कारण अलंकारों में भावानुरूपता, आन्तरिकता, स्पष्टता आदि गुणों का सहज ही समावेश हो गया है।

घनानंद जैसे रीतिमुक्त कवि ने अलंकारों के लिए काव्य का सृजन नहीं किया, अपितु काव्य के लिए अलंकारों का प्रयोग किया। घनानंद का अधिकांश काव्य सरल और भावावेशपूर्ण शैली में लिखा गया है। उनकी लगभग सभी कृतियों में अलंकारों का प्रयोग मिलता है। उनके काव्य में अलंकार सहज व स्वाभाविक रूप से अनायास ही प्रयुक्त हुए हैं। अभिव्यक्ति और भाव की भंगिमा उन्हें अपने साथ लेती चली आयी है। घनानंद ने आवश्यकतानुसार नाना प्रकार के अलंकारों का प्रयोग कर काव्य में भावों को तीव्रता प्रदान की है। उन्होंने कहीं पर भी अलंकारों का प्रयोग प्रदर्शन के लिए नहीं किया और न ही कविता कामिनी को सजाने संवारने के लिए किया है, अपितु उनके काव्य में अलंकार उनकी कलात्मक दिव्यता व प्रतिभा के परिचायक बन कर आये हैं—

“तीक्ष्ण ईछन बान बखान सो, पैनी दसान लै सान चढ़ावत।

प्राणनि प्यासे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप बढ़ावत।

यौं घनआनंद छाबत भावत, जान-सजीवन-ओर तैं आवत।

लोग हैं लागि कबित्त बनावत, मोहिँ तौ मेरे कबित्त बनावत।”<sup>82</sup>

घनानंद की रचनाओं से उनकी काव्य दृष्टि पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने जहाँ भी जो कुछ भी कहना चाहा वह सायास नहीं कहा, अपितु उनके हृदय की भावाभिव्यक्ति सहज और सरल रूप में प्रकट हुई है। एक ओर अलंकार काव्य में भावों का उत्कर्ष दिखाते हैं, तो दूसरी ओर वस्तुओं के रूपानुभव, क्रियानुभव तथा गुणानुभव को तीव्रता प्रदान करते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि “अलंकार रस और भाव के अनुकूल हों, तभी उनसे काव्य में सरसता का प्रादुर्भाव होता है। यही सरसता हमें घनानंद के काव्य में चरम उत्कर्ष पर पहुँची दिखाई पड़ती है।”<sup>83</sup>

घनानंद के अलंकारों में नवीनता है, इसी से उनके काव्य में एक नवीन आकर्षण पैदा हो गया है। घनानंद किसी भी बात को सीधे-सादे ढंग से कहने के पक्ष में नहीं होते, उनका प्रत्येक छन्द किसी न किसी प्रकार का बांकपन लिए हुए अवश्य मिलता है। यह स्वाभाविक है कि अनुभूति जब गहरी होती है तो कवि भावुक भी अधिक होता है। उस समय अभिव्यक्ति भी सरल न होकर वक्र हो जाती है। यही वक्रता काव्य की शोभा बन जाती है। अतः घनानंद ने उन्हीं अलंकारों को श्रेष्ठ माना है, जो अनुभूति और भावों के साथ हृदय से उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः कवि ने भावों की अभिव्यक्ति में जिस नवीनता का परिचय दिया है, वह साधारणतः सुलभ नहीं है। यही नवीनता, कल्पना और कला का उत्कर्ष कवि की प्रतिभा का सापेक्ष बन जाती है। अतः कल्पना और आलंकारिता के क्षेत्र में उनकी सी सूझबूझ करने वाला कोई अन्य कवि नहीं हुआ। अलंकारों के माध्यम से काव्यात्मक सरसता घनानंद के काव्य में चरमसीमा पर देखी गई है—

“हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।

नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।

प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़, मीत के पानि परे कोँ प्रमानै।

या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।।”<sup>84</sup>

घनानंद ने अपने काव्य में जिन अलंकारों का प्रयोग किया है उनका संक्षिप्त रूप इस प्रकार दृष्टव्य है—रीतिकाल में अनुप्रास अलंकार का बाहुल्य है। कविता में रसानुरूपता, भावात्मकता, ध्वनि एवं संगीत की सृष्टि के लिए अनुप्रास अलंकार का विशेष महत्व है। समान वर्णों की आवृत्ति से भाषा में जब लालित्य और

संगीतात्मकता उत्पन्न हो जाती है, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। इस दृष्टि से घनानंद ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर अनुप्रास अलंकार की छटा बिखेरी है—

“लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।  
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।।”<sup>85</sup>

× × ×

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,  
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को।”<sup>86</sup>

× × ×

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही को,  
सूरे पन-पूरे जिन्है विष सम अमी है।”<sup>87</sup>

घनानंद के इन छन्दों में ‘ल’ ‘क’ और ‘च’ वर्ण की आवृत्ति है, जिनका बार-बार आना ही अनुप्रास अलंकार की शोभा बनता है। इस अलंकार के प्रयोग से उनकी भाषा में तीव्रगति और संगीतिक प्रवाह का सृजन हुआ है। एक ही वर्ण की आवृत्ति होने पर संगीतात्मकता उत्पन्न हुई है, जिससे छन्द में सरलता व सहजता और भावों का समावेश हो गया है। इसीलिए इस अलंकार का यह प्रवाह भावों के अनुरूप भी है।

घनानंद के काव्य में यमक लंकार का प्रयोग भी दर्शनीय है। वस्तुतः घनानंद ने एक ही शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर किया है, परन्तु उसके अर्थ भिन्न रहे हैं—

“एक अचंभौ भयौ घनआनंद हैं नित ही पल-पाट उधारे।  
टारें टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे।”<sup>88</sup>

× × ×

अंतर मैं वासी पै प्रबासी को सो अंतर है।”<sup>89</sup>

× × ×

काहू कलपायहै सु कैसैं कल पायहै।”<sup>90</sup>

यहाँ घनानंद ने तारे, कलपाय व अन्तर शब्द में यमक अलंकार की छटा बिखेरी है। यहाँ तारे शब्द के दो अर्थ आँखों की पुतली व ताला हैं। जहाँ एक ओर घनानंद की दृष्टि सुजान के प्रति टकटकी लगाये देखती रहती है हटती नहीं है वहीं दूसरी ओर वे सुजान के मोह पाश में बंधे हुए दिखाई देते हैं। अन्तर शब्द भी

दो अर्थ दिखलाता है—हृदय तथा दूरी। हृदय में सुजान बसी हुई है, फिर भी प्रवासी की सी दूरी बनी है। कलपाय शब्द से भी तात्पर्य है कल (अगला दिन) पाना और दूसरा दुख देना। घनानंद सुजान को प्राप्त न कर पाने के कारण व्यथित होते हैं। वे नित्य सुजान को देखते हैं। सुजान उनके हृदय में बस गयी है, राज्य छोड़ते समय उसका उत्तर उचित न पाकर उन्हें सघन पीड़ा का अनुभव हुआ है।

घनानंद के काव्य में श्लेष अलंकार के भी दर्शन होते हैं। जहाँ अनेक अर्थों से सम्बद्ध शब्दों का प्रयोग हो, वहाँ श्लेष अलंकार होता है। रीतिमुक्त कविता चूंकि भावप्रवण रही है, अतः श्लेष अलंकार का प्रयोग कम ही स्थलों पर मिलता है, किन्तु जहाँ भी प्रयुक्त हुआ है, वहाँ अभिव्यक्ति में कलात्मकता के रूप में सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। घनानंद ने “श्लेष का प्रयोग तो अधिकतर घनआनंद, घनश्याम और सुजान आदि शब्दों को लेकर किया है।”<sup>91</sup>

“तुम कौन धौँ पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।”<sup>92</sup>

इनमें मन और छटाँक शब्द में श्लेष का माधुर्य है। मन का अर्थ एक मन (चालीस सेर) तथा दूसरा प्रेमी का चित्त है। इसी प्रकार छटाँक का एक अर्थ तोल तथा दूसरा प्रिय की शोभा का छटा अंक अर्थात् झलक। कवि ने मन और छटाँक के माध्यम से प्रेमी का मन चुरा लेने और प्रिय के द्वारा अपनी शोभा की एक झलक भी न दे पाने पर अपने हृदय की आकुलता, पीड़ा और विवशता की अभिव्यंजना की है।

पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार भावों को संवेदनशील बनाता है, उसको प्रभावपूर्ण बनाता है। संवेदनशील और प्रभावपूर्ण बनाने में जब किसी शब्द की अनेक बार आवृत्ति हो, तब पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार की छटा उत्पन्न होती है। भाषा में मात्र चमत्कार की सृष्टि करना ही कवि का ध्येय नहीं होता है, अपितु शब्दों की आवृत्ति के प्रयोग से भाव-सौन्दर्य में अभिवृद्धि करना भी उसका उद्देश्य होता है। घनानंद का उद्देश्य भी भाषा में चमत्कार पैदा करना नहीं है, अपितु उसमें भाव सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना है। इस दृष्टि से पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार का प्रयोग उनके काव्य में खूब हुआ है—

“रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।”<sup>93</sup>

× × ×

तरसि तरसि प्रान जानमनि—दरस कौ,

उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है।”<sup>94</sup>

यहाँ नयो—नयो, ज्यों—ज्यों, तरसि—तरसि और उमहि—उमहि आदि शब्दों की आवृत्ति से कथन में चमत्कार और संगीतात्मकता का सौन्दर्य दिखाई देता है। शब्दों की आवृत्ति से प्रेमी हृदय की गहनता अभिव्यक्त हुई है। अतः घनानंद ने पुनर्विप्रकाश अलंकार के माध्यम से अपने भावों को यथोचित तीव्रता एवं मार्मिकता प्रदान की है।

रीतिमुक्त कवियों ने विशेषकर अन्तर्मन की व्यथा की अभिव्यंजना हेतु रूपक अलंकार का प्रयोग किया है। घनानंद के काव्य में भाव की प्रधानता रही है। उन्होंने रूपक अलंकार के द्वारा अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान किया है। उन्होंने जिन रूपकों का प्रयोग किया है, वह उनकी अनुभूति से ही निकले हुए हैं। जहाँ उपमेय में उपमान का अभेद आरोपित किया जाये, वहाँ रूपक अलंकार होता है। कुवलयानन्द में भी इसका लक्षण वर्णित है—

‘विषस्य भेदताद्रूप्यरञ्जनं विषस्य यत्’<sup>95</sup>

× × ×

“आसहि अकास—मधि अवधि—गुनै बढ़ाय,

चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै।

निपट कठोर एहो ऐँचत न आप—ओर,

लाड़िले सुजान सौं दुहेली दसा को कहै।

अचिरजभई मोहिँ भई घनआनँद यौ,

हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै।

बिरह—समीर की झकोरनि अधीर, नेह—

नीर भीज्यौ जीव तरु गुड़ी लौं उड़्यौ रहै।”<sup>96</sup>

घनानंद के इस कवित्त में आशा, अवधि, विरह, नेह और जीव पर क्रमशः आकाश, गुण, समीर, नीर एवं गुड़ी आदि अप्रस्तुतों के अभेद आरोप होने के कारण रूपक अलंकार दिखाई देता है। आशा रूपी आकाश भाव की व्यापकता का, अवधि रूपी गुण उसकी ऊँचाई का, विरह रूपी समीर उसकी तीव्रता का, नेह रूपी जल

उसकी तरलता, स्निग्धता और मधुरता का तथा जीव रूपी पतंग उसकी विरहानुभूति की अवस्था को व्यक्त करने में सर्वथा सफल हैं। कवि ने इन उपमानों के चयन द्वारा भाषा में प्रयोग की नवीनता, कथन की मौलिकता एवं रमणीयता का रूप प्रदान की है।

घनानंद ने गुणों के आधार पर एक वस्तु की दूसरी वस्तु से समानता प्रकट की है। जब दो वस्तुओं की आकृति, गुण अथवा दशा का साम्य प्रदर्शित किया जाए, तब उपमा अलंकार होता है। कुवलयानन्द में उसका लक्षण—‘उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः’<sup>97</sup> दिया गया है। घनानंद ने विविध उपमानों का प्रयोग किया है, जो उनकी अनुभूति में सहायक सिद्ध हुए हैं। उनके ये उपमान सर्वथा नवीन और मौलिक हैं। घनानंद ने सुजान के रूप सौन्दर्य के लिए अनेक उपमानों का प्रयोग किया है। इतना ही नहीं उन्होंने अपने विरह को तीव्रता प्रदान करने के लिए भी अनेक उपमाएं दी हैं—

“पीर की भीर अधीर भई, अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं।”<sup>98</sup>

घनानंद के जीवन में पीड़ा की अधिकता है और यह पीड़ा उनके जीवन में अश्रुधारा के समान बहती रही है। जब उपमेय और उपमान की समानता से विशिष्ट शोभा अथवा चमत्कार पैदा हो, तब उपमा अलंकार का प्रतिबिम्ब दिखने लगता है। प्रिय के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने लोक प्रसिद्ध उपमानों का प्रयोग किया है—

“अंग अंग नूतन निकार्ई—उझिलनि छाई,

मौन भरि चली सोभा नली लौं उफनि है।”<sup>99</sup>

जिस प्रकार उमड़ती हुई नदी का जल संभल नहीं पाता, उसमें उफान आया होता है, उसी प्रकार नायिका के सौन्दर्य में भी उफान आया हुआ है, वह सौन्दर्य उससे संभल नहीं पा रहा है। यहाँ कवि ने अप्रस्तुतों के प्रयोग से नायिका के सौन्दर्य की गत्यात्मकता, प्रभावात्मकता, व्यापकता, असीमता, सक्रियता आदि विशेषताओं को वर्णित किया है, जो नदी के गुणों के समान देखी गई हैं। फलतः कथ्य का सम्पूर्ण बिम्ब सहृदय के मन में अनायास ही उतर जाता है।

उत्प्रेक्षा अलंकार की छटा भी घनानंद के काव्य में दर्शनीय है। वस्तुतः जहाँ अप्रस्तुत के साथ प्रकृत की वस्तु, हेतु तथा फल रूप की सम्भावना की जाए, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। रीतिमुक्त कवि घनानंद ने भी प्रस्तुत में अप्रस्तुत की सम्भावना प्रकट की है—

“चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,  
कहा कहौँ सोभा भाग—भरे भाल सीस की।  
मानौ घनआनँद सिँगार—रस—सौँ सँवारी,  
चिक मैं बिलोकति बहनि रजनीस की।”<sup>100</sup>

अपनी प्रेयसी सुजान के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए घनानंद विभिन्न उपमानों का प्रयोग करते हैं और उस अतुल रूप-राशि में डूबकर आत्मसंतुष्टि प्राप्त करते हैं। इसीलिए घनानंद ने यत्र-तत्र उपमान की उपेक्षा और उपमेय का उत्कर्ष व्यंजित किया है। उनके काव्य में प्रतीप अलंकार का प्रयोग भी हुआ है। प्रतीप का अर्थ है विपरीत या उलटा। यह उपमा अलंकार का उलटा होता है। यही कारण है कि इसे विपरीतोपमा भी कहा गया है। उपमा अलंकार में उपमेय की उपमान से समानता बताई जाती है, किन्तु इसके विपरीत उपमेय का इस प्रकार वर्णन किया जाता है, जिसमें उपमान का उपमेय की तुलना में अपकर्ष प्रतीत हो। कवि घनानंद चन्द्रमा को भी सुजान के मुख के सम्मुख हीन समझते हैं। सुजान के असीम सौन्दर्य के प्रति घनानंद का मन अनुरक्त रहा है। वे सुजान के प्रेम और सौन्दर्य के वशीभूत होकर कह उठते हैं—

“नीठि दीठि परें खरकत सो किरकिरी लौँ,  
तेरे आगेँ चंद्रमा कलंक सो लगत है।”<sup>101</sup>

कवि घनानंद ने अपने प्रेम के सम्मुख मीन के प्रेम को हीन माना है क्योंकि मछली तो प्राण त्यागकर अपने प्रिय जल को कलंकित कर देती है, परन्तु घनानंद प्राण, त्यागकर सुजान के विरह में जीवन भर व्यथित होते रहते हैं, वे अपने सच्चे प्रेम और प्रेमी को कलंकित नहीं होने देना चाहते हैं—

“हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।  
नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।”<sup>102</sup>

अतिशयोक्ति-जिसका आशय है, किसी बात का प्रत्यक्षतः बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करना, इस अलंकार का प्रयोग रीतिकालीन कविता में प्रचुरता के साथ हुआ है। इस काल में अधिकतर कवि आश्रयप्रधान थे, वे अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा किया करते थे। यद्यपि घनानंद का प्रेम और सौन्दर्य स्वानुभूतिपरक है, फिर भी उसमें अतिशयोक्ति के लक्षण दिखाई देते हैं-

“नेह भीजी बातें रसना पै उर-आँच लागें,

जागैं घनआनंद, ज्यों पुंजनि-मसाल हैं।”<sup>103</sup>

घनानंद में भी प्यार में भीगी बातें जिह्वा पर हैं और हृदय में आग लगी हुई है, मानो मशाल जली हुई है। प्यार में भीगी बातों का जिह्वा पर होना और हृदय में आग लगना यह प्रत्यक्ष रूप से सम्भव नहीं। प्रेम में भीगी बातों से तात्पर्य-अगाढ़ प्रेम से है, तो हृदय में आग लगना से तात्पर्य विरह की चरम सीमा से है। विरह की अधिकता के कारण उनके काव्य में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग खूब हुआ है।

घनानंद के काव्य में असंगति अलंकार का रूप भी विद्यमान है। असंगति अलंकार जिसका आशय है कि कारण कहीं हो और कार्य कहीं और हो, अर्थात् कार्य और कारण जहाँ पृथक-पृथक होते हैं, वहाँ असंगति अलंकार होता है। घनानंद के काव्य में यत्र-तत्र इस अलंकार का प्रभाव देखा गया है-

“नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,

या बस ह्वै जीब धीर होत लोटपोट है।

रोम रोम पूरि पीर, व्याकुल सरीर महा,

घूमै मति गति-आसैं प्यास की न टोट है।”<sup>104</sup>

प्रिय के कटाक्ष रूपी वाण की चोट लगती तो नेत्रों में है किन्तु इसकी कसक हृदय में जगती है और रोम रोम में पीड़ा देती है। कवि ने प्रिय के आंगिक सौन्दर्य की व्यंजना के साथ-साथ असंगति अलंकार के द्वारा हृदय की व्याकुलता, विवशता आदि दशाओं की व्यंजना की है। काव्य में ऐसे स्थानों पर जहाँ कारण के बिना ही कार्य होने लग जायें, वहाँ विभावना अलंकार के दर्शन होते हैं। कुवलयानन्द में इसका लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट है-‘विभावनाविनापि स्यात् कारणं कार्य जन्म चेत।’<sup>105</sup> घनानंद के काव्य में विभावना अलंकार का यह रूप दृष्टव्य है-



“बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह—

नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौँ उड़्यौ रहै।”<sup>106</sup>

प्रेम के जल में भीगा होने पर भी जीव पतंग के समान उड़ा रहता है, भीगा होने पर भी उड़ते रहने के कारण कार्य की सिद्धि होती है, अतः विभावना अलंकार है। विरोधाभास घनानंद का सर्वाधिक प्रिय अलंकार है। उनके काव्य में विरोधाभास का आधिक्य है। जीवन में विषम प्रेम की प्रधानता होने के कारण उनके काव्य में विरोधी भावना का प्रादुर्भाव हुआ है। विरोधाभास का प्रमुख कारण उनकी विषमता—पूर्ण प्रेम भावना ही है। इसलिए घनानंद की कविता में वैषम्य की भरमार है। “वास्तव में घनानंद की कविता वैषम्य में ही सांस लेती, कराहती और गुनगुनाती है। वैषम्य के कारण ही घनानंद की कविता अलग से पहचानी जाती है।”<sup>107</sup> उनके काव्य में जिस आलंकारिक सौन्दर्य की सृष्टि हुई है, उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार और उनका जीवन है, जो विषमता का कोष था। उनका जीवन विषम परिस्थितियों और मनः स्थितियों का केन्द्र हो गया था। अतः यही कारण है विरोधाभास उनकी आलंकारिक सौन्दर्य चेतना का केन्द्र-बिन्दु हो गया है। इसलिए डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—“घनानंद की जिस कृति में यह अलंकार न मिले, उसे बेखटके इनकी कृतियों से पृथक् किया जा सकता है।”<sup>108</sup> आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने काव्य में विरोधाभास की प्रवृत्ति को देखते हुए माना है कि विरोधाभास के अधिक प्रयोग से घनानंद की रचना भरी पड़ी है। उनकी हर कृति में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। घनानंद अपने विरोधमूलक अलंकारों में आत्मकथा सी कहते प्रतीत होते हैं—

“मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर

अमोही के मोह—मिठास ठगी।।”<sup>109</sup>

× × ×

उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,

सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ।।”<sup>110</sup>

इस प्रकार विरोधाभास की प्रवृत्ति कवि के काव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि करती है। मोह, अमोह और उजड़ना, बसना परस्पर होना आदि विरोधाभास के ही लक्षण हैं, जो घनानंद ने प्रयुक्त किये हैं—

“आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,  
सुधि सब भाँतिन सौँ बेसुधि करति है।”<sup>111</sup>

× × ×

जल-बूझी जरैँ दीठि पाय हू न सूझ करैँ,  
अमी पियेँ मरैँ मोहि अचिरज अति है।  
चीर सौँ न ढकैँ, बानी बिन बिथा बकैँ,  
दौरि परैँ न निगोड़ी थकैँ बड़ी भूतागति है।”<sup>112</sup>

प्रिय की सुधि में और स्मृति में अपनी सुध बुध भुला कर कवि (प्रेमी) का बेसुध हो जाना स्वाभाविक ही है। प्रेम विरह में आँखों की स्थिति बड़ी विषम हो जाती है। जल के भीतर जलना, दृष्टि पाकर भी न देख पाना, अमृत पीकर भी मरना, वस्त्रों के होते हुए भी न ढक पाना, बिना वाणी के ही व्यथा कहना आदि परस्पर विरोधाभास के ही लक्षण हैं, जिनके माध्यम से घनानंद ने विरह में पीड़ित आँखों की पीड़ा को व्यंजित किया है।

घनानंद के काव्य में प्रयुक्त विविध अलंकारों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि घनानंद ने अपने काव्य में लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों के नितान्त वैयक्तिक प्रयोग के कारण घनानंद की गणना ब्रजभाषा के अद्वितीय शिल्पकारों में की जाती है। घनानंद की भावुकता अत्यन्त निराली है। उनके प्रत्येक छन्द में बांकपन दिखाई देता है। इसी कारण “विरोधाभास का निदर्शन, रूपकों का अनुपम सौन्दर्य तथा अन्य अलंकारों के द्वारा भाव को सुन्दर बना देना घनानंद के काव्य शिल्प की सर्वप्रमुख विशेषता रही है।”<sup>113</sup> वस्तुतः अलंकारों का प्रयोग करने में कवि का उद्देश्य अपनी अनुभूतियों को सहज व स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त करना रहा है, जिसमें स्वतः ही अलंकारों का समावेश हो गया है, इसके लिए कवि को किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। अलंकारों के प्रयोग में इनकी कृति ‘सुजानहित’ अद्वितीय है। “विरोधमूलक अलंकारों की जो प्रचुरता उनके काव्य में है, वह कवि की अन्तः प्रवृत्ति के कारण ही है।”<sup>114</sup>

## 5.4 छन्द विधान

काव्य में मुख्यतः दो प्रकार के तत्व पाये जाते हैं—बाह्य और आन्तरिक। बाह्य तत्वों में जहाँ भाषा, छन्द और अलंकार का समावेश होता है, वहीं आन्तरिक तत्वों में भाव और कल्पना का समावेश रहता है। भाव काव्य की आत्मा है, तो भाषा, छन्द और अलंकार उसके विभिन्न उपकरण, जिनके बिना भावों की सार्थकता सिद्ध नहीं होती। यह काव्य के महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं, इनके द्वारा काव्य में सरसता, सौन्दर्य व चमत्कार पैदा होता है।

काव्य के बाह्य उपकरणों में भाषा और अलंकार के साथ छन्द का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह काव्य का प्रभावशाली उपकरण है। काव्य से छन्द का सम्बन्ध स्थापित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी कहते हैं—“काव्य के लिए छन्द का बन्धन अत्यन्त आवश्यक है। छन्द के बन्धन के सर्वथा त्याग में हमें अनुभूत नाद सौन्दर्य की प्रेषणीयता का प्रत्यक्ष ह्रास दिखाई देता है।”<sup>115</sup> काव्य यदि जीवन की रागात्मक अभिव्यक्ति है, तो छन्द उस अभिव्यक्ति को रूपायित करने का गतिमय साधन। नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि ने तो सारा वाङ्मय ही छन्दमय माना है—‘छन्दहीनों न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्द बर्जितम्।’<sup>116</sup> छन्द से हीन शब्द नहीं है और छन्द भी शब्द रहित नहीं है। ये एक दूसरे पर आश्रित हैं।

“छन्दयति आह्लादयतिरति छन्दः” अर्थात् जो मनुष्यों को प्रसन्न करता है, अथवा आनन्द प्रदान करता है, वह छन्द है। छन्दबद्ध रचना के द्वारा काव्य में मधुरता उत्पन्न होती है, जिसकी मधुरता पर केवल मनुष्य ही नहीं, पशु पक्षी भी मुग्ध हो जाते हैं। छन्द के द्वारा ही काव्य में स्थिरता आती है और काव्य अमरत्व को प्राप्त करता है। इसी के द्वारा काव्य में सरसता, सुबोधता, रोचकता व सुगमता आती है। इस सन्दर्भ में पंत जी का कथन है—“जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं, जिनके बिना वह अपनी ही बंधन हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती हैं, उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन, कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में कोमल, सजल, कलरव भर, उन्हें सजीव बना देते हैं।”<sup>117</sup> अतः कविता और छन्द में गहरा सम्बन्ध है। कविता छन्द में ही श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति पाती है।

छन्द शब्द की व्युत्पत्ति 'छद्' धातु से मानी गयी है, जिसका अर्थ आवृत्त करना, रक्षा करना और प्रसन्न करना होता है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार—'अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छन्द कहलाती है।'<sup>118</sup> काव्य में छन्दों की परम्परा आरम्भिक काल से चली आ रही है। मानव जाति में जब भाषा का प्रचलन हुआ, तभी से वह अपने भावों की अभिव्यक्ति लयात्मक भाषा में करने लगा। कालान्तर में विशेष आरोह-अवरोह से युक्त इसी लयात्मक भाषा को क्रमबद्ध करके छन्द का सूत्रपात हुआ है। डॉ० विजयपाल सिंह का मानना है कि छन्दों का प्रारम्भ मानव सृष्टि के साथ ही हुआ। इस महत्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है कि—'संगीत जीवन है, उसमें न केवल चेतन अपितु अचेतन को भी मुग्ध करने की अपूर्व क्षमता है। यदि काव्य जीवन के लिए है, तो संगीत अर्थात् छन्द बन्धन की अवहेलना करना उसकी सम्मोहक शक्ति को कम करना है क्योंकि छन्द शास्त्र, नाद सौन्दर्य (संगीत) उत्पन्न करने के नियमों का शास्त्र ही तो है। छन्दों की सर्जना मानव सृष्टि के साथ-साथ हुई, यह कहना समुचित प्रतीत होता है।'<sup>119</sup>

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में छन्द लेखन की परम्परा उत्कर्ष रूप में है। रीतिकाल में मुख्य रूप से कवित्त, सवैया और दोहा आदि छन्दों के साथ ही रोला, सोरठा, छप्पय, बरवै, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग भी हुआ है। रीतिकालीन कवियों ने प्रायः उन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है, जो उनकी अपनी प्रवृत्ति के सर्वथा अनुकूल थे। सफल कवि अपने भावों के अनुरूप छन्दों की योजना करता है और यही उसके छन्द-विधान की कसौटी बनता है। इस दृष्टि से रीतियुगीन कवियों का छन्द-विधान उस काल की काव्य प्रवृत्ति के अनुकूल था। रीतिमुक्त कवि घनानंद ने दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय, कवित्त और सवैया जैसे छन्दों को अपने काव्य में स्थान दिया है, जिनमें कवित्त और सवैया मुख्य हैं। घनानंद के काव्य में प्रयुक्त कवित्त और सवैया ऐसे छन्द हैं, जो शृंगार रस की प्रवृत्ति के अनुकूल जान पड़ते हैं। घनानंद का सम्पूर्ण काव्य शृंगारिक है, इसीलिए शृंगारिकता की प्रधानता होने के

कारण उन्होंने कवित्त और सवैया का विशेष रूप से प्रयोग किया है। कवित्त या घनाक्षरी के प्रयुक्त भेदों में मनहरण और रूपघनाक्षरी प्रधान रहे हैं। सवैया के मत्तगयंद, दुर्मिल, किरीट, सुन्दरी आदि भेदों का प्रचुरता के साथ प्रयोग किया गया है। वस्तुतः छन्दों का प्रयोग काव्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। इसलिए घनानंद के छन्द भी उनकी अभिव्यक्ति कौशल में सहायक सिद्ध हुए हैं।

‘सुजानहित’ घनानंद की विशिष्ट व विशाल रचना है। इस कृति में घनानंद ने कवित्त और सवैया का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है। सवैया छन्द के प्रति घनानंद का मोह अत्यधिक था। इस सम्बन्ध में अशोक शुक्ल का कथन है—‘कवित्त की अपेक्षा सवैया छन्द के प्रयोग में घनानंद को अधिक सफलता मिली है। यही कारण है कि कवित्तों की तुलना में उनके सवैया ही अधिक लोकप्रिय हैं।’<sup>120</sup> छन्दों के क्षेत्र में घनानंद ने कोई नया मार्ग ही नहीं अपनाया, परन्तु युग के सर्वप्रिय छन्द कवित्त और सवैयाओं के द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। “कला और सौन्दर्य की दृष्टि से जो उत्कर्ष उनके कवित्त, सवैयाओं में—विशेषतः सुजानहित में लक्षित हुआ है, वह अन्य किसी रचना में नहीं।”<sup>121</sup>

‘सवैया’ मधुर एवं संगीतात्मक छन्द है। शृंगार रस के सुकोमल भावों को स्पष्ट करने में यह पूर्णतया समर्थ है। इस छन्द की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—“अपनी लोच, लचक के कारण यह छन्द अनायास ही मधुर रसों का सहज माध्यम बन गया, क्योंकि इसका लचीला स्वर माधुर्य में एक निश्चित योग है। इसके अतिरिक्त अन्य छन्दों में जहाँ अक्षर मैत्री के लिए प्रयत्न करना पड़ता है, वहाँ इसमें वह अपने आप ही सिद्ध हो जाती है।”<sup>122</sup> डॉ० विजयपाल सिंह ने इस छन्द की रसानुकूलता का वर्णन करते हुए लिखा है कि—“हिन्दी के सवैया, बरवै एवं मालिनी वृत्तों में शृंगार, करुण और शान्त जैसे कोमल रस प्रायः अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं।”<sup>123</sup>

सवैया शृंगार रस के लिए उपयुक्त छन्द है। इसलिए यह छन्द रीतिकालीन कवियों में सर्वाधिक प्रचलित रहा है। घनानंद ने भी शृंगार की मुक्तक रचनाओं के लिए इस छन्द का चयन किया। उनकी कृति ‘सुजानहित’ के अधिकांश छन्द सवैया में हैं। सवैया के प्रयोग में घनानंद ने अपनी सुरुचि का परिचय दिया है। 22 से

लेकर 26 अक्षरों तक के छन्दों को सवैया कहा जाता है। इसके अनेक भेद हैं जिनमें मदिरा, मत्तगयन्द, दुर्मिल, किरीट आदि मुख्य हैं। सवैया की यह विशेषता है कि इसमें एक ही गण प्रारम्भ से अन्त तक चलता है। इसी कारण इसमें संगीतात्मकता का समावेश हो जाता है।

घनानंद ने सवैया छन्द का प्रयोग शृंगार रस की रचनाओं के लिए किया है। चूंकि उनका काव्य शृंगार प्रधान है, इसीलिए सवैया छन्द का प्रयोग अधिक समीचीन प्रतीत हुआ। इस सम्बन्ध में डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने लिखा है—“सफल सवैयाकार वह कवि है, जिनके छन्द की पंक्तियों में ऐसे शब्दों की संख्या कम या बिल्कुल न हो जो मध्य में रोड़े की तरह खटके और अपनी कर्कशता के कारण भिन्न प्रकार का बेसुरा स्वर उत्पन्न करे। आनन्दघन के सवैया अधिक संख्या में ऐसे ही हैं, जो अत्यन्त कोमल शब्दावली में लिखे गये हैं और जिनमें संगीत की मधुर गूंज उत्पन्न होती है। समस्त छन्द में एक भी प्रतिकूल या कठोर वर्ण नहीं आता है।”<sup>124</sup> घनानंद के छन्द में यति का अवसान प्रायः शब्द के मध्य नहीं आता—

“कंत रमैँ उर—अंतर मैँ सु लहैँ नहिँ, क्योंँ सुख—रासि निरंतर।

दंत रहैँ गहैँ आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर।

जो दुख देखति हौँ घनआनंद रैन—दिना बिन जान सुतंतर।

जानैँ वेई दिन—राति, बखानैँ तैँ जाय परै दिन—राति को अंतर।”<sup>125</sup>

घनानंद ने अपने सवैया में कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग किया है। यहाँ परतन्त्र के स्थान पर ‘परतंतर’, आनन्द के स्थान पर ‘आनंद’ और स्वतंत्र के स्थान पर ‘सुतंतर’ शब्द का प्रयोग कर देने से उनके सवैया में एकलयता आ गई है। सवैया के प्रयोग में घनानंद अधिक सफल रहे हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने सवैया के प्रयोग में शब्द मैत्री और पद मैत्री का निर्वाह किया है तथा कोमल प्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग किया है। इसीलिए वे सवैया के प्रयोग में अधिक लोकप्रिय हो गये—

“रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौँ ज्यौँ निहारियै।

त्यौँ इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिँ आन तिहारियै

एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै।

रोकी रहै न, दहै घनआनंद बाबरी रीझ के हाथनि हारियै।”<sup>126</sup>

उनके सवैया अत्यन्त सरल और कोमल बन पड़े हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में 22 से 26 के बीच में ही अक्षर हैं। ‘कवित्त’ छन्द घनाक्षरी के नाम से भी

प्रसिद्ध है। घनानंद ने शृंगार के लिए इस छन्द का भी प्रयोग किया है। यद्यपि कवित्त छन्द ओजपूर्ण रचनाओं के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है, परन्तु घनानंद के समय में शृंगार रस ही प्रधान था इसलिए उन्होंने शृंगार रस के लिए कवित्त का प्रयोग किया। यह छन्द 31 या 32 अक्षरों का होता है। इसमें यति 8, 8, 8, 7 अक्षरों के या 8, 8, 8, 8 के पश्चात् होती है। इस छन्द के दो भेद हैं—कवित्त मनहर और कवित्त घनाक्षरी। कवित्त मनहर—इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं, 16, 15 वर्णों पर यति होती है तथा अन्तिम वर्ण गुरु होता है। कवित्त घनाक्षरी—इसके दो भेद होते हैं—रूप घनाक्षरी और देव घनाक्षरी। रूप घनाक्षरी में 32 वर्ण होते हैं, 8, 8 वर्णों के उपरान्त यति होती है तथा देव घनाक्षरी में 33 वर्ण होते हैं, 8, 8, 8, 9 के क्रम से यति होती है।

घनानंद के कवित्त औरों की अपेक्षा अधिक सरल और सरस हैं। छन्द की कोमलता इनके कवित्तों को उच्चकोटि के स्थान पर प्रतिष्ठित करती है—

“तरसि तरसि प्रान जानमनि—दरस कौ,  
 उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है।  
 विषम बिरह के बिसिष हिर्यँ घायल द्वै,  
 गहवर घूमि घूमि सोचनि ससत है।  
 निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,  
 मुरझि अनोखी उरझनि मैँ गसत है।  
 सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन—सुख,  
 कटनि सौँ आसा—पट कटि लै कसत है।”<sup>127</sup>

घनानंद के इस कवित्त में पहली और आठवीं पंक्ति में ही आठ अक्षर के बाद शब्द पूर्ण हो जाता है। आठ अक्षरों के बाद जहाँ यति आना चाहिए, वहाँ शब्द का पूर्ण होना देखा जाता है, जबकि अन्य पंक्तियों में यति अक्षरों के बीच आई है। इसके साथ ही घनानंद ने ‘तरसि’ के बाद ‘तरसि’, ‘उमहि’ के बाद ‘उमहि’, ‘विषम’ के बाद ‘विरह’, ‘सोचनि’ के बाद ‘ससत्’, ‘लालसा’ के बाद ‘लपेटे’ शब्द के आनुनासिक प्रयोग किये हैं, जिससे इनके कवित्त में लयात्मकता आ गई है। इसी से इनके कवित्त सुन्दर बन गये हैं—

“कहाँ जौ सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,  
 न्हानै मन वारे की कहैऽब को सुनै सु कौन।  
 निधरक जान अलबेले निखरक—ओर,  
 दुखिया कहै या कहा तहाँ की उचित हौ न।  
 पर—दुख—दल के दलन कौँ प्रभंजन हौ,  
 ढरकौँ हँ देखि कै बिबस बकि परी मौन।  
 इत की भसम—दसा लै दिखाय सकत जू,  
 लालन—सुबास सौँ मिलाय हू सकत पौन।।”<sup>128</sup>

घनानंद के इस कवित्त में प्रत्येक पंक्ति 16, 16 अक्षरों की है। यहाँ पर केवल पहली पंक्ति के ‘ताकों’ और आठवीं पंक्ति के ‘दसा’ के आठवें अक्षर पर ही यति है, जबकि अन्य पंक्तियों में 16 वें अक्षर पर यति आई है। इनकी पहली पंक्ति में लयात्मकता भी नहीं आई है, क्योंकि ध्वनियों का आपस में कोई मेल नहीं है, जैसे—‘कहाँ’ शब्द दो ध्वनियों का है, ‘जौ’ एक ध्वनि का शब्द है। इसके बाद ‘संदेशों’ शब्द तीन ध्वनियों का है तथा ‘ताको’ फिर दो ध्वनियों का शब्द है। अतः इसमें अन्य कवित्तों की अपेक्षा लयता नहीं है।

घनानंद ने दोहों का प्रयोग कम ही किया है, परन्तु जितना भी किया है, उसमें उनको पूर्ण सफलता मिली है। उन्होंने अपने छोटे से छोटे दोहों में अधिक से अधिक अर्थ भर देने की क्षमता रखी है। दोहे के पहले और तीसरे चरण में 13, 13 मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में 11, 11 मात्राएँ होती हैं। इसके आदि में जगण नहीं होता, किन्तु अन्त में लघु होना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य में ‘दोहा’ अधिक प्रिय छन्द है। इसका प्रयोग प्रत्येक रस की कविता के लिए किया जाता है, लेकिन अधिकांश रूप से दोहों में शृंगार, नीति और भक्ति की प्रधानता देखा जाती है। संगीतात्मकता उनके दोहों की सबसे बड़ी विशेषता है—

“मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही! जोहि।  
 सो ही मोही सौँ कठिन, क्यों करि सोही तोहि।।”<sup>129</sup>

× × ×  
 सहज रचै सोई बचै, बृथा पचै संसार।

सहज मिलन बिछुरन सहज, सहज सकल ब्योहार।।”<sup>130</sup>



घनानंद के दोहों में भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। अल्पमात्रा में दोहों का प्रयोग करने के साथ-साथ घनानंद ने यत्र-तत्र सोरठा छन्द का भी प्रयोग किया है। इसके पहले और तीसरे चरण में 11, 11 मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में 13, 13 मात्राएँ होती हैं। यह छन्द दोहा का ठीक विपरीत होता है—

“घनआनँद रस—ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।

मरत पपीहा—नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं।”<sup>131</sup>

घनानंद ने चौपाई छन्द का प्रयोग अधिकतर भक्तिपरक रचनाओं में किया है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में 16, 16 मात्राएँ होती हैं। चौपाई छन्द का प्रयोग मुख्य रूप से प्रीति पावस, प्रेम पहेली, यमुनायश, भावनाप्रकाश, गोकुल चरित्र, नाम—माधुरी, गिरीपूजन आदि रचनाओं में हुआ है। ‘यमुनायश’ में चौपाई छन्द का प्रयोग बड़े मर्मस्पर्शी रूप में हुआ है—

‘जमुना को जस बरन्यौ चाहौं। अति अगाध कैसेँ अवगाहौं।

जमुना कहँ रसवती बानी। होति मधुर रसनिधि की रानी।।”<sup>132</sup>

घनानंद की रचनाओं में छप्पय छन्द का प्रयोग भी दर्शनीय है। इसमें छह चरण हैं। प्रथम चार चरण रोला छन्द के तथा अन्तिम दो चरण उल्लास छन्द के होते हैं। छप्पय छन्द में 15—16 मात्राएँ होती हैं—

“अच्छर मन कोँ छरै बहुरि अच्छर ही भावै।

रूप अच्छरातीत ताहि अच्छरै बतावै।

अच्छर को यह भेद कौन जानै बिन मानै

अच्छर हूँ मैं मौन मिलै सारदा सुठानै।

अच्छर मौन सवाद—रस आनँदघन बरसत रहै।

तत्त्वबोध बौरानि मैं अच्छरगति अच्छर लहै।”<sup>133</sup>

घनानंद का जैसा अधिकार भाषा पर था, वैसा ही छन्दों पर भी। उन्होंने अपनी विभिन्न कृतियों में विषय और भाव के अनुकूल छन्दों का चयन किया है। छन्दों के प्रयोग से उनकी अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली हो गयी है। घनानंद के छन्द उनकी कविता के अनिवार्य अंग हैं। उनकी छन्द योजना में संगीत और भावना का सुन्दर समन्वय हुआ है। जैसे नदी तटों में बंधकर गतिमान होती है, उन्मुक्त

वाणी (काव्य) को छन्द ही नियंत्रित करते हैं, जैसे चुम्बक लौह को अपनी ओर आकर्षित करता है, वैसे ही घनानंद के काव्य में भाव रूपी छन्द पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सुज्ञानहित घनानंद की कवित्त और सवैयाओं की प्रगीत रचना है। कवित्त और सवैयाओं का प्रयोग कर इन्होंने मौलिकता का परिचय दिया है। घनानंद सच्चे, उदार, भावुक और हृदय के पारखी थे। कवित्त और सवैयाओं में उन्हें विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। जिस प्रकार बिहारी ने दोहा छन्द को अपनी भाषा की कुशलता के आधार पर उसे सुन्दर रूप प्रदान कर अपने काव्य में प्रदर्शित किया है, उसी प्रकार घनानंद ने भी कवित्त और सवैयाओं को इतनी अधिक सुन्दरता प्रदान की है कि समस्त हिन्दी प्रेमी आज भी उन्हें पढ़कर भाव-विभोर हो जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि घनानंद की काव्य-शैली में सादगी, भावुकता और विरोधाभास का शिल्प विद्यमान है। मुहावरे, लोकोक्तियों एवं विविध भाषा के शब्दों के प्रयोग से घनानंद की भाषा समृद्ध हो गई है। सहज, स्वाभाविक रूप में अलंकार स्वतः ही प्रयुक्त हुए हैं, अनावश्यक रूप से चमत्कृत करने की प्रणाली से घनानंद दूर ही रहे हैं। घनानंद की अभिव्यंजना शैली में कोरी भावुकता एवं अतिशयोक्ति नहीं है। उनके भाव सम्पृक्त हैं इसलिए वह अपनी बात को पाठक या श्रोता के समक्ष प्रभावशाली ढंग से पहुँचाने में सफल हुए हैं।

## सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. सं० गुलाब राय, साहित्य-सन्देश (क्या साहित्य एक कला है-द्वारिका प्रसाद सक्सैना, कार्यालय 4, गांधी मार्ग-आगरा, मई-1954, अंक-12, पृ०सं०-480
2. डॉ० मनमोहन गौतम, सूर की काव्य कला, एस०चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ०सं०-9
3. श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, प्रबन्ध प्रतिमा (मेरे गीत और कला), भारती भण्डार, इलाहाबाद-1963, पृ०सं०-201
4. रामफेर त्रिपाठी, कवियत्री, रामा प्रकाशन, नजीराबाद, लखनऊ-1965, पृ०सं०-171
5. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (सुजानहित), वाणी वितान, बनारस-2009, छ०सं०-228
6. वही, छ०सं०-1
7. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, रीतियुगीन काव्य, गायत्री प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद-1965, पृ०सं०-220
8. डॉ० श्यामसुंदर दास, साहित्यालोचन, इंडियन प्रेस (पब्लिशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद- पृ०सं०-60, 61
9. भगीरथ मिश्र, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, साहित्य मंदिर प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, लखनऊ-1000, पृ०सं०-393
10. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2002, पृ०सं०-26
11. राजनाथ शर्मा, साहित्यिक निबंध, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-1960, पृ०सं०-53, 54
12. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-1980, पृ०सं०-199
13. सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी, काव्य निर्णय (प्रथम उल्लास), कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी-1956, पृ०सं०-7
14. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ०सं०-199

15. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी-सं०-2035, पृ०सं०-320
16. सुजानहित, छं०सं०-1
17. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, घनआनंद, रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर-1976, पृ०सं०-273, 274
18. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं०-322
19. सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, घनआनंद ग्रन्थावली (प्रस्तावना), पृ०सं०-49
20. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी-2015 वि०, पृ०सं०-171
21. सुजानहित, छं०सं०-442
22. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ०सं०-201
23. सुजानहित, छं०सं०-267
24. वही, छं०सं०-402
25. वही, छं०सं०-170
26. इश्कलता, छं०सं०-16
27. पदावली, छं०सं०-369
28. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं०-312
29. सुजानहित, छं०सं०-84
30. वही, छं०सं०-76
31. वही, छं०सं०-196
32. वही, छं०सं०-8
33. वही, छं०सं०-36
34. वही, छं०सं०-339
35. वही, छं०सं०-260
36. वही, छं०सं०-184
37. वही, छं०सं०-187
38. वही, छं०सं०-187

39. वही, छं0सं0-4
40. वही, छं0सं0-240
41. वही, छं0सं0-187
42. वही, छं0सं0-372
43. वृंदावन मुद्रा, छं0सं0-31
44. ब्रज प्रसाद, छं0सं0-1
45. वही, छं0सं0-53
46. सुजानहित, छं0सं0-257
47. वही, छं0सं0-8
48. वही, छं0सं0-36
49. डॉ० मंजू शर्मा, घनानंद और प्रसाद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, ज्योति  
इण्टरप्राइजिज, जवाहर नगर-दिल्ली-2009, पृ०सं०-180
50. सुजानहित, छं0सं0-267
51. घनआनंद ग्रन्थावली, (प्रशस्ति), छं0सं0-01
52. सुजानहित, छं0सं0-271
53. वही, छं0सं0-88
54. वही, छं0सं0-38
55. वही, छं0सं0-260
56. वही, छं0सं0-207
57. वही, छं0सं0-224
58. वही, छं0सं0-99
59. वही, छं0सं0-34
60. वही, छं0सं0-289
61. वही, प०सं०-52
62. वही, छं0सं0-30
63. वही, प०सं०-486
64. वही, छं0सं0-267

65. वही, छ०सं०-289
66. वही, छ०सं०-294
67. वही, छ०सं०-80
68. सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ठाकुर ग्रन्थावली, छ०सं०-84
69. सुजानहित, छ०सं०-195
70. प्रकीर्णक, छ०सं०-6
71. सुजानहित, छ०सं०-257
72. वही, छ०सं०-207
73. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०सं०-322
74. अप्पय दीक्षित, कुवलयानन्द, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस-1958, पृ०सं०-50
75. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ०सं०-204
76. सं० अशोक शुक्ल, घनानंद कवित्त, पदम बुक कम्पनी, जयपुर-1968, पृ०सं०-99
77. उद्धृत, डॉ० हनुमंत रणखांब, घनानंद का साहित्यिक अवदान, विकास प्रकाशन, कानपुर-2009, पृ०सं०-180
78. सं० आचार्य रामचन्द्र मिश्र, काव्यादर्श, दो०सं०-1, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-1958, पृ०सं०-74
79. डॉ० विजयपाल सिंह, केशव ग्रन्थावली, (1) (रसिकप्रिया और कविप्रिया), हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद 1954, दो०सं०-1, पृ०सं०-112
80. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव (प्रवेश), पृ०सं०-31
81. सं० अशोक शुक्ल, घनानंद कवित्त, पृ०सं०-100
82. सुजानहित, छ०सं०-228
83. शशि सहगल, घनानंद का रचना संसार, पृ०सं०-206
84. सुजानहित, छ०सं०-4
85. प्रकीर्णक, छ०सं०-2
86. सुजानहित, छ०सं०-190
87. वही, छ०सं०-187

88. वही, छं0सं0-1
89. वही, छं0सं0-271
90. वही, (प्रकीर्णक), छं0सं0-6
91. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, घनआनंद, पृ०सं०-282
92. सुजानहित, छं0सं0-267
93. वही, छं0सं0-41
94. वही, छं0सं0-26
95. अप्पय दीक्षित, कुवलयानन्द, पृ०सं०-15, प०सं०-19
96. सुजानहित, छं0सं0-49
97. अप्पय दीक्षित, कुवलयानन्द, प०सं०-6, पृ०सं०-2
98. सुजानहित, छं0सं0-43
99. वही, छं0सं०-167
100. वही, छं0सं०-166
101. वही, छं0सं०-300
102. वही, छं0सं०-4
103. वही, छं0सं०-206
104. वही, छं0सं०-204
105. अप्पय दीक्षित, कुवलयानन्द, पृ०सं०-142, प०सं०-77
106. सुजानहित, छं0सं०-49
107. डॉ० सभापति मिश्र, घनआनंद की काव्यसाधना, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद-1989, पृ०सं०-144
108. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, घनआनंद, पृ०सं०-280
109. सुजानहित, छं0सं०-8
110. वही, छं0सं०-217
111. प्रकीर्णक, छं0सं०-4
112. सुजानहित, छं0सं०-51
113. डॉ० सभापति मिश्र, घनआनंद की काव्य साधना पृ०सं०-145

114. सं० अशोक शुक्ल, घनानंद कवित्त, पृ०सं०-107
115. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र (सं०), चिन्तामणि (भाग-2), सरस्वती-मंदिर, जतनबर, वाराणसी, सं०-2019, पृ०सं०-145
116. पंडित बटुकनाथ शर्मा/पंडित बलदेव उपाध्याय, नाट्यशास्त्र, (पञ्चम-दशोऽध्यायः), श्लोक सं०-42, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-सं०-2037, पृ०सं०-213
117. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, पृ०सं०-33
118. सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं०-2015, पृ०सं०-290
119. डॉ० विजयपाल सिंह, केशव और उनका साहित्य, राजपाल एण्ड संस दिल्ली 1975, पृ०सं०-316
120. सं० अशोक शुक्ल, घनानंद कवित्त, पृ०सं०-121
121. डॉ० कृष्णचंद्र वर्मा, घनानंद, पृ०सं०-285
122. डॉ० नगेंद्र, देव और उनकी कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-1960, पृ०सं०-249
123. डॉ० विजयपाल सिंह, केशव और उनका साहित्य, पृ०सं०-321
124. डॉ० मनोहरलाल गौड़, घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०सं०-99
125. सुजानहित, छ०सं०-207
126. वही, छ०सं०-41
127. वही, छ०सं०-26
128. वही, छ०सं०-335
129. वही, छ०सं०-191
130. वही, छ०सं०-448
131. वही, छ०सं०-453
132. यमुनायश, छ०सं०-1, 2
133. प्रकीर्णक, छ०सं०-71



उपसंहार

## उपसंहार

घनानंद रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के आलोकमय कवि-रत्न हैं। उन्होंने उन्मुक्त रूप से अपनी गहरी, मार्मिक और अनुभूत शुद्ध प्रेमानुभूतियों के निश्छल प्रकाशन को ही अपना ध्येय बनाया। घनानंद ने अपने युग की काव्यधारा में प्रवाहित न होकर स्वच्छन्द काव्य की जो प्रेम गंगा बहाई है, वह हिन्दी साहित्य के लिए अप्रतिम देन है।

घनानंद की स्वच्छन्दता उस काल के साहित्यिक वातावरण में निश्चित ही एक क्रांति का रूप लेकर प्रस्फुटित हुई। अपने व्यक्तिगत प्रेमी जीवन के कारण ही वे प्रेम की यथार्थता, स्वच्छन्दता और महत्ता को पहचान सके। रीतिकाल के शृंगारिक वातावरण में साहित्यिक धरातल पर जिस प्रवृत्ति का विकास हुआ, उसके प्रवर्तक घनानंद ही हैं। घनानंद ने साहित्यिक परम्पराओं के बंधन को तोड़ने का साहस कर नवीन दिशा में साहित्यिक चिन्तन को मोड़ने का जो महान कार्य किया है, उसका हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है। उन्होंने धर्म भेद, जाति पांति की मान्यताओं, परम्पराओं को न केवल तोड़ा बल्कि अपने सुख, ऐश्वर्य का भी परित्याग कर दिया। घनानंद मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में भीर मुंशी के पद पर आसीन थे। अपने प्रिय के लिए उन्होंने दरबार के सुख व ऐश्वर्य को छोड़ने में तनिक भी संकोच नहीं किया था।

घनानंद एक महान कवि थे और महान कवि वही होता है, जो अपने समसामयिक परिवेश को पहचान कर अपनी लेखनी का प्रयोग करता है। वे समय की आवश्यकता को पहचानते थे। यही कारण है कि उनके काव्य के अधिकांश पद सुजान प्रेम के साथ-साथ श्रीकृष्ण के मधुर प्रेम-सौन्दर्य के दिव्य रस से अभिसिक्त हैं। इसी दिव्य रसमयी कविता में उनका मन सदैव डूबा रहा है, जिसके वशीभूत हो, सहृदय आनंद रस से पूर्णतः सराबोर हो उठता है। उनकी कविता न केवल हृदय, वरन् आत्मा को भी आनंद प्रदान करने में सक्षम है। यह क्षमता घनानंद के काव्य में ही देखी जाती है, जो पाठक की आत्मा को आन्दोलित एवं आलोकित कर देती है।

आत्मविश्वासी, दृढ़ प्रतिज्ञ, आशावादी दृष्टिकोण, अपने अनुकूल काव्यधारा को प्रवाहित करने की क्षमता रखने वाले, सात्विक व समर्पणपरक प्रेमी, सौन्दर्य के

सच्चे पारखी, व्यापक रचना दृष्टि, हृदय की पीड़ा की विशालता, एकरसता, तन्मयता, आध्यात्मिक झलक, अभिव्यंजना की अद्भुत शक्ति और प्रेम की गहनता आदि घनानंद के व्यक्तित्व के ऐसे गुण हैं, जो आज भी लोगों के प्रेरणास्रोत बने हुए हैं। उनके काव्य का अध्ययन कर ये गुण हमारे हृदय में जीवंत हो उठते हैं।

जिस प्रकार महाकवि कालिदास को विद्योतमा ने, गोस्वामी तुलसीदास को रत्नावली ने अपने हृदयांगन से निकालकर काव्य लोक के अमर आंगन में प्रतिष्ठित कर दिया, ठीक उसी प्रकार सुजान द्वारा ठुकरा देने पर घनानंद महान प्रेमी कवि बन गये। घनानंद के काव्य में सहजता है, सरलता है तथा कोमलता है। इसीलिए घनानंद के कवित्त कमल जैसे कोमल हैं, जिनमें प्रेम का मकरन्द भरा है, जिसके स्वाद के समक्ष अन्य सब स्वाद फीके पड़ जाते हैं। ये कवित्त विलक्षण बादलों के तुल्य हैं, जिनसे रसों का रंग बरसता है। उनकी रचना 'सुजानहित' उनके काव्य सृजन का केंद्र बिन्दु है, वही उनके काव्य संसार का उत्स है। घनानंद का समस्त काव्य सुजान के प्रति समर्पित है, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी। उनका प्रेम विशुद्ध है। उन्होंने अपने काव्य में अन्तरात्मा के स्वर को ही मुखरित किया। सुजान के प्रेम द्वारा वह मात्र दैहिक क्षुधा की तृप्ति करना ही नहीं चाहते थे, वरन् अपने प्रेम को उच्चता की भाव-भूमि तक ले जाकर सौन्दर्यानुभूति के अतिरेक को पाना चाहते थे। पवित्र प्रेम के द्वारा ही घनानंद अपनी कविता को चिरन्तन, शाश्वत रूप प्रदान कर सके। इनके काव्य में शारीरिक सौन्दर्य के संश्लिष्ट चित्र भी उपलब्ध हुए हैं। स्वानुभूति प्रेरित होने से उसमें अश्लीलता का अभाव और रसानुभूति का बौद्धिक रूप दिखाई देता है। उन्होंने जिस ईमानदारी के साथ अपने प्रेम की अभिव्यक्ति, प्रिय के रूप, सौन्दर्य का वर्णन और मिलन की अनुभूति का वर्णन किया है, वह सभी उनकी स्वानुभूति में लिपटे दिखाई देते हैं। घनानंद का काव्य अनुभूति प्रधान काव्य है। इसमें घनानंद की संवेदना अधिक प्रौढ़ व साहित्यिक है। हालांकि घनानंद के काव्य में लौकिक प्रेम और लौकिक शृंगार की प्रधानता है, परन्तु अन्त में वह अलौकिकता की ओर उन्मुख हो जाने के कारण भावों की उच्च भूमि पर पहुँच जाता है। अपने जीवन में घनानंद ने प्रेम के इसी

दिव्य रूप की आरती उतारी है। उनके काव्य में प्रेम की जो गम्भीरता है, गहनता है, सत्यता है, वह अत्यन्त सराहनीय है क्योंकि इनका प्रेम अन्तःकरण से प्रस्फुटित आवेग है। घनानंद के काव्य को देखकर कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने काव्य में शृंगार की उन सहज-स्वाभाविक स्थितियों का दर्शन कराया है, जिनकी कल्पना वास्तव में कोई काव्यशास्त्री नहीं कर सकता। संयोग की अपेक्षा घनानंद ने वियोग की पीड़ा, वेदना और विह्वलता को अधिक सहा और विरहावस्था को ही उन्होंने सच्चे प्रेम की कसौटी माना। सुजान के रूप सौन्दर्य पर रीझकर उन्हें प्रेम का पुरस्कार वियोग और तिरस्कार ही मिला, जो इनकी अमरता की निधि रहा। वियोग की चरमावस्था ने ही इन्हें लौकिक से अलौकिक की ओर उन्मुख कर दिया था। आन्तरिकता की प्रधानता सदैव उनके काव्य में बनी रही। इसीलिए संयोग में भी वियोग की अनुभूति का प्राधान्य देखा गया है।

विप्रलम्भ शृंगार की उपादेयता और महत्ता विश्व के प्रत्येक साहित्य में स्वीकार की गई है। वे वियोग शृंगार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। विरह ही उनके जीवन की निधि है। उनके जीवन में विरह की सहस्त्रमुखी धारा प्रवाहित होती दीखती है। घनानंद की प्रेम साधना में गति, सौन्दर्य, स्वच्छन्दता और सरलता है। कवि ने जीवन के मधुर अनुभवों को अपनी वेदना के आँसुओं में सुरक्षित रखा है। उनकी यह हृदय वेदना, तन्मयता आज भी पाठक को भाव विह्वल कर देती है। घनानंद की विरह अनुभूति इतनी व्यापक है कि वे संयोग में भी विरह को नहीं भूलते। विरह वर्णन में उन्होंने प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया है, जिससे विरह में तीव्रता आ गई है। विरह की लगभग सभी अन्तर्दशाओं का चित्रण उन्होंने किया है। उनकी इस वेदना की अभिव्यक्ति में संगीत, लय, अनुभव की गरिमा, भाषा की ऋजुता और लक्षणा का चमत्कार है।

घनानंद सौन्दर्य के सच्चे पारखी थे। अपनी प्रेयसी सुजान के अंग-अंग के सौन्दर्य से प्रभावित उनकी दृष्टि से कोई भी ऐसा चित्रण बाकी नहीं रहा, जिसे उन्होंने अपने काव्य में वर्णित न किया हो। इनका सौन्दर्य निरूपण मन की

अन्तःनुभूतियों, भावों और विचारों पर आधारित है। भारतीय सौन्दर्य चेतना के विकास में घनानंद का महत्व अद्वितीय है। रूप के प्रति उनकी दृष्टि स्वस्थ एवं सात्विक है। सौन्दर्य चित्रण से कवि की सूक्ष्म दृष्टि का आभास मिलता है। सौन्दर्य की उदात्त भावना के द्वारा ही ये अपने आराध्य (प्रियतम) के प्रति पूर्णरूप से समर्पित रहे हैं। प्रिय सुजान के रूप सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही ये जीवन भर उसे विस्मृत न कर पाये और कृष्ण (ईश्वर) में ही अपने प्रिय की खोज करते रहे। सौन्दर्यानुभूति के प्रति यही उनकी पराकाष्ठा है।

घनानंद के काव्य का अवलोकन करने के पश्चात् यह तथ्य उद्घाटित होता है कि घनानंद ने व्यक्तिगत जीवन को अपनी समग्रता में अपनाते हुए, उससे विरक्त होकर जो मार्ग अपनाया, आन्तरिक दृष्टि से वह जितना आनन्दमय है, बाह्य दृष्टि से उतना ही कठिन भी है। घनानंद ने स्वच्छन्दतापूर्ण अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों को अत्यन्त सरलता, सहजता और भावुकता एवं आशावादी दृष्टिकोण के साथ अभिव्यक्त कर जो सफलता प्राप्त की, उससे इंकार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने सहृदय को सुखद व आनन्दमय मार्ग दिखाने में जो श्रेय प्राप्त किया है, वह अन्य को प्राप्त न हो सका। घनानंद के इस आशावादी दृष्टिकोण की उपयोगिता आज मनुष्य मात्र के लिए ही नहीं, देश और समाज के लिए भी प्रासंगिक है। उनका काव्य आज भी उतना ही मधुर एवं चित्ताकर्षक है, जितना कि तत्कालीन युग में था। हालांकि आज के वैज्ञानिक परिवेश में व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन आ गया है, रुचियाँ परिवर्तित हो गयी हैं, परन्तु मानव हृदय की मूल भावना आज भी प्रेम ही है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है। घनानंद की कविता प्रेमी हृदय के साथ जुड़कर उसके सुख-दुख में सहभागी बनती है। प्रेमी हृदय को अपनी अनुभूति घनानंद के काव्य में अभिव्यक्त होती हुई सी जान पड़ती है। समय परिवर्तन के साथ जो कविता जीवित रहती है, रसिकों को अल्हादित करती है, वास्तव में वही कविता उत्कृष्ट है।

घनानंद के काव्य की सहजता, सरलता और आत्मीयता का परिणाम यह है कि इतने वर्ष बीत जाने पर भी प्रेमी घनानंद के काव्य का प्रेम और सौन्दर्य मानव जीवन में पूर्णरूपेण घुला-मिला सा प्रतीत होता है। घनानंद के काव्य में वर्णित सुजान वर्णन, कृष्ण वर्णन, वसंत वर्णन, राधा वर्णन, ब्रज वर्णन, यमुना वर्णन आदि सर्वत्र मुखरित हो उठे हैं। इनमें घनानंद के भावों की सफल अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम और सौन्दर्य की गहनता और गम्भीरता, मानवीय संवेदना को इस तरह झंकृत कर देती है कि वह काफी समय तक कंपायमान होती रहती है।

घनानंद युगीन काव्य जब कलात्मकता के चमत्कृत पक्ष की ओर बढ़ रहा था, उस समय घनानंद ने अपने हृदय की टीस और वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान कर भावपक्ष की रक्षा की। उनके भावों की शक्ति कलापक्ष की प्रौढ़ता से संवरकर दुगनी हो गयी है। कवि की कला, अनुभूति के कण-कण में सत्य का अन्वेषण करती है। घनानंद की कला में एकाकीपन की व्यथा की अनेक स्थितियाँ हैं, जिनमें सुजान के रूप की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। ये रेखाएँ अत्यन्त बारीक और तीक्ष्ण हैं। भाषा के माध्यम से मार्मिक भावों को हृदय की गहराई तक उतारना घनानंद के काव्य का प्रमुख गुण है। कलापक्षीय दृष्टि से घनानंद के काव्य का मूल्यांकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि घनानंद का कलापक्ष अत्यन्त सशक्त एवं प्रभावशाली है। उनका कला पक्ष उनके कवि कर्म की स्वच्छन्दता का सबसे महान रूप है। ब्रजभाषा प्रवीण घनानंद इस युग के श्रेष्ठ कवि हैं। लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, माधुर्यता उनकी भाषा के विशिष्ट गुण हैं। अलंकार उनके काव्य में थोपे नहीं गये हैं, बल्कि सहजता से चले आये हैं। कवित्त और सवैया घनानंद के प्रिय छन्द हैं। घनानंद को संगीत से गहरा लगाव था और वे संगीत के स्वर लहरों से भली-भाँति परिचित थे। उनके काव्य में संगीत की स्वर लहरियाँ हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं।

भारतीय साहित्य का यह विशेष गुण है कि वह किसी अन्य साहित्य के प्रवाह को ग्रहण करते हुए भी अपने गुणों का लोप नहीं करता। वह अपने प्रवाह में ही उसे मिला लेता है। घनानंद इस कला में निपुण थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा भारतीय साहित्य प्रवाह में विदेशी प्रवाह को मिला लिया था। अरबी-फारसी के

शब्दों का प्रयोग उनकी भाषा में है, परन्तु वे शब्द कहीं से थोपे हुए प्रतीत नहीं होते हैं अपितु स्वतः ही इन शब्दों का समावेश हुआ है। घनानंद का अन्तःकरण भारतीय था, यही घनानंद का महत् प्रयास है।

घनानंद की रचनाओं में प्रेम की गहराई और सौन्दर्यानुभूति की मार्मिक व्यंजना है। आधुनिक काल में जिन साहित्यकारों ने इनका अध्ययन किया है, वे इनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके, जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लाला भगवानदीन, पं० जगन्नाथदास रत्नाकर, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि मुख्य हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने घनानंद की कृतियों का मौलिक अध्ययन किया, उनके काव्य का गम्भीरता से विश्लेषण किया और 'घनानंद ग्रन्थावली' नाम से सम्पादन कर जनमानस को घनानंद की विशेषताओं से परिचित कराया। वर्तमान प्रजातांत्रिक युग में, जहाँ व्यक्तिगत भावनाओं का मूल्य बढ़ गया है, वहीं घनानंद के काव्य का भी मूल्य व महत्व बढ़ गया है।

निस्सन्देह घनानंद का रीतियुग को दिया गया प्रदेय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे हिन्दी के अन्यतम कवियों में से हैं। सुन्दर भावाभिव्यक्ति, वियोग—जन्य अनुभूति, भावों की तीव्रता, उपयुक्त शब्द—चयन, अनुभूति की गहनता, भावों की सच्चाई, भाषा और भावों का समन्वय, हर्ष—विषाद आदि की मार्मिक व्यंजना इनके काव्य को उत्कृष्ट बनाती हैं। उनका काव्य एक ऐसे अमृत रस से परिपूर्ण कलश है, जो अपने अन्तर में वेदना एवं पीड़ा से सराबोर है। अनुभूति एवं कल्पना का ऐसा सफल चित्रकार कोई दूसरा नहीं हुआ। उनकी कविता हृदय का स्पर्श करती है। भावों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्दशाओं का चित्रण करने में घनानंद इतनी अधिक ऊँचाइयों पर पहुँच जाते हैं कि उनकी समता अन्य कोई कवि नहीं कर सका है। हिन्दी साहित्य की धारा में घनानंद के प्रेम व सौन्दर्य का महत्व अप्रतिम और बेजोड़ है। अपनी धारा के ये एकमात्र कवि सम्राट हैं।

## ग्रन्थ-सूची

- (क) आधार ग्रन्थ
- (ख) सहायक ग्रन्थ
- (ग) कोश
- (घ) पत्र-पत्रिकाएँ



## ग्रन्थ-सूची

### आधार ग्रन्थ-सूची

1. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद (सं०) : घनानंद-कवित्त, सरस्वती, मंदिर, बनारस, सं० 2000
2. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद (सं०) : घनआनंद ग्रंथावली, वाणी वितान, बनारस, 2009

### सहायक ग्रन्थ-सूची

1. आनन्द, खेलचंद/गुप्ता, सुषमा रानी : प्राचीन प्रतिनिधि कवि, सूर्य भारती प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 2002
2. ओमप्रकाश : हिन्दी-काव्य और उसका सौन्दर्य, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली 1957
3. कुमार, यतेन्द्र : शैली, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, प्रथमावृत्ति
4. कुमार, विमल : छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978
5. कुमार, विमल : सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
6. कुमार, सुधीन्द्र : रीतिकाव्य की इतिहासदृष्टि, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2002
7. खण्डेलवाल, रामकुमार : हिन्दी काव्य में प्रेम-भावना, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1976
8. खण्डेलवाल, रामेश्वर : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, 1985
9. खण्डेलवाल, रामेश्वर : जयशंकर 'प्रसाद' वस्तु और कला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, 1968

10. ग्रियर्सन, सर जार्ज अब्राहम : द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटलेचर ऑफ हिन्दुस्तान, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1957
11. गुप्त, जगदीश (सं०) : रीतिकाव्य संग्रह, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, 1961
12. गुप्त, सुरेन्द्रनाथ दास : सौन्दर्यतत्त्व, भारती भंडार, इलाहाबाद, सं० 2017 वि०
13. गुप्ता, किरण कुमारी : हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006
14. गोविल, ओमप्रकाश : महाकवि राबर्ट ब्राउनिंग एक अध्ययन, शकुन पब्लिकेशंस, अलीगढ़, 1990
15. गौड़ मनोहरलाल: घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, 2015 वि०
16. गौतम, मनमोहन : सूर की काव्य कला, एस० चन्द एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण
17. चकोर, हनुमानदास : हिन्दी साहित्य में विरह-प्रसंग, नवयुग ग्रन्थागार, लखनऊ, 1965
18. चतुर्वेदी, परशुराम : हिन्दी काव्यधारा में प्रेम-प्रवाह, किताब महल, इलाहाबाद, 1952
19. चतुर्वेदी, परशुराम : भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1962
20. चतुर्वेदी, राजेश्वरप्रसाद : शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, 1969
21. चन्द्रकला : सौन्दर्यशास्त्र स्वरूप एवं विकास, साधना प्रकाशन, चण्डीगढ़, 1989
22. चन्द्र, सतीश: उत्तर मुगलकालीन भारत, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1980
23. चन्द्र, सतीश : मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति, ओरियंट लांगमैन प्राइवेट लिमिटेड, आसफ अली रोड, दिल्ली, 2007

24. चातक, गोविन्द : संस्कृति: समस्या और संभावना, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, 1994
25. जिन्दल, कैलाशभूषण (सं०) : रामचरितमानस (भाग-1), किताब महल प्रा०लि०, इलाहाबाद, 1991
26. जैन लालचन्द्र : जैन कवियों के ब्रजभाषा-प्रबन्धकाव्यों का अध्ययन, भारती पुस्तक मन्दिर, भरतपुर, 1976
27. त्यागी, सुरेंद्रचंद्र : छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन, अनुराधा प्रकाशन, मेरठ, 1976
28. दास, श्यामसुन्दर (सं०) : कबीर ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी + नई दिल्ली, सं० 2058 वि०
29. दास, श्यामसुन्दर : साहित्यालोचन, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग, सं० 2004
30. दास, श्यामसुंदर : हिन्दी साहित्य, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, सं०, 2006
31. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, 1950
32. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 1995
33. नगेंद्र : देव और उनकी कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1960
34. नगेंद्र : रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2000
35. नगेंद्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1987
36. नगेंद्र (सं०) : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग-6) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2015वि०
37. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी : प्रबन्ध-प्रतिमा, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1963
38. पंत, सुमित्रानन्दन : पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
39. पंत सुमित्रानन्दन: पल्लविनी, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 2004
40. पाण्डेय, अरविन्द : रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग एक आलोचनात्मक अध्ययन, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, 1966

41. पाठक, जितेंद्रनाथ : भक्ति तथा रीतिकालीन मुक्तक काव्य, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद, 1981 ई०
42. पाण्डेय, राजकिशोर : हिन्दी साहित्य का उत्तरमध्ययुग, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, 1971
43. पाण्डेय, श्याम मनोहर : मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982
44. पुष्पलता : रीतिकालीन शृंगारिक सतसङ्गों का तुलनात्मक अध्ययन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980
45. प्रसाद, जगदीश्वर : रीतिकाव्यः एक नया मूल्यांकन, नई कहानी, अलोपी बाग, इलाहाबाद, 1993
46. प्रसाद, राजेन्द्र : साहित्य शिक्षा और संस्कृति, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1960
47. प्रसाद, शशिप्रभा : रीतिकालीन भारतीय समाज, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1979
48. प्रेमशंकर : भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000
49. बिल्लौरे, रामचन्द्र : जायसी की प्रेम साधना, सामंयिक प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, 1973
50. बोरा, राजमल : भूषण और उनका साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1968
51. भट्ट, रघुनाथ : हिन्दी सतसई परंपरा में दयाराम सतसई, गिरनार प्रकाशन, महेसाना, गुजरात, 1984
52. मिश्र, कृष्णमुरारी : छायावादी काव्य में सौन्दर्य चेतना, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1979
53. मिश्र, दुर्गाशंकर : सेनापति और उनका काव्य, नवयुग ग्रन्थागार, लखनऊ, 1963
54. मिश्र, भगीरथ : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, साहित्य मंदिर प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, लखनऊ, 1000

55. मिश्र, भगीरथ : हिन्दी रीति साहित्य, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2011
56. मिश्र, भगीरथ : हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (भाग-7), नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी-2029 वि०
57. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद (सं०): केशव-ग्रन्थावली, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1954
58. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद (सं०): चिन्तामणि (द्वितीय भाग) सरस्वती मंदिर, जतनबर, वाराणसी, सं०, 2019
59. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद (सं०): ठाकुर ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं०, 2030
60. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद (सं०): बोधा ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं०, 2031
61. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद (सं०): रसमीमांसा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, सं०, 2017
62. मिश्र, विश्वनाथप्रसाद : हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-2), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023 वि०
63. मिश्र, श्याम बिहारी/बिहारी, शुकदेव : हिन्दी साहित्य का इतिहास, गंगा ग्रन्थागार, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ, 1966
64. मिश्र, सभापति : घनआनंद की काव्यसाधना, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989
65. मुखिया, हरबंस : भारतीय मुगल, आकार बुक्स, मयूर विहार दिल्ली, 2008
66. यज़दानी, कौसर : सूफी दर्शन एवं साधना तथा कुतुबन, मंज़न जायसी काव्य में उसकी अभिव्यक्ति, जेन्युइन पब्लिकेशन्स एण्ड मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1987
67. रघुवंश : प्रकृति और हिन्दी काव्य, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, 2005
68. रणखांब, हनुमंत : घनानंद का साहित्यिक अवदान, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2009

69. रत्नाकर, जगन्नाथ दास (सं०): बिहारी रत्नाकर, तारा बृक एजेन्सी, वाराणसी, 1998
70. रमाशंकर : बिहारी का काव्य लालित्य, ग्रन्थम रामबाग, कानपुर, 1970
71. राजकुमार : भारतीय समाज एवं संस्कृति, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज नई दिल्ली, 2005
72. राय, बाबू गुलाब : सिद्धान्त और अध्ययन, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1985
73. राय, शिवबालक : काव्य में सौन्दर्य और उदात्त तत्व, वसुमती जीरी रोड, इलाहाबाद, 1968
74. राय, वै० वेंकटरमण : ऐतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1972
75. रमा, कृष्णचन्द्र : धनञ्जय, रवीन्द्र प्रकाशन, खालियर, 1976
76. रमा, कृष्णचन्द्र : ऐतिह्युगीन काव्य, नायजी प्रेस, दारगंज, इलाहाबाद, 1965
77. रमा, कृष्णचन्द्र : ऐति स्वच्छन्द काव्यधारा, कैलाश पुस्तक सदन, आगरा, 1967
78. रमा, सहदेव : धनानंद का काव्य-दर्शन, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977
79. राजवंशी, नंददुलारे (सं०): सूरसागर (पहला खंड), नागरीप्रचारिणी सभा, अलीगढ़, 1982
81. रमा, मर्णू : धनानंद और प्रसाद के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, ज्योति इण्टरप्रिंटाईज, जवाहर नगर, दिल्ली, 2009
82. रमा, मुंशीराम : भक्ति का विकास, चौखम्बा विद्यामवन, वाराणसी, 1958
83. रमा, राजनाथ : साहित्यिक निबन्ध, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-1960
84. रमा, रामकुमार : 'लक्षण'-काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, उन्मेष प्रकाशन, हरिद्वार, 1993

85. शर्मा, रामविलास : मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984
86. शर्मा, लक्ष्मणप्रसाद : रीतिमुक्त कवियों का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, ग्रन्थायन, सासनी गेट, अलीगढ़, 1991
87. शर्मा, लक्ष्मणप्रसाद : सौन्दर्यशास्त्र: स्वरूप एवं समस्याएँ, ब्रजबिहारी महाविद्यालय, कोसीकलां, मथुरा, 1989
88. शर्मा शकुन्तला : आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना, सरस्वती मन्दिर, जतनबर, बनारस, 1952
89. शर्मा, हरद्वारीलाल : सौन्दर्यशास्त्र, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1953
90. शर्मा, हरवंशलाल/शास्त्री, परमानन्द : बिहारी और उनका साहित्य, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1972
91. शुक्ल, अशोक (सं०): घनानंद कवित्त, पदमबुक कम्पनी, जयपुर, 1968
92. शुक्ल, रामचन्द्र (सं०): जायसी ग्रन्थावली, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 2048 वि०
93. शुक्ल, रामचन्द्र (सं०): तुलसी-ग्रन्थावली (दूसरा खंड), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, 1500
94. शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2035
95. शुक्ल, रामदेव : आनंदघन, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1986
96. सक्सैना, द्वारिकाप्रसाद : पदमावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1974
97. सक्सैना, द्वारिकाप्रसाद : हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1979
98. सहगल, शशि : घनानंद का रचना संसार, अभिनव प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1980
99. सिंह, अजब : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1975

100. सिंह, इन्द्रबहादुर : रीतिकालीन साहित्य : परिवेश और मूल्य, अरविंद प्रकाशन, मुम्बई, 1988
101. सिंह, ईशर : गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी का रीतिकाव्य, दीप प्रकाशन, अम्बाला शहर, 1972
102. सिंह, नैपाल : उत्तरी भारत के सांस्कृतिक विकास में सन्तों का योगदान, तारामण्डल, सासनीगेट, अलीगढ़, 1986
103. सिंह, प्रताप : मुगलकालीन भारत (बाबर से शाहजहाँ), रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
104. सिंह, बच्चन : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 2015 वि०
105. सिंह, ब्रजनारायण : कवि पद्याकर और उनका युग, अनुसन्धान प्रकाशन आचार्य नगर, कानपुर, 1966
106. सिंह, रवीन्द्र कुमार : बिहारी सतसई (सांस्कृतिक सामाजिक सन्दर्भ), लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1994
107. सिंह, लखनलाल : घनानंद का काव्यशिल्प, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० 2032
108. सिंह, विजयपाल : केशव और उनका साहित्य, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1975
109. सिंह, त्रिभुवन : दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1958
110. श्रीवास्तव, सुखस्वरूप : रीतिकाव्य में शृंगार निरूपण, प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1972
111. त्रिपाठी, रामनरेश : कविता कौमुदी (भाग-1), नवनीत प्रकाशन, मुम्बई, 2000
112. त्रिपाठी, रामफेर : कवित्रयी (रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि), रामा प्रकाशन, नजीराबाद, लखनऊ, 1965



### संस्कृत-ग्रन्थ

1. चतुर्वेदी, जवाहरलाल : काव्य-निर्णय, कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, 1956
2. द्विवेदी, कपिलदेव : उत्तररामचरितम्, साहित्य संस्थान, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
3. द्विवेदी, रेवाप्रसाद (सं०): कालिदास-ग्रन्थावली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1976
4. दीक्षित, अप्पय : कुवलयानन्द, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस, 1958
5. मिश्र, आचार्य रामचन्द्र : काव्यादर्श, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1958
6. मिश्र, रामजी (सं०): रसरज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1960
7. सरस्वती, स्वामी अखण्डानन्द : नारदभक्तिदर्शन, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, मालबार हिल बम्बई, 1969
8. शर्मा, पण्डित बटुकनाथ / उपाध्याय, पण्डित बलदेव : नाटयशास्त्रम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सं० 2037

### अंग्रेजी-ग्रन्थ

1. Bahadur, K.P: Love poems of Ghananad, Motialal Banarsidass Publishers Pvt. LTD Delhi-1991.
2. Keats : Endymion, Book I Poems of John keats vol-I Published by G.Bell-1971.
3. Keats : Ode on a Grecian Urn (Complete Poems of Keats) Poet's Region, England, 1820.
4. Lawrance : Woman in Love, Thomas Seltzer Publishing Company, Russia+America, 1920.
5. Russell : Marriage and Morals, Routledge Classics, London and New York, 2009
6. Shelley: Epipsychidion (Complete Work of P.B. Shelley) C and J Ollivere Street Bond Street, London, 1821.

## कोश ग्रन्थ-सूची

1. नाथ, श्री तारा : वाचस्पत्यम् (षष्ठ भाग), चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1962
2. प्रसाद, कालिका (सं०): बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं०, 2013
3. बहादुरेण, राधाकान्तदेव : शब्दकल्पद्रुम (तृतीय काण्ड), चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1961
4. वर्मा, धीरेन्द्र (सं०): हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं०, 2015
5. शर्मा, द्वारका प्रसाद : संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, लालबेनी, बेनी प्रसाद, इलाहाबाद, 1967
6. सिंह, मदमर : अमर कोष, नवलकिशोर प्रेस बुक डिपो, लखनऊ, सं०, 1975वि०
7. Hornby, A.S: Oxford Advnced Learner's Dictionary of Current English- . Oxford University Press. 1974.
8. Onions, C.T. : Shorter Oxford English Dictionary on Historical Principles, Vol-I, Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford, New York-2007
9. Speers, A. Richard : NTC'S American English Learner's Dictionary Publishing Group Inc West Touty Avenue, Lincoln Wood (Chicago) - 1998.

## पत्र-पत्रिकाएँ

1. अभिनवभारती : उदयशंकर श्रीवास्तव (सं०), ए०एम०यू० प्रेस, अलीगढ़, 2003-04
2. आजकल : सीमा ओझा (सं०), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, लोदी रोड, नई दिल्ली, अक्टूबर, 2008, वर्ष, 64 अंक, 6
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका : वेणीशंकर झा (सं०), नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी-सं०-2034 वि, अंक 3, 4
4. मरुभारती : वसंतलाल शर्मा/मदनलाल शर्मा (सं०), राजस्थानी शोध-विभाग, पिलानी, अप्रैल, 1994, अंक, 1
5. समीक्षा : देवेन्द्रनाथ शर्मा/गोपालराय (सं०), यूनिसर्विटी कॉलोनी सैदपुर, पटना, 1973, अंक, 4
6. संभावना: जयभगवान गोयल (सं०), हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र, 1987, वर्ष, 7
7. सरस्वती : श्री नारायण चतुर्वेदी (सं०), इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, अप्रैल 1965
8. साहित्य-सन्देश : गुलाबराय (सं०), साहित्य सन्देश कार्यालय, 4, गांधी मार्ग-आगरा, मई, 1954, अंक 12,
9. हिन्दुस्तानी : जगदीश गुप्त (सं०), हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, जनवरी, मार्च 1981, अंक-1